

चतुर्थ सेमेस्टर

Fourth Semester

भारतीय कृषि
Indian Agriculture

एम.ए.ई.सी. - 609
M.A.E.C. - 609

विषय-सूची

खण्ड – 1 कृषि मूल्य नीति और विपणन (Agricultural Price Policy and Marketing)	पृष्ठ संख्या 1-78
इकाई 1- कृषि मूल्य लागत और मूल्य में सम्बन्ध (Agricultural Price- Cost and Price Relationship)	1-19
इकाई 2- कृषि मूल्य नीति, मूल्य और लागत आयोग का स्वरूप एवं भूमिका (Agricultural Price Policy, Nature and Role of Commission for Agricultural Costs and Prices)	20-36
इकाई 3- कृषि लाभ अधिकतमकरण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Agricultural Profit Maximization and Public Distribution System)	37-53
इकाई 4- कृषि अतिरेक एवं कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural Surplus and Agricultural Marketing System)	54-78
खण्ड – 2 कृषि वित्त एवं कृषि प्रबन्धन (Agricultural Finance and Agricultural Management)	पृष्ठ संख्या 79-157
इकाई 5- कृषि वित्त के प्रकार, चुनौतियाँ, सम्भावनाएं एवं रणनीतियाँ (Types, Challenges, Prospects and Strategies of Agricultural Finance)	79-93
इकाई 6- सहकारी वित्त प्रणाली, नाबार्ड और वैद्यनाथ समिति (Co-operative Finance System, NABARD and Vaidyanath Committee)	94-109
इकाई 7- वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका, कृषि ग्रामीण वित्त संस्थान (Role of Commercial Banks, Non-Agricultural Rural Finance Institute)	110-122
इकाई 8- कृषि प्रबन्धन: अवधारणा, क्षेत्र और सिद्धान्त (Agricultural Management: Concepts, Areas and Theories)	123-141
इकाई 9- कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियाँ एवं कृषि प्रबन्धन की समस्याएं (Current Trends and Problems of Agricultural Management)	142-157

खण्ड – 3 कृषि और बाह्य क्षेत्र (Agriculture and External Sector)	पृष्ठ संख्या 158-203
इकाई 10- कृषि वस्तुओं का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade of Agricultural Commodities)	158-170
इकाई 11- विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर प्रभाव (Impact of World Trade Organization on Indian Agriculture)	171-181
इकाई 12- उदारीकरण का घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय कृषि व्यापार पर प्रभाव (Impact of Liberalization on Domestic and International Trade)	182-192
इकाई 13- बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका (Role of Multinational Corporations)	193-203

Suggested Readings:

1. Dantawala, M.L. et al. (1991) *Indian Agricultural Development since Independence*, Oxford & IBH, New Delhi.
2. Dev, S.M. (2013) *India Development Report*, Oxford University Press, New Delhi
3. Desai, R.G. (2009) *Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
4. Ghatak, S and K. Ingerscant (1984) *Agriculture and Economic Development*; Select books, New Delhi.
5. Nachanc, D.M. (2011) *India Development Report 2011*, Oxford University Press, New Delhi
6. Bhalla, G.S. (2008) *Indian Agriculture since Independence*, SAGE Publications Pvt. Ltd, New Delhi
7. Chakravarti, S. (1987) *Development Planning: The Indian Experience*, Oxford University Press New Delhi
8. Datt, Gaurav and Ashwani Mahajan (2010) *Indian Economy*, S. Chand & Company Pvt. Ltd., New Delhi
9. Dhingra, I.C. *The Indian Economy: Environment and Policy*, 23rd Ed. Sultan Chand & Sons, New Delhi
10. Gupta, S.P. (1989) *Planning and Development in India :A Critique*, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
11. Prakash, B.A. (Ed.) (2009), “*Indian Economy since 1991: Economic Reforms and Performance*”, Sage Publications, New Delhi.
12. Prasad, C.S. (2010) *Indian Economy- A Performance Review -1947-48 to 2010-11*, New Century Publications, New Delhi
13. Sandh A.N., Singh, Amarjit (2009) *Fundamentals Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
14. Taylor, H.C., (1949), *Outlines of Agricultural Economics*, MacMillan
15. Uma, Kapila, (2008), “*Indian Economy: Performance & Policies*”, 8th Ed. Academic Foundation, New Delhi.

इकाई 1 - कृषि मूल्य लागत और मूल्य में सम्बन्ध (Agricultural Price – Cost and Price Relationship)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 कृषि मूल्य
 - 1.3.1 कृषि मूल्य को प्रभावित करने वाले कारक
 - 1.3.2 कृषि मूल्यों में उच्चावचन के परिणाम
- 1.4 कृषि मूल्य स्थिरीकरण
 - 1.4.1 कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण अथवा स्थायीकरण के उद्देश्य
 - 1.4.2 कृषि मूल्य स्थिरीकरण के लाभ
 - 1.4.3 कृषि मूल्य स्थिरीकरण हेतु सरकार द्वारा किए गए उपाय
- 1.5 लागत और मूल्य में सम्बन्ध
- 1.6 अभ्यास प्रश्न
- 1.7 सारांश
- 1.8 शब्दावली
- 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में कृषि मूल्य, कृषि मूल्य में उतार-चढ़ाव तथा स्थिरीकरण की विस्तृत जानकारी के साथ कृषि लागत तथा मूल्य में सम्बन्ध की व्यवस्था की जायेगी। इसके अध्ययन से आपको कृषि मूल्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी हो जायेगी।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ कृषि मूल्य के अर्थ को जान सकेंगे।
- ✓ कृषि मूल्य में होने वाली उतार-चढ़ाव से परिचित हो जायेंगे।
- ✓ कृषि मूल्य स्थिरीकरण को समझ सकेंगे।
- ✓ कृषि लागत तथा मूल्य में सम्बन्ध को जान जायेंगे।

1.3 कृषि मूल्य (Agricultural Price)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, कृषि ही मुख्य व्यवसाय है। कृषि की सफलता इससे प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। कृषि व्यवसाय से प्राप्त लाभ की मात्रा कृषि उत्पादों की मात्रा तथा उनके बाजार मूल्य पर निर्भर करती है। कृषि मूल्य का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं दोनों पर पड़ता है क्योंकि उत्पादन की मात्रा एवं उपभोग का स्तर, कृषि पदार्थों की मूल्य स्थिति पर ही निर्भर करता है।

अतः कृषि मूल्यों में थोड़ा सा भी परिवर्तन सम्पूर्ण आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है। कृषि भूमि से जो भी कृषि उत्पाद पैदा होते हैं, उन सभी का कुछ न कुछ मूल्य होता है। यह मूल्य कृषि उत्पादों के पैदा किए जाने में व्यय की गई लागत के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं। अतः लागत के अनुसार प्रत्येक कृषि उत्पाद का जो मूल्य निर्धारित किया जाता है, उसे ही 'कृषि मूल्य' कहते हैं।

सामान्यतः कृषि उत्पादन में प्रयोग किए गए समस्त मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों तथा उत्पादन लागत के बदले में बाजार में कृषि उत्पाद के स्तरानुकूल जो कीमत निर्धारित की जाती है, उसे 'कृषि मूल्य' कहते हैं।

दूसरे शब्दों में, कृषि उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले संसाधनों (बीज, उर्वरक व रासायनिक खादें, सिंचाई, कृषि यन्त्र, श्रम आदि) की लागत तथा तैयार फसल को बाजार में विक्रय हेतु लाने पर उस फसल का स्तर, पैदावार एवं गुणवत्ता के आधार पर जिस मूल्य पर बाजार में बेची जाती है, उसे 'कृषि मूल्य' कहते हैं।

1.3.1 कृषि मूल्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Agricultural Prices)

वर्षा के बाद मूल्य परिवर्तन ही कृषक का सबसे बड़े शत्रु है। कृषि मूल्य में बार-बार परिवर्तन, किसानों की आय को प्रभावित कर कृषि की सहज प्रगति में बाधा पहुंचाता है। कृषि मूल्य सदा स्थिर नहीं रहते, बल्कि कृषि मूल्य में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। कृषि मूल्यों में कभी स्थायित्व नहीं रहता। कृषि मूल्यों के इस परिवर्तन अर्थात् उतार-चढ़ाव को कृषि मूल्य में उच्चावचन कह कर सम्बोधित किया जाता है। कृषि मूल्य में उच्चावचन अर्थात् परिवर्तन के कारण निम्न हैं-

1. **कृषि उत्पादन में कम बढ़ना (Low Growth in Agricultural Production)** - किसी कारणवश कृषि उत्पादन में कमी अथवा वृद्धि भी कृषि मूल्यों को प्रभावित करती है। प्राकृतिक स्थितियाँ अनुकूल होने पर सामान्यतः कृषि उत्पादन में वृद्धि हो जाती है तो कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्वतः ही गिरावट आ जाती है, किन्तु प्राकृतिक स्थितियाँ प्रतिकूल होने की स्थिति में कृषि पदार्थों के मूल्य अक्सर बढ़ जाते हैं, क्योंकि उत्पादन में गिरावट आ जाती है।
2. **माँग एवं पूर्ति में परिवर्तन (Changes in Demand and Supply)** - कृषिगत उत्पादन की माँग एवं पूर्ति में परिवर्तन होने के कारण कृषि मूल्यों में भी परिवर्तन होना स्वभाविक है। कृषि उपज की माँग बढ़ने के दो कारण हो सकते हैं- पहला, जनसंख्या में वृद्धि, दूसरा, जनता की आय में वृद्धि। जनसंख्या में वृद्धि होने से खाद्यान्नों एवं खाद्य पदार्थों की माँग बढ़ जाती है तथा जनता की आय में वृद्धि होने से, इन पदार्थों की माँग का प्रारूप बदल जाता है जबकि उपभोक्ताओं की रुचि, आदतें, भविष्य में मूल्य वृद्धि की सम्भावना का भय आदि माँग को बढ़ा देती है तथा प्राकृतिक प्रकोप, जमाखोरी उपज की पूर्ति घटा देती है। जिनका प्रभाव कृषि मूल्य पर पड़ता है।
3. **बाजार में आने वाली नई फसल का प्रभाव (Effect of New Crop coming to Market)** - जब देश में किसानों के पास नई फसल आने पर उसके भण्डारण की समुचित व्यवस्था नहीं होती है तब समस्त प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद नई फसल बिक्री हेतु बाजार में त्वरित आ जाती है। परिणामस्वरूप बाजार में कृषि पदार्थ की पूर्ति में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और कृषि मूल्य गिर जाते हैं। किन्तु जैसे ही कृषि पदार्थों का आना बाजार में कम होता जाता है, कृषि मूल्य पुनः बढ़ने लगते हैं।
4. **सरकार की साख-नीति (Credit Policy of the Government)** - सरकार की साख नीति का भी कृषि मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। जब सरकार की साख नीति में स्थायित्व और कठोर नियन्त्रण रहता है तो कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्वतः गिरावट आने लगती है। किन्तु इसके विपरीत स्थितियों में यदि सरकार साख नीति में किसी प्रकार की शिथिलता बरतती है अथवा साख नीति के विस्तार का अनुसरण करती है तो कृषि मूल्यों में वृद्धि होने लगती है। यदि सरकार द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था का अनुसरण किया जाता है तो इसका प्रभाव भी कृषि मूल्यों पर पड़ता है। मुद्रा पूर्ति की स्थिति भी कृषि मूल्यों को प्रभावित करती है।
5. **सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level)** - जब देश में कृषि पदार्थों को छोड़कर जीवन के उपयोग में आने वाली अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य स्थिर रहता है, तब कृषि पदार्थों में भी वृद्धि नहीं होती। किन्तु जब सामान्य वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने लगती है तब कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्वतः वृद्धि की स्थिति बन जाती है। यदि सामान्य मूल्य स्तर में गिरावट की प्रवृत्ति होती है तो कृषि पदार्थों के मूल्य भी गिरने लगते हैं।
6. **भण्डारण का प्रभाव (Effect of Storage)** - जब देश के व्यापारी और किसान अपने पास कृषि भण्डारण की समुचित व्यवस्था रखते हैं जब उसका प्रभाव कृषि पदार्थों के मूल्यों पर स्वभाविक रूप से पड़ता है। सामान्यतः देश का व्यापारी और सम्पन्न किसान कृषि पदार्थों का भण्डारण इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु करते हैं कि देश में कृत्रिम अभाव की स्थिति बनते ही ऊँचे मूल्यों पर वे अपना माल बेचकर

अधिकतम लाभ (maximum profit) अर्जित कर सकें। किन्तु सरकारी प्रयासों से सम्बंधित क्रियाओं (छापा मारना) से भण्डारण की इस प्रवृत्ति पर अंकुश तो लगता ही है, किन्तु साथ ही कृषि पदार्थों के मूल्य भी गिरने लगते हैं।

7. **आयात निर्यात (Import Export)** - आयात निर्यात की प्रवृत्तियाँ भी कृषि मूल्यों पर अपना प्रभाव डालती हैं। जब सरकार द्वारा किसी कृषि पदार्थ को निर्यात करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाती है तब उस कृषि पदार्थ के मूल्य में स्वतः वृद्धि हो जाती है, क्योंकि उस कृषि पदार्थ की उपलब्धि देश में उपभोग के लिये अत्यधिक कम हो जाती है, किन्तु जब सरकार द्वारा किसी पदार्थ का आयात करने का निर्णय ले लिया जाता है, तो कृषि पदार्थों के मूल्य स्वतः गिरने लगते हैं।
8. **सरकारी खर्च (Government Expenditure)** - सरकार द्वारा किए जाने वाले विभिन्न व्यय भी कृषि पदार्थों के मूल्यों को प्रभावित करते हैं। यदि सरकार द्वारा किए जाने वाले व्यय बढ़ते हैं तो उसका प्रभाव सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level) पर वृद्धि के रूप में पड़ता है और जब सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है तो उसका प्रभाव कृषि पदार्थों के मूल्यों पर भी पड़ता है और उनमें वृद्धि होने लगती है। जब स्थिति इसके विपरीत होती है तो मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति देखी जाती है।
9. **यातायात के साधन (Means of transport)** - यातायात एवं परिवहन के साधन भी कृषि पदार्थों के मूल्य को प्रभावित करते हैं। यदि देश के विभिन्न भागों में आवश्यक कृषि पदार्थों के भेजने की समूचित और सुविधाजनक स्थितियाँ बनी रहती हैं तो कृषि पदार्थों के मूल्य में स्थिरता बनी रहती है, किन्तु यदि देश के किसी भाग में कृषि पदार्थ की उपलब्धता आवश्यकता अनुसार पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाती और परिवहन के साधनों द्वारा उस क्षेत्र में कृषि पदार्थ पहुँचाने में बाधा उपस्थित होती है तो कृषि पदार्थों के मूल्य बढ़ जाते हैं।
10. **प्राकृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारण (Natural, Economic and Political causes)** - हमारे देश में कृषि आज भी प्रकृति पर ही निर्भर है। मौसम की दशाएँ, कृषि उत्पादन को प्रतिवर्ष प्रभावित करती रहती हैं। जिसका प्रभाव कृषि मूल्य पर पड़ना स्वभाविक है। इसी तरह मुद्रा प्रणाली के अवमूल्यन (devaluation) आदि से भी कृषि मूल्य प्रभावित होते हैं। किसी देश द्वारा दी जाने वाली सहायता, शत्रु देशों द्वारा किया जाने वाला आक्रमण आदि का प्रभाव भी कृषि वस्तुओं की कीमतों पर पड़ता है।
11. **अन्य कारण (Other cause)** - कृषि वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन लाने वाले उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं। जैसे- व्यापार चक्रों के प्रभाव, कृषि आगतों पर परिवहन साधनों के किराये में वृद्धि, पूँजीगत वस्तुओं में भारी विनियोग, औद्योगिक अशान्ति, खाद्यान्नों में सट्टेबाजी, जमाखोरी तथा काला-बाजारी की प्रवृत्ति, प्रशासनिक ढिलाई तथा भ्रष्टाचार भी कृषि पदार्थों के मूल्यों में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

1.3.2 कृषि मूल्यों में उच्चावचन के परिणाम (Results of fluctuation in Agricultural Prices)

कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले निरन्तर उतार-चढ़ाव का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से पड़ता है। अतः इन मूल्यों में स्थिरता बनाए रखने की अत्यधिक आवश्यकता है। कृषि मूल्यों के बढ़ने का प्रभाव अग्रक्रित रूप से पड़ता है-

1. **किसानों पर (On Farmers)** - कृषि पदार्थों के मूल्य परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव किसान पर पड़ता है। जब किसी पदार्थ के मूल्य में वृद्धि होती है, यदि कृषक आगामी फसल में भी उसी पदार्थ के उत्पादन को महत्व देता है तो उसका प्रभाव कृषक पर विपरीत रूप से पड़ता है, क्योंकि उस उत्पादन वर्ष में पदार्थ की पूर्ति बढ़ जाने से मूल्यों में गिरावट आ जाती है। एक अन्य परिस्थिति में कृषक उन वस्तुओं का उत्पादन नहीं करता जिनके मूल्यों में वह गिरावट की प्रवृत्ति देखता है, बल्कि उन पदार्थों को पैदा करता है जिनका मूल्य उसे अधिक मिलना है, क्योंकि आगामी वर्ष उस पदार्थ की पूर्ति कम होने से उसका मूल्य बढ़ना स्वभाविक है। इस प्रकार कृषक एक फुटबाल की भांति उत्पादन के लिए लुढ़कता रहता है। कभी वह एक वस्तु का उत्पादन करता है तो कभी दूसरी वस्तु का उत्पादन करता है। इस प्रकार कृषक उत्पादन की दृष्टि से एक अनिश्चितता के वातावरण में बना रहता है।
2. **उपभोक्ता पर (On the Consumer)** - कृषि पदार्थों के मूल्य परिवर्तन उपभोक्ता को भी अत्यधिक प्रभावित करता है। जब कृषि पदार्थों के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है तो उपभोक्ता सर्वाधिक कठिनाई अनुभव करते हैं। कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप उपभोक्ता अपने उपभोग व्यय (consumption expenditure) को संतुलित नहीं रख पाता है।
3. **ऋणदात्री संस्थाओं पर प्रभाव (Impact on Lending Institutions)** - मूल्यों में गिरावट आने से किसानों की मोद्रिक आय में कमी होने लगती है, वे ऋण देने वाली संस्थाओं से लिए गए ऋण का भुगतान नहीं कर पाते हैं। खाद्यान्नों की विक्रय से जो आय उन्हें प्राप्त होती है वह उनके जीवन-यापन (livelihood) के लिए ही पर्याप्त नहीं हो पाती है। ऋणों की वसूली न होने से ऋण देने वाली संस्थाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
4. **औद्योगिक उत्पादन पर (On Industrial Production)** - देश के औद्योगिक उत्पादन भी कृषि पदार्थों के मूल्यों में परिवर्तन से प्रभावित होते हैं। जब कृषि पदार्थों के मूल्य बढ़ते हैं तो उद्योगपतियों को अपने उत्पादों में वृद्धि करनी पड़ती है, परिणामस्वरूप इस मूल्य वृद्धि का प्रभाव औद्योगिक उत्पादन की माँग पर पड़ता है।
5. **विकास कार्यक्रमों पर प्रभाव (Impact on Development Programs)** - कृषि मूल्यों में परिवर्तन से देश के विकास कार्यक्रम भी प्रभावित होते हैं। कृषि-मूल्यों में अनिश्चितता होने के कारण सरकार की आय भी अनिश्चित बनी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप सरकार निर्धारित योजना के अनुसार धन व्यय करने में सक्षम नहीं हो पाती है जिससे योजना के निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में कठिनाई आती है।

6. **कृषि आय, बचत तथा विनियोग में अस्थिरता (Volatility in Agricultural Income, Savings and Investment)** - कृषि मूल्यों में अधिक उतार-चढ़ाव का प्रभाव किसान वर्ग की आय पर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप किसानों के उपयोग एवं जीवन-स्तर (standard of living) में स्थिरता आ जाती है, आय में कमी होने से बचत (Saving) कम होती है और उसके परिणामस्वरूप विनियोग (Investment) कम होता है।
7. **सरकार का प्रभाव (Government's Influence)** - कृषि मूल्यों में गिरावट के कारण लोगों की आय में कमी आती है, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को करों के रूप में प्राप्त होने वाली आय अपेक्षाकृत कम प्राप्त है। ऐसी स्थिति में सरकार के सामने विकट परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं क्योंकि आय के साधन कम हो जाने पर भी शासकीय कार्य चलाना पड़ता है।
8. **आयात-निर्यात नीति पर प्रभाव (Impact on Import-Export Policy)** - कृषि पदार्थों के मूल्य में वृद्धि का प्रभाव देश की आयात-निर्यात व्यवस्था पर भी पड़ता है। जब कृषि पदार्थों के मूल्यों में अन्धाधुन्ध वृद्धि होने लगती है तो सरकार को मूल्यों पर नियन्त्रण करने के लिए कृषि पदार्थ विदेश से आयात करने पड़ते हैं। इसके विपरीत, जब उनके मूल्यों में गिरावट आ जाती है तो उनका निर्यात किया जाने लगता है। इस प्रकार कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ाव का प्रभाव देश की आयात-निर्यात नीति पर भी पड़ता है।
9. **जमाखोरी एवं कालाबाजारी को बढ़ावा (Promotion of Hoarding and Black Marketing)** - कृषि वस्तुओं के मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ाव से कालाबाजारी एवं जमाखोरी जैसे अपराधों को बढ़ावा मिलता है। धनी व्यापारी मन्दी होने पर वस्तुओं का भण्डारण कर लेते हैं जिससे बाजार में उस खाद्य सामग्री एवं वस्तु की कमी हो जाती है। जब पुनः कीमतें बढ़ती हैं, तो बड़े मूल्यों पर खाद्य सामग्री निकालकर बेचते हैं। इस तरह से जमाखोरी करने वाले व्यापारी अधिक लाभ कमाते हैं। इस कारण जब उनमें अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तो वे कालाबाजारी तक को बढ़ावा देने से नहीं चूकते हैं।
10. **अनैतिकता एवं अशान्ति को बढ़ावा (Promoting Immorality and Unrest)** - दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली आवश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाने से सीमित आय वाले नागरिकों का जीवन-यापन कठिन हो जाता है। जिससे देश में भुखमरी, चोरी-डकैती, लूट, भ्रष्टाचार, अशान्ति एवं अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है। कृषि मूल्यों के अधिक बढ़ने एवं घटने से समाज में लोगों को अनैतिकता का शिकार होना पड़ता है जो कि अनेक कष्टों को जन्म देता है। इस प्रकार देश की सरकार एवं नागरिकों सभी के लिए यह मूल्य चिन्ता का एक व्यापक प्रश्न पैदा कर देती है जो कि हानिप्रद है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में कृषि उत्पादों के मूल्यों में धीमी गति से होने वाली वृद्धि से उत्पादक कृषकों को तो लाभ होता है परन्तु कीमतों में होने वाली तीव्र वृद्धि से देश की अर्थव्यवस्था विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

1.4. कृषि मूल्य स्थिरीकरण (Agricultural Price Stabilization)

कृषि मूल्य स्थिरीकरण से आशय कृषि मूल्यों में अधिक परिवर्तन होने की प्रवृत्ति को कम करके या एक निश्चित सीमा के अन्दर नियन्त्रित करने से है। दूसरे शब्दों में, मूल्यों में होने वाली कमी अथवा वृद्धि का एक सीमा के अन्दर रखने की क्रिया को 'मूल्य स्थिरीकरण' कहते हैं।

श्री अशोक मेहता (Mr. Ashok Mehta) की अध्यक्षता में नियुक्त 'खाद्यान्न जाँच समिति' ने मूल्य स्थिरीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है- **“एक विकासशील देश की अर्थव्यवस्था की कठिनाइयाँ विभिन्न प्रकार की मूल्य असामताओं में प्रतिबिम्बित होती है। इन मूल्य असमानताओं को एक सीमा के भीतर रखना ही मूल्य स्थिरीकरण कहलाता है।”**

अतः कृषि की मूल्य स्थिरीकरण से अर्थ कृषि मूल्यों में होने वाले अत्यधिक उतार-चढ़ाव को कम अथवा मूल्यों को निर्धारित सीमा के अन्तर्गत नियमित करने से है, जिससे समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की मूल्यों के उतार-चढ़ाव से होने वाली हानि से रक्षा की जा सके। कृषि उपजों के मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन से किसानों को सदैव हानि का भय बना रहता है। मूल्यों में अनिश्चितता के कारण अक्सर किसान भूमि के स्थायी विकास और कृषि सुधार पर दीर्घकालिक पूँजी लगाने से डरते हैं क्योंकि उस पूँजी का उचित प्रतिफल मिलने की कोई निश्चितता नहीं होती। इससे कृषि मूल्यों में स्थिरता कायम करने से किसान कृषि कार्यक्रमों पर अधिक पूँजी लगा सकेंगे और उन्हें कृषि उत्पादन बढ़ाने में प्रोत्साहन मिलता है।

कृषि पर नीति निर्धारण समिति की मूल्य उपसमिति के एक प्रतिवेदन (Report) के अनुसार, **“न्यूनतम मूल्य की गारण्टी देने से कृषि में न केवल स्थायित्व की भावना का विकास होगा, बल्कि इससे जीवन के अन्य क्षेत्रों में स्थायित्व बढ़ेगा।”**

1.4.1 कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण अथवा स्थायीकरण के उद्देश्य (Objectives of Stabilization of Agricultural Prices)

मूल्य स्थिरीकरण अथवा स्थायीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- 1. किसानों के हितों की रक्षा (Protect the interests of Farmers)** - कृषि मूल्यों के स्थिरीकरण का प्रमुख उद्देश्य किसानों के हितों की रक्षा करना है। मूल्यों में परिवर्तन के कारण सर्वाधिक क्षति कृषकों को होती है। स्थिरकरण से किसान को उसकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त होता है तथा भविष्य के लिए कृषि उत्पादन योजना बनाने में सुविधा मिलती है।
- 2. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा (Protect the interests of Consumers)** - मूल्य परिवर्तन का प्रभाव किसानों के बाद उपभोक्ताओं पर अधिक पड़ता है। मूल्य वृद्धि होने से उपभोक्ताओं के बजट असन्तुलित हो जाते हैं। अतः मूल्य स्थायीकरण से उपभोक्ताओं को सन्तुलित बजट बनाने में सहयोग प्राप्त होता है, साथ ही उन्हें उचित मूल्य पर खाद्यान्नों की उपलब्धि भी हो जाती है।
- 3. कृषि मूल्यों में मौसमी परिवर्तन को कम करना (Mitigating seasonal changes in Agricultural Prices)** - फसल काटने के तुरन्त बाद किसान को अपना उत्पादन न्यूनतम मूल्य पर बेचना पड़ता है तथा शेष महीनों में उपभोक्ता को अधिक मूल्य पर कृषि उपजों को खरीदना पड़ता है।

परिणामस्वरूप दोनों का शोषण हाता है। कृषि मूल्य के सामयिक परिवर्तन में कमी होने से उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों को लाभ मिल सकता है।

4. **औद्योगिक उत्पादन के मूल्यों में स्थिरता (Stability in the prices of Industrial Production)** - कृषि मूल्यों के स्थायीकरण से औद्योगिक उत्पादन के मूल्यों में स्थिरता बनाए रखने में सहयोग मिलता है। इससे औद्योगिक शान्ति बनी रहती है एवं उत्पादन पूर्व योजना के अनुसार निरन्तर चलता रहता है।
5. **उत्पादक एवं उपभोक्ता के हितों में सन्तुलन बनाए रखना (Maintain a balance between the interests of the Producer and the Consumer)** - उत्पादक का हित अधिक मूल्य पर वस्तु की बिक्री करना तथा उपभोक्ता का हित कम-से-कम मूल्य पर वस्तु को खरीदने में है। इन पारस्परिक विरोधी हितों में सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है जिससे कि दोनों पक्षों को उचित लाभ मिल सके। यह मूल्य स्थिरीकरण से ही सम्भव है।
6. **सरकार को लाभ (Benefit to the Government)** - मूल्य स्थायीकरण द्वारा सरकार की अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है। मूल्यों में परिवर्तन के कारण सरकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे- आयात-निर्यात, मूल्य नियन्त्रण, राशनिंग, औद्योगिक अशान्ति आदि। इन कठिनाइयों के हल के लिए सरकार को मूल्य स्थायीकरण से लाभ होता है।
7. **कृषि के आय-व्यय कारकों में मूल्य सन्तुलन बनाए रखना (Maintaining price balance between Income-Expenditure factors of Agriculture)** - कृषि में प्रयुक्त कारकों की लागत का प्रभाव किसानों की आय पर पड़ता है। व्यय कारकों के मूल्य में वृद्धि कृषि उत्पादन के मूल्य में वृद्धि की अपेक्षा अधिक है तो कृषक की कृषि को हानि होगी। अतः कृषि में नियोजित वृद्धि के लिए कृषि के साथ-साथ आय-व्यय कारकों के मूल्य में सन्तुलन आवश्यक है।
8. **खाद्यान्न एवं गैर- खाद्यान्न तथा कृषि एवं औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में समन्वय स्थापित करना (To establish co-ordination between the Prices of Food Grains and Non-Food and Agricultural and Industrial Commodities)** - कृषि क्षेत्र के समन्वित विकास के लिए खाद्य, अखाद्य एवं औद्योगिक उत्पादनों के मूल्यों में सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है।
9. **उत्पादन को कायम करना (To Maintain Production)** - उत्पादन स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि मूल्य स्तर उत्पादन मूलक (production oriented) हो। उत्पादन वृद्धि से ही मुद्रा स्फीति को न्यूनतम रखा जा सकता है। इसके लिए कृषि उत्पादन मूल्यों को कृषकों के हित में होना चाहिए जिससे कृषकों के जीवन-स्तर में सुधार हो सके।

1.4.2. कृषि मूल्य स्थिरीकरण के लाभ (Benefits of Agricultural Price Stabilization)

भारत एक विकासशील देश है। इसलिए देश की सम्पन्नता किसानों की सम्पन्नता पर निर्भर करती है और किसानों की सम्पन्नता बहुत कुछ कृषि उत्पादन पर निर्भर करती है। इस कारण कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण

आवश्यक है। सहकारी योजना समिति के अनुसार, “सरकार को मूल्यों को एक ऐसी सीमा के भीतर स्थिर रखने की नीति अपनानी चाहिए जो उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के लिए उचित हो।” यदि ऐसा किया जाये तो मन्दी का आगमन रुक सकेगा एवं अर्थव्यवस्था में स्थिरता आयेगी।

कृषि मूल्य स्थिरीकरण से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं

1. **किसानों को लाभ (benefits to Farmers)** - कृषक को उचित मूल्य मिलने की गारण्टी होने से वह कृषि में सुधार की अपनी योजना बनाकर उसे सही ढंग से लागू कर सकता है, जिससे वह अपनी आय अथवा जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकता है। मूल्य स्थायित्व से किसान अपनी खेतों में बोई जाने वाली विभिन्न फसलों का उचित ढंग से नियोजन कर सकता है तथा नई एवं बंजर भूमि को प्रयोग में लाया जा सकता है। साथ ही इसके द्वारा कृषकों की आय को स्थायी रखने में कृषि कार्य में कृषकों का उत्साह बढ़ेगा। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी।
2. **उपभोक्ता को लाभ (Benefit to the Consumer)** - मूल्य स्थिरीकरण से उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर कृषि पदार्थ प्राप्त हो सकेंगे जिससे वे अपना पारिवारिक बजट सन्तुलित कर जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं और आधिकांश जनसंख्या की औद्योगिक उत्पादन सम्बन्धी माँग सुनिश्चित होने के कारण मन्दी एवं तेजी के आगमन पर रोक लग जाती है।
3. **राष्ट्र को लाभ (Benefit to the Nation)** - कृषि विकास से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी तथा देश को आर्थिक विकास का सुदृढ़ आधार मिल सकेगा। कृषि मूल्यों में स्थिरता रहने से निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है।

1.4.3 कृषि मूल्य स्थिरीकरण हेतु सरकार द्वारा किए गए उपाय (Measures taken by the Government for Agricultural Price Stabilization)

कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण के लिए सरकार द्वारा लगातार प्रयास जारी है। इस सम्बन्ध में सरकार की नीति के दो उद्देश्य रहे हैं। **पहला**, किसानों को अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित करना और **दूसरा**, उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर कृषि पदार्थ उपलब्ध कराना।

कृषि मूल्य स्थिरीकरण के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का विवरण निम्नवत् है:

1. **कृषि उत्पादन में वृद्धि (Increase in Agricultural Production)** - भारत सरकार ने कृषि मूल्यों में स्थिरता लाने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न किया है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भूमि सुधार कार्यक्रम (Land Reform Program) को प्रभावशाली ढंग से लागू किया गया है। सरकारी फार्मों में आधुनिक बीजों का उत्पादन कर, कृषकों को वैज्ञानिक तरीके से खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है और सिंचाई सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि की गई है। इसी का परिणाम है कि स्वतन्त्रता के बाद खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि में सरकार को पर्याप्त सफलता मिली है।
2. **सरकारी खरीद (Public Procurement)** - मूल्यों को स्थिर रखने के उद्देश्य से सरकार ने खाद्यान्नों की सरकारी खरीद प्रारम्भ की है। इसके द्वारा देश में सुरक्षित भंडार (buffer stock) बनाया गया है एवं राशनिंग के माध्यम से उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है।

3. **खाद्यान्न वस्तुओं पर नियन्त्रण (Control over Food Items)** - सरकार कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ वस्तुओं को अपने हाथ में लेकर, कीमतों को लागू कर उनके वितरण की व्यवस्था करती है। कृषि के व्यापार का सरकारीकरण, राशन द्वारा वस्तुओं का वितरण, निर्धारित मात्रा के ऊपर वस्तुओं के रखने पर रोक, पूर्व निर्धारित कीमतों पर किसानों से वसूली आदि उपर्युक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं।
4. **उचित मूल्य की दुकानें (Fair Price Shops)** - शासन ने उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बड़ी मात्रा में उचित मूल्य की दुकानों की व्यवस्था की है।
5. **अधिकतम व न्यूनतम कीमतों का निर्धारण (Determination of Maximum and Minimum Prices)** - अधिकतम और न्यूनतम कीमतें निर्धारित करने का आशय यह है कि कीमतें को निर्धारित ऊपरी सीमा से आगे बढ़ने ना दिया जाए और ना ही न्यूनतम सीमा से नीचे गिरने दिया जाए। इस प्रकार कीमतों की ऊपरी सीमा से उपभोक्ताओं के तथा न्यूनतम सीमा से उत्पादकों के हितों की रक्षा होगी। अधिकतम व न्यूनतम सीमा का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाता है।
6. **साख - नियन्त्रण (Credit Control)** - मूल्यों के उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए सरकार ने साख का विस्तार एवं संकुचन करके मूल्य स्थायीकरण के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया है। भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) मूल्य बढ़ने पर साख नियन्त्रण करती हैं एवं मूल्य गिरने पर साख का विस्तार करती है। जिससे मूल्यों में स्थायित्व बना रहता है।
7. **भारतीय खाद्य निगम की स्थापना (Establishment of Food Corporation of India)** - केन्द्रीय सरकार ने जनवरी, 1965 में भारतीय खाद्य निगम को स्थापना की है। यह निगम खाद्यान्नों की खरीद करके उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से खाद्यान्नों का वितरण करता है। जिससे कृषि मूल्यों में स्थिरता बनी रहती है।
8. **कृषि मूल्य आयोग का गठन (Constitution of Agriculture Price Commission)** - सरकार को खाद्यान्नों की खरीद के लिए मूल्य निर्धारित करने एवं विक्रय मूल्य (selling price) से सम्बन्धित परामर्श देने के लिए 1 जनवरी, 1965 को 'कृषि मूल्य आयोग (Agriculture Price Commission)' का गठन किया गया है। प्रतिवर्ष आयोग, विभिन्न कृषि उपजों के न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्यों के सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देता है। जिसके आधार पर ही सरकार समर्थन मूल्यों की घोषणा करती है।
9. **न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्यों की घोषणा (Declaration of Minimum and Maximum Prices)** - सरकार, कृषि उपजों के मूल्यों में गिरावट को रोकने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष न्यूनतम मूल्यों की घोषणा करती है। इस समर्थन मूल्य से भी उपज का मूल्य नीचे गिरता है तो सरकार समर्थन मूल्य पर खरीद प्रारम्भ कर देती हैं जिससे कि कृषकों को हानि ना उठानी पड़े। इसी प्रकार यदि उपज की मूल्य बाजार में अधिक बढ़ने लगती है तो सरकार उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से अधिकतम मूल्य निर्धारित कर देती है। इस मूल्य से अधिक मूल्य कोई व्यापारी वसूल करता है तो उसके विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाती है।

10. खाद्यान्नों का आयात (Import of Food Grains) - सरकार द्वारा खाद्यान्नों की कमी को आयात

करके पूरा किया जाता है ताकि उसके मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि को रोका जा सके।

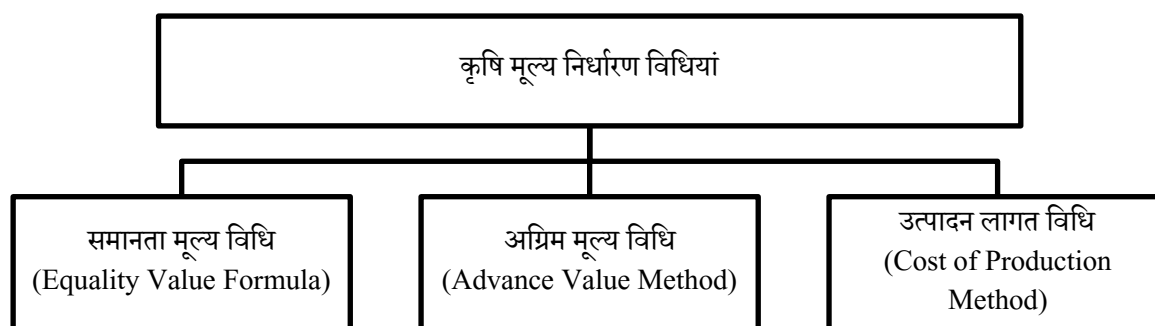
उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि कृषि मूल्यों में स्थायीकरण के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के मूल्यों में सामान्य स्तर की तुलना में अधिक वृद्धि नहीं हो सकी है।

1.5 कृषि लागत और मूल्य में सम्बन्ध (Relationship between Agricultural Cost and Price)

आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में पहले-पहल कृषि मूल्यों के प्रति नकारात्मक नीति अपनाई गयी थी। उस समय इन नीति के अन्तर्गत कृषि उत्पादों के मूल्यों को निर्धारित करने के लिए कोई विशेष आधार नहीं बनाया गया था। जब कृषि से सम्बन्धित सकारात्मक मूल्य नीति ने नकारात्मक मूल्य नीति का स्थान लिया तब सरकार के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो गया कि मूल्यों को किस स्तर पर निर्धारित किया जाए कि वे किसानों को अधिकतम उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित करें। न्यूनतम समर्थन मूल्यों को निर्धारित करने के लिए कई प्रकार के सिद्धान्त सुझाए गए।

प्रत्येक विधि की अपनी सीमाएं होती हैं, साथ ही इनके गुण भी अलग-अलग होते हैं। इन विधियों का चयन मुख्य रूप से मूल्य निर्धारण करने के उद्देश्य तथा आवश्यक आंकड़ों की उपलब्धता एवं इन पर होने वाले खर्च आदि तथ्यों पर निर्भर करता है।

कृषि मूल्य निर्धारण में मूलतः तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है।



1.5.1 समानता मूल्य विधि (Equality Value Method)

समानता मूल्य का अर्थ उस मूल्य से लगाया जाता है जो किसी वस्तु की एक इकाई को वही क्रय शक्ति प्रदान करता है जो कि आधार वर्ष में प्राप्त की जाती थी। कृषि मूल्य निर्धारण की यह विधि उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इसमें खाद्य तथा अखाद्य दोनों प्रकार की वस्तुओं के सापेक्षित मूल्यों को प्रयोग में लाया जाता है। इस विधि में मुख्यतः तीन बातों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है:

1. प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग आधार वर्ग
2. प्रत्येक वस्तु का मूल्य सूचकांक
3. प्रत्येक वस्तु का समानता मूल्य

इस विधि की गणना में आधार वर्ष के विक्रय मूल्य को वर्तमान क्रय मूल्य सूचकांक से गुणा करते हैं तथा गुणनफल को आधार वर्ष के क्रय मूल्य से भाग दे देते हैं। जो भागफल आता है वही समानता मूल्य होता है। इसे निम्नांकित सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\text{समता मूल्य} = \frac{\text{आधार का विक्रय}}{\text{आधार वर्ष का क्रय मूल्य}}$$

इस विधि का प्रयोग अमेरिका में प्रचलित है। भारत में यह विधि प्रयोग में नहीं लायी जाती है।

1.5.2 अग्रिम मूल्य विधि (Advance Value Method)

इस विधि में कृषिगत उत्पादन के मूल्य को फसल की बुआई (sowing) से पूर्व ही घोषित कर दिया जाता है। जिससे किसान अपनी उत्पादन योजना कृषि मूल्य के आधार पर निश्चित कर सके। इस विधि का प्रयोग अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में अधिकतर किया जाता है। भारत में इस विधि को लागू करने में निम्नालिखित कठिनायों का सामना करना पड़ता है:

1. इस विधि में मूल्य निर्धारित करते समय देश एवं विदेशों की माँग एवं पूर्ति तथा भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रखना पड़ता है।
2. इन सम्भावित आँकड़ों की अनुपलब्धता तथा योग्य व्यक्तियों की कमी के कारणवश: यह विधि हमारे देश के लिए अव्यावहारिक है।

1.5.3 उत्पादन लागत विधि (Cost of Production Method)

इस विधि में कृषि में कृषि मूल्य का निर्धारण उत्पादन लागत के आधार पर किया जाता है। फसल की कुल उत्पादन लागत में मानव-श्रम, उपकरण, पशु श्रम, बीज का खर्च, खाद एवं उर्वरक, सिंचाई पर व्यय, फसल सुरक्षा व्यय, भूमि लगान मूल्य तथा उपरिव्यय आदि व्यय, कारकों को सम्मिलित किया जाता है। प्रति कुन्तल उत्पादन व्यय निकालने के लिए अग्रांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{प्रति कुन्तल उत्पादन व्यय} = \frac{\text{फसल पर कुल व्यय} \times \text{वस्तु का विक्रय मूल्य प्रति कुन्तल}}{\text{फसल से कुल आय}}$$

कृषि उत्पादों के न्यूनतम मूल्यों को निर्धारित करने के लिए या तो वास्तविक औसत उत्पादन लागत को आधार बनाया जा सकता है और या फिर ऐच्छित पूर्ति के लिए उत्पादित, अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत को। कई बार उत्पादन लागत वास्तविक खर्च की की जगह कृषि वैज्ञानिकों द्वारा साधनों की सुझाई गई मात्रा तथा उनसे होने वाले फसल के अपेक्षित उत्पादन की मात्रा के आधार पर निश्चित की जाती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, मूल्यों को निर्धारित करने का मुख्य लाभ यह है कि मूल्यों में असाधरण गिरावट की अवस्था में एक उत्पादक प्रत्येक प्रकार की हानि से बच जाता है। उत्पादन लागत की गणना में परन्तु कई प्रकार

की बाधायेँ आती है। पारिवारिक श्रम का कैसे मूल्यांकन किया जाये? घरेलू स्रोत से लगाये उत्पादन साधनों का कैसे मूल्य लगाया जाये? तथा एक विशेष फसल के लिए प्रबन्धकीय लागत कितनी होनी चाहिए?, इन प्रश्नों के उत्तर देने आसान नहीं हैं। उत्पादन लागत के सिद्धान्त को अपनाने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि भूमि के योगदान की लागत का अनुमान लगाना काफी कठिन होता है। उत्पादन प्रक्रिया में कुछ लागतें ऐसी भी होती हैं जोकि सभी फसलों के उत्पादन के लिए संयुक्त रूप से लगाई जाती है। उनका प्रत्येक फसल के लिए अलग-अलग से बांटने का कोई सन्तोषजनक तरीका नहीं है।

इसके अतिरिक्त औसत लागत की धारणा भी एक प्रकार से भ्रान्तिपूर्ण है। भूमि की गुणवत्ता तथा जलवायु की दृष्टि से देश कई खण्डों में बटा हुआ है तथा एक ही खण्ड में भिन्न-भिन्न खेतों पर, खेती की विभिन्न प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं। इस अवस्था में उत्पादों की प्रति इकाई औसत लागत, उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों के निर्धारण का ठीक मापदण्ड नहीं बन सकती। ये मूल्य, प्रत्येक खण्ड के प्रत्येक खेत पर लगने वाली लागत को पूरा नहीं कर सकते। उत्पादन बढ़ाने के लिए अपनाई जाने वाली मूल्य नीति, औसत लागत पर आधारित नहीं की जा सकती है। ऐसी अवस्था में एक उत्पादक औपचारिक औसत लागत के स्थान पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त प्रतिफल की धारणाओं के प्रयोग को अधिक महत्व देगा।

उत्पादन की वास्तविक लागत, कृषि उत्पादों के मूल्यों के निर्धारित करने में कोई भी भूमिका नहीं निभा सकती क्योंकि उत्पादन की वास्तविक कुल लागत का पता तो केवल उत्पादों के बिक्री के लिए बाजार में पहुंचने पर ही लगेगा, परन्तु फसलों के न्यूनतम मूल्य तो फसल की बुआई से पहले घोषित कर दी जाती हैं। इसलिए उत्पादन लागत जिसके आधार पर मूल्य निर्धारित किये जाते हैं वह वास्तव में अनुमानित उत्पादन लागत होती है न कि वास्तविक उत्पादन लागत।

भारत में मूल्य निर्धारित करने में **अनुमानित उत्पादन लागत विधि (Estimated Production Cost Method)** का प्रयोग किया जाता है। भारत के कृषि मूल्य आयोग ने भी इस विधि को स्वीकार किया है। इस विधि में फसलों का मूल्य उसके उत्पादन व्यय के आधार पर ज्ञात किया जाता है जिससे किसानों को उत्पादन में प्रोत्साहन मिलता है। वस्तु की उत्पादन लागत में जितनी बढ़ोतरी होती है उसी अनुपात में वस्तु का मूल्य भी निर्धारित किया जाता है जिससे कि किसानों को कृषि अनिश्चितता तथा जोखिम का लाभ भी मिल सके। कृषि उपज का मूल्य निर्धारित करते समय विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाता है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में फसलों का उत्पादन स्तर, विपणन एवं यातायात व्यय आदि भिन्न-भिन्न होते हैं।

भारत में **कृषि लागत तथा मूल्य आयोग (Agricultural Costs and Prices Commission)** भी अनुमानित लागतों के आधार पर ही न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करता है। भारत की दो मुख्य फसलों **गेहूँ** तथा **चावल** के लिए अनुमानित C_2 लागत प्रति क्विंटल (सौ किलोग्राम) तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रदर्शन तालिका 1.1 में किया गया है।

तलिका 1.1

गेहूँ तथा चावल की अनुमानित लागत तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य

वर्ष	चावल			गेहूँ		
	अनुमानित C ₂ लागत/क्विंटल (रूपए में)	न्यूनतम समर्थन मूल्य (रूपए में)	लागत के ऊपर न्यूनतम समर्थन मूल्य (प्रतिशत में)	अनुमानित C ₂ लागत/क्विंटल (रूपए में)	न्यूनतम समर्थन मूल्य (रूपए में)	लागत के ऊपर न्यूनतम समर्थन मूल्य (प्रतिशत में)
1999-2000	400.6	520	29.8	415.9	550	32.2
2000-2001	429.3	540	25.8	448.7	580	29.3
2001-2002	471.7	560	18.7	478.9	610	27.3
2002-2003	505.2	560	10.9	483.3	620	28.2
2004-2005	530.9	590	11.1	515.6	640	24.1
2006-2007	569.5	650	14.1	573.6	850	48.2
2007-2008	595.0	775	30.3	624.5	1000	60.1
2008-2009	619.0	930	50.2	648.6	1080	66.5
2009-2010	644.9	1030	59.2	741.0	1100	48.4

स्रोत - CACP की विभिन्न रिपोर्ट

जिसमें लागत के ऊपर न्यूनतम समर्थन मूल्य का प्रतिशत भी दर्शाया गया है। जिससे पता चलता है कि चावल का समर्थन मूल्य लागत की तुलना में ज्यादा तो रहा है परन्तु उसमें उतार-चढ़ाव देखा गया है। जबकि गेहूँ में यह उतार-चढ़ाव चावल की तुलना में कम था। 1999-2000 में चावल का न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत से 30 प्रतिशत तथा गेहूँ का 32 प्रतिशत था जबकि यह 2002-03 में कम हो गया परन्तु 2009-10 में यह बढ़कर चावल के लिए 60 प्रतिशत के लगभग हो गया जबकि गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 2007-08 में लागत से 60 प्रतिशत तथा 2008-09 में 66.5 प्रतिशत अधिक था। लेकिन 2009-10 में वर्ष गेहूँ का न्यूनतम समर्थक मूल्य लागत की मात्र 48 प्रतिशत अधिक रहा जबकि चावल का 60 प्रतिशत अधिक रहा।

वर्ष 1981-82 से 2007-08 के लिए धान तथा गेहूँ की C₂ खेती की लागत प्रति हेक्टेयर तथा C₂ उत्पादन की लागत प्रति क्विंटल की जांच की गई। जिसके बाद यह बहस का मुद्दा बन गया कि चावल के लिए भी गेहूँ के बराबर न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किया जाना चाहिए क्योंकि दोनों फसलों की लागत में समानता है। इस मूद्दे को चावल तथा गेहूँ के लागत अनुपात द्वारा देखा जा सकता है। गेहूँ तथा चावल के प्रति इकाई कुल लागत (जिसमें भूमि, श्रम तथा पूँजी रोपित लागत) को तालिका 1.2 में दर्शाया गया है कि 1994-05 के बाद स्थिति बदल गई जब चावल की प्रति इकाई उत्पादन लागत गेहूँ से अधिक हो गई। वर्ष 1999-2000 के बाद भी चावल की प्रति इकाई उत्पादन लागत गेहूँ से अधिक थी।

वर्ष 2013-14 से 2018-19 तक (विपणन मौसम) गेहूँ, धान तथा मोटे अनाज का न्यूनतम समर्थन मूल्य (कृषि लागत और मूल्य आयोग की सिफारिशों के आधार पर कृषि एवं सहकारिता विभाग द्वारा निर्धारित) निम्नानुसार है:-

तालिका 1.2

गेहूँ, धान तथा मोटे अनाज का न्यूनतम समर्थन मूल्य (₹ प्रति क्विंटल)

विपणन मौसम	गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य (सहित बोनस)	धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य		मोटे अनाज का समर्थन मूल्य					
		साधारण +बोनस	श्रेणी 'अ'+बोनस	ज्वार हाईब्रिड	ज्वार मलडंडी	बाजरा	मकई	रागी	जौ
2013-14	1350	1310	1345	1500	1520	1250	1310	1500	980
2014-15	1400	1360	1400	1530	1550	1250	1310	1550	1100
2015-16	1450	1410	1450	1570	1590	1275	1325	1650	1150
2016-17	1525	1470	1510	1625	1650	1330	1365	1725	1225
2017-18	1625	1550	1590	1700	1725	1425	1425	1900	1325
2018-19	1735	1750	1770	2430	2450	1950	1700	2897	1410
2019-20	1840	-	-	-	-	-	-	-	1440

स्रोत: <https://dfpd.gov.in/minimum-support-prices-hi.htm>

प्रारम्भ में चावल की उत्पादन लागत गेहूँ से कम है क्योंकि चावल के लिए श्रम तथा पूँजी की रोपित लागत गेहूँ की तुलना में कम है। तालिका 1.3 से पता चलता है कि 1981-82 में चावल की उत्पादन लागत गेहूँ से कम थी जबकि 1994-95 में यह स्थिति बदल गई और चावल की लागत गेहूँ से अधिक हो गई, इसके बाद चावल तथा गेहूँ की उत्पादन तथा खेती की लागत लगभग बराबर हो गई।

तालिका 1.3

भारत में विभिन्न वर्षों में गेहूँ तथा चावल की विभिन्न लागतें

वर्ष	चावल		गेहूँ		चावल की लागत का गेहूँ की लागत में अनुपात	
	COP	COC	COP	COC	COP	COC
1981-82	99	2892	122	3260	81	89
1990-91	185	6526	197	6872	94	95
1994-95	279	11212	294	10990	95	102
1996-97	338	12651	361	13760	94	92
1998-99	398	15495	383	14316	104	108
1999-00	442	16978	415	16459	106	103
2000-01	448	17365	450	1713	99	101
2001-02	469	18665	466	17279	101	108
2004-05	529	20670	537	19810	98	104
2005-06	529	21182	592	21847	89	97
2006-07	546	22059	586	23847	93	93

COP- उत्पादन की लागत प्रति हेक्टेयर; COC-खेती की लागत प्रति क्विंटल

स्वतन्त्रता के पश्चात् नियोजन काल में भी कृषि मूल्य स्थिर नहीं रहे। इस काल में कृषि कीमतें सतत् रूप में बढ़ती रही हैं, केवल अपवाद रूप में पहली पंचवर्षीय योजना है जब कृषि कीमतों में कुछ गिरावट आई। **प्रथम योजना** के समय यद्यपि मूल्य काफी ऊँचे थे कृषि उत्पादन बढ़ने से कृषि मूल्यों में लगभग 20 प्रतिशत की गिरावट आई। सूचकांक 1951-52 में 110 से कम होकर 1955-56 में 88 हो गया। **द्वितीय योजना** में आशा के अनुरूप कृषि उत्पादन न बढ़ने और मूद्रा स्फीति के कारण कृषि मूल्यों में 27 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस समय से कृषि कीमतें लगातार बढ़ रही हैं, केवल वर्ष 1961-62 को छोड़कर। **तृतीय योजना** के प्रथम दो वर्षों में कृषि मूल्य न्यूनाधिक स्थिर रहे। शेष वर्षों में कृषि मूल्य पुनः बढ़ने लगे। 1966-67 में देशव्यापी सूखा के कारण कृषि मूल्य बहुत ऊँचे चले गये थे। 1967-68 में खाद्य पदार्थों के मूल्यों में 21.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। **चौथी योजना** में 1970-71 में कृषि कीमतें 1961-62 की तुलना में दुगुनी बढ़ी थीं। इस प्रकार 1980-81 में 1970-71 की दो गुना से भी अधिक थी। आपातकाल के समय को छोड़कर कृषि मूल्य में वृद्धि की प्रवृत्ति अब भी जारी है। मूल्य सूचकांक समस्त खाद्य वस्तुओं के जो वर्ष 1981-82 में 100 था, 1990-91 में 201 तथा 1992-93 में 241 हो गया। यह सूचकांक आधार वर्ष 1993-94 में 100 पर, वर्ष 1994-95 में 113, 1999-2000 में 165, 2003-04 में 182 तथा 2004-05 में 178 पर हो गया। जैसा तालिका 1.4 प्रदर्शन में किया गया है।

तालिका 1.4

प्रमुख कृषि उत्पादों के थोक मूल्य सूचकांक (आधार वर्ष- 1993-94=100)

वर्ष	चावल	गेहूँ	दालें	खाद्य तेल	चीनी एवं गुड	समस्तखाद्य वस्तुएं
1997-98	134	138	146	114	134	141
1998-99	146	152	160	139	154	159
1999-2000	171	175	166	122	156	165
2000-01	168	177	180	103	153	170
2003-04	169	181	177	158	139	182
2004-05	168	184	174	156	163	178

स्रोत -आर्थिक समीक्षा, 2005-06

केवल पाँच वर्षों 1962-63, 1968-69, 1975-76, 1978-79 तथा 1999-2000 को छोड़कर, अन्य सभी वर्षों में कृषि कीमतें अपने पहले के वर्षों की तुलना में अधिक रही है। केवल यही पाँच वर्ष ऐसे हैं जबकि प्रतिशत वृद्धि ऋणात्मक है। स्वतन्त्रता के पश्चात् 53 वर्ष ऐसे हैं जिसमें लगातार कृषि मूल्य बढ़ा है। कृषि कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण देश में स्फीतिकारी शक्तियाँ ओर मजबूत हुई हैं और सभी वस्तुओं का थोक कीमत सूचकांक बढ़ा है। बढ़ी कीमतों का कुप्रभाव जनसंख्या के निम्न आय वर्ग के लोगों पर पड़ा है जिनकी क्रय शक्ति में तेजी से गिरावट आने से उनका जीवन-निर्वाह मुश्किल हो गया है। कीमतों की वृद्धि से जमाखोरी कालाबाजारी तथा अस्थिरता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है।

1.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

1. मूल्यों में होने वाली कमी अथवा वृद्धि का एक सीमा के अन्दर रखने की क्रिया को कहते हैं।
2. केन्द्रीय सरकार ने में भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की है।
3.को 'कृषि मूल्य आयोग' का गठन किया गया है।
4. समता मूल्य को सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

एक वाक्य में उत्तर दो -

1. कृषि मूल्य को प्रभावित करने वाले कारक क्या है?
2. कृषि मूल्यों में उच्चावचन का किसानों पर क्या परिणाम होता है?
3. कृषि मूल्य स्थितिकरण के लाभ क्या है?
4. कृषि मूल्य स्थिरीकरण के सरकार द्वारा किए गए मूल उपाय क्या है?
5. उत्पादन लागत विधि का सूत्र क्या है?

1.7 सारांश (Summary)

कृषि उत्पाद का कृषि लागतों के अनुसार जो मूल्य निर्धारित किया जाता है, उसे कृषि मूल्य कहते हैं। कृषि मूल्य अनेक तत्वों से प्रभावित होता है जैसे कृषि उत्पादन में उतार-चढ़ाव, सरकार की खाद्य नीति, सामान्य मूल्य स्तर, भण्डार व्यवस्था, सरकारी खर्च, यातायात के साधन आदि। जिससे कृषि मूल्य में उतार-चढ़ाव होता रहता है। जिससे किसानों, उपभोक्ता, उत्पादक तथा सरकार के हित प्रभावित होते हैं। इसलिए कृषि मूल्य में स्थिरीकरण आवश्यक है जिससे सभी के हितों की रक्षा हो। सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक उपाय किए गए जैसे- सरकारी खाद्यान्न खरीद, आयात-निर्यात, अधिकतम व न्यूनतम मूल्य निर्धारण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था, भारतीय खाद्य निगम की स्थापना, कृषि लागत तथा मूल्य आयोग की स्थापना। लेकिन कृषि मूल्य निर्धारण में कृषि लागतों का विशेष महत्व है। इसलिए सरकार अनुमानित लागत के अनुसार कृषि उत्पाद के मूल्यों की घोषणा करती है।

1.8 शब्दावली (Glossary)

- **अनुदान/रियायत** - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **वैश्रीकरण** - ऐसी व्यवस्था जहाँ विश्व के सभी देशों में वस्तुएँ लाने ले जाने की स्वतंत्रता हो।
- **विपणन** - बाजार व्यवस्था जिससे माल को बेचा जा सके।
- **वरीयता** - प्राथमिकता या प्रमुखता

- कृषि साख - वह ऋण (साख) जो कृषि कार्य हेतु लिया जाता है।
- उर्वरक - रासायनिक खाद जैसे-यूरिया, पोटाश, फास्फेट आदि।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

- | | |
|--------------------|--|
| 1. मूल्य स्थितिकरण | 2. जनवरी 1965 |
| 3. 1 जनवरी, 1965 | 4. आधार का विक्रय/आधार वर्ष का क्रय मूल्य। |

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- सोनी, आर. एन.; (2007) 'कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय', विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा।
- मिश्र, एस. के. पुरी, वी. के.; (2008) 'भारतीय अर्थशास्त्र', हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
- दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम.; (2007) 'भारतीय अर्थव्यवस्थाएँ', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- माथुर, बी. एल.; (2011) 'कृषि अर्थशास्त्र', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त, डॉ शिव भूषण; (2010) 'कृषि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन आगरा।
- मामेरिया, डॉ. चतुर्भुज एवं जैन डॉ. एस. सी.; (1995) 'भारतीय अर्थशास्त्र', प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- Bilgrami, S. A. R.; (2006) 'An Introduction to Agricultural Economics,' Himalaya Publishing House Delhi.

1.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Texts)

- Taylor, H.C., (1949), 'Outlines of Agricultural Economic's, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), 'Agriculture and Economic Development'; Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), 'Fundamentals Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), 'Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): 'Indian Agricultural Development since Independence', Oxford & IBH, New Delhi.

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. कृषि मूल्य से आप क्या समझते हैं? कृषि मूल्य को प्रभावित करने वाले कारक का वर्णन करो।
2. कृषि मूल्य में उतार-चढ़ाव का क्या प्रभाव पड़ता है? कृषि मूल्य स्थिरीकरण का महत्व बताओ।

3. कृषि मूल्य स्थिरीकरण का क्या अर्थ है? कृषि मूल्य स्थिरीकरण के लिए सरकार द्वारा किए गए उपायों की व्याख्या करें।
4. कृषि लागत तथा मूल्य सम्बन्ध की व्याख्या करें।

इकाई 2 - कृषि मूल्य नीति, मूल्य और लागत आयोग का स्वरूप एवं भूमिका (Agricultural Price Policy, Nature and Role of Commission for Agricultural Costs and Prices)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 कृषि मूल्य नीति
 - 2.3.1 कृषि मूल्य नीति के उद्देश्य
 - 2.3.2 कृषि मूल्य नीति की मुख्य विशेषताएं
 - 2.3.3 भारत में कृषि मूल्य नीति
- 2.4 कृषि लागत और मूल्य आयोग
 - 2.4.1 कृषि लागत और मूल्य आयोग के कार्य
 - 2.4.2 आयोग के कृषि मूल्य नीति के उद्देश्य
 - 2.4.3 आयोग की कृषि मूल्य नीति में भूमिका
- 2.5 कृषि मूल्य नीति का मूल्यांकन
- 2.6 भारत की कृषि नीति में सुधार के सुझाव
- 2.7 अभ्यास प्रश्न
- 2.8 सारांश
- 2.9 शब्दावली
- 2.10 अभ्यास प्रश्न
- 2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1. प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व की इकाई में आप कृषि मूल्य के अर्थ, उतार-चढ़ाव तथा स्थिरीकरण की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में कृषि मूल्य नीति तथा कृषि लागत तथा मूल्य आयोग के स्वरूप तथा भूमिका का मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। इसके अध्ययन से आप कृषि मूल्य नीति में कृषि लागत व मूल्य आयोग की भूमिका को जान जायेंगे।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ कृषि मूल्य नीति के विभिन्न पहलुओं को जान जायेंगे।
- ✓ कृषि लागत तथा मूल्य आयोग की कृषि मूल्य निर्धारण में भूमिका को समझ सकेंगे।
- ✓ भारत की कृषि मूल्य नीति को जान जायेंगे।

2.3 कृषि मूल्य नीति (Agricultural Price Policy)

कृषि उत्पादन की कीमतों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव से किसानों तथा समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए एक कृषि मूल्य नीति का होना अत्यन्त आवश्यक है। कृषि मूल्य नीति, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए, खाद्यान्नों की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए तथा औद्योगिक क्षेत्र की कच्चे माल की आवश्यकता की नियमित पूर्ति के लिये आवश्यक है क्योंकि कृषि उत्पादन की कीमत में तेजी से गिरावट आने से उसका उत्पादक किसान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी आय में तेजी से कमी होती है। जिससे वह अगले वर्ष उसी फसल को दोबारा उत्पादित करने से हिचकिचाता है। यदि वह फसल सामान्य जनता के उपभोग की वस्तु है तो अगले वर्ष पूर्ति, माँग की अपेक्षा कम रहने की सम्भावना रहेगी और इस अन्तर को आयात द्वारा पूरा करना पड़ता है।

कृषि मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए, जो किसानों और उपभोक्ताओं दोनों के ही हितों की रक्षा कर सके। अतिरिक्त उत्पादन वाले वर्षों में सरकार उचित दामों पर किसानों का उत्पादन खरीद लेती है ताकि उन्हें हानि न हो। ये दाम ऐसे होने चाहिए कि किसानों की उत्पादन लागत को पूरा करने के बाद कुछ न्यूनतम लाभ भी दे। सरकारी खरीद से जो प्रतिरोधक भण्डार (buffer stock) इकट्ठा होता है। उसका प्रयोग कम उत्पादन वाले वर्षों में पूर्ति की कमी को पूरा करने में किया जाता है। इससे सरकार खाद्यान्नों के आयातों से बच जाती है और कीमत स्तर को भी एक उचित स्तर पर बनाया रखा जा सकता है। इस प्रकार सरकार कृषि मूल्य नीति के दो मुख्य उद्देश्य होने चाहिए- कीमतों को बहुत ज्यादा न बढ़ने देना और कीमतों को एक न्यूनतम स्तर के नीचे न गिरने देना। इसके लिये सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) तथा वसूली कीमतों का निर्धारण करती है। जिससे किसानों के उत्पादन करने की प्रेरणा बनी रहे अर्थात् कीमतें ऐसे स्तर पर निर्धारित की जाए जो किसानों को और अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित कर सकें।

2.3.1 कृषि मूल्य नीति के उद्देश्य (Objectives of Agricultural Price Policy)

किसानों के हित के लिए एक विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि मूल्य नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न होने चाहिए-

1. किसानों को एक निश्चित न्यूनतम समर्थन कीमत का आश्वासन (guarantee) देना ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके, उत्पादन में जोखिम ना रहे और वे लोग उत्पादन को ओर ज्यादा बढ़ाने के लिये निवेश करने को तत्पर रहें।
2. निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप विभिन्न फसलों के उत्पादन को निर्देशित किया जा सके।
3. अधिक आगतों के प्रयोग द्वारा तथा उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों व अन्य आगतों का प्रयोग करने नई कृषि तकनीक के अधिक प्रसार द्वारा कुल कृषि उत्पादन में वृद्धि लाई जा सकें।
4. किसानों को इस बात के लिये प्रेरित किया जा सके, कि वे खाद्यान्नों का बढ़ता हुआ हिस्सा बाजार में बेचने के लिए तैयार हो।
5. अत्यधिक कीमत वृद्धि से उपभोक्ताओं की रक्षा करना, विशेष रूप से निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओं की उन वर्षों में जब आपूर्ति माँग से काफी कम हो और बाजार कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही हो।
6. कृषि मूल्य नीति का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए कभी प्रयोग नहीं होना चाहिए।

कोई देश किस प्रकार की कृषि मूल्य नीति को अपनाये यह विचार का विषय है। **मैलर (Mellar)** के अनुसार विकासशील देशों में कृषि विकास की मुख्य दो अवस्थाएं होती हैं। जिनके अनुसार कृषि मूल्य नीति निर्धारित की जाती है। **प्रथम अवस्था** परम्परागत अवस्था होती है। जिसमें कृषि मूल्य नीति अधिक प्रभावशाली नहीं होती क्योंकि परम्परागत तकनीक से कृषि कार्य करने के कारण मूल्य वृद्धि करने के साथ उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है। क्योंकि परम्परागत अवस्था में कृषि उत्पादन हेतु भूमि तथा श्रम को ही अधिक महत्व दिया जाता है। **द्वितीय अवस्था** गैर-परम्परागत अवस्था अर्थात् तकनीकी अवस्था है। इसमें कृषि उत्पादन हेतु कृषि आगतों औद्योगिक क्षेत्र से खरीदी जाती है। किसानों में औद्योगिक क्षेत्र की वस्तुओं का उपभोग बढ़ना आरम्भ हो जाता है, इसके साथ ही अब कृषि उत्पादों की बढ़ती हुई मात्रा को गैर कृषि क्षेत्रों में आसानी से बेचा जा सकता है। ऐसी अवस्था में कृषि उत्पादों के मूल्यों में परिवर्तन का कृषि उत्पादन तथा कृषि उत्पादों की बिक्री पर प्रभाव पड़ेगा।

2.3.2 कृषि मूल्य नीति की मुख्य विशेषताएं (Salient Features of Agricultural Price Policy)

एक प्रभावी कृषि मूल्य नीति न केवल किसानों को प्रभावित करती हैं बल्कि इससे उपभोक्ताओं तथा औद्योगिक क्षेत्र भी प्रभावित होता है। इस प्रकार एक कृषि मूल्य नीति किसी देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। इसलिये कृषि मूल्य नीति बनाने समय निम्न मुख्य अंश को ध्यान में रखना चाहिए।

1. **कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण (Pricing of Agricultural Products)** - जब सरकार कृषि उत्पादों के मूल्यों में किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए, परिवर्तन करती है तो ऐसा परिवर्तन, उपभोक्ताओं के हितों के विरुद्ध काम करता है। इसी प्रकार यदि सरकार उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचाना चाहती है तो

यह नीति किसानों के हितों को ठेस पहुँचायेगी। भिन्न-भिन्न देशों की सरकारें सदा इस दुविधा में रही है कि किस पक्ष के हित अधिक महत्वपूर्ण है।

आर्थिक विकास की गति को बढ़ाने के लिए बहुत से देशों ने विकास के प्रारम्भिक चरणों में नकारात्मक कृषि मूल्य नीति को अपनाया है। इस नीति में खाद्यान्न तथा कच्चे माल के मूल्यों को कम रखा जाता है, जिससे औद्योगिक क्षेत्र का लाभ बढ़ने से विकास को प्रोत्साहन मिले।

आजकल कई देश कृषि मूल्यों की सकारात्मक नीति का पालन करते हैं। जिससे किसानों को उनके उत्पाद का उचित और लाभप्रद मूल्य प्राप्त हो। इस नीति के पीछे मुख्य तर्क यह है कि जब तक कृषि क्षेत्र एक निर्णायक न्यूनतम विकास दर को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का विकास होना कठिन है।

2. कृषि साधनों के मूल्यों के बारे में नीति (Policy regarding Prices of Agricultural Inputs)

- कृषि मूल्य नीति केवल कृषि उत्पादों के मूल्यों के निर्धारण तक ही सीमित नहीं है। इसका दूसरा पहलू, कृषि उत्पादन के साधनों (आगतों) के मूल्यों से सम्बन्धित है। कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि सकारात्मक मूल्य नीति के उद्देश्य को कृषि साधनों के मूल्यों में परिवर्तन लाकर प्राप्त किया जा सकता है। इस नीति में किसानों को कृषि आगतों पर अनुदान देकर उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रेरित करना है। जिससे उत्पादन लागत में कमी आएगी। किसान नवीन कृषि तकनीक को अपनाएँगे और उत्पादन में वृद्धि होगी। जिससे उपभोक्ता को भी खाद्यान्न की पूर्ति सुनिश्चित होगी और आधुनिक कृषि तकनीक अपनाने से औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादित कृषि आगतों की माँग बढ़ेगी।

3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा तथा कृषि मूल्य नीति (Protection of Consumer Interest and Agricultural Price Policy) –

कृषि, मूल्य नीति का सबसे जटिल अंश है क्योंकि इसका उद्देश्य किसानों तथा लाखों उपभोक्ताओं के परस्पर विरोधी हितों को सन्तुलित करना है। कृषि मूल्य में कमी से किसानों का अहित होता है जिससे भावी कृषि उत्पादन भी प्रभावित होता है जबकि मूल्य वृद्धि से निम्न व मध्यम आय वर्ग सहित मजदूर वर्ग भी प्रभावित होता है इसलिए ऐसी स्थिति में सरकार एक निश्चित मूल्य पर किसानों से उनका उत्पाद खरीद कर उचित मूल्य की दुकानों द्वारा कम मूल्य पर निम्न आय वाले उपभोक्ताओं तक पहुँचाती है जिससे दोनों के हितों की रक्षा हो।

2.3.3 भारत में कृषि मूल्य नीति (Agricultural Price Policy in India)

भारत में स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद कृषि मूल्य नीति का आधार दूसरे विश्व युद्ध में लागू किए गए अनेक प्रतिबन्ध एवं नियन्त्रण थे। जिसमें एक राज्य से अन्य राज्यों की ओर कृषि उत्पादन ले जाने पर कड़े नियन्त्रण थे। उत्पादको और मिल मालिकों से अनिवार्य उगाही की जाती थी तथा लगभग सभी राज्यों में राशन-व्यवस्था (rationing system) थी।

खाद्यान्न नीति समिति के 1947 में यह सुझाव देने के बाद कि विनियंत्रण होना चाहिए, सरकार ने प्रतिबन्धों और नियन्त्रणों को कम कर दिया परन्तु 1948 में खाद्य संकट पैदा हो गया और खाद्यान्नों की कीमतों में तेज वृद्धि हुई इसलिए नियन्त्रणों को एक बार फिर लागू किया गया। 1953-54 में खाद्य स्थिति सुधरी और

नियन्त्रणों को लगभग खत्म कर दिया गया। 1955 के मध्य से खाद्य कीमतें फिर बढ़ने लगीं इसलिए अधिकांश नियन्त्रण फिर से लगाये गये। इस प्रकार 1951 से 1957 के बीच नीति सम्पूर्ण नियन्त्रण से सम्पूर्ण विनियन्त्रण और फिर आंशिक नियन्त्रण के बीच डोलती रही।

खाद्यान्न जाँच समिति 1957 के इस सुझाव पर कि 'खाद्यान्नों के थोक व्यापार पर सामाजिक नियन्त्रण' होना चाहिए। भारत सरकार ने अप्रैल 1959 में खाद्यान्नों के राज्य व्यापार का प्रयोग किया। इस प्रयोग से राज्य व्यापार दो मुख्य खाद्यान्नों -गेहूँ और चावल तक सीमित था। क्योंकि यह प्रयोग आर्थिक शक्तियों की पूरी जानकारी के बिना शुरू किया था इसलिए विफल हो गया। उदाहरण के लिए गेहूँ की वसूली कीमतों का निर्धारण बहुत कम स्तर पर किया गया। इसलिए काफी उत्पादन के बावजूद बाजार में बहुत कम खाद्यान्न बिक्री के लिए आये। कुछ राज्यों ने थोक व्यापारियों से अत्यधिक अनिवार्य उगाही करने की कोशिश की, इसलिए थोक व्यापारी जहाँ एक और हतोत्साहित हुए वहीं दूसरी ओर उन्होंने कई अनुचित और भ्रष्ट उपाय करने का प्रयास किया।

कृषि मूल्य में स्थायित्व लाने के प्रयास में मार्च 1964 में खाद्य क्षेत्रों का गठन किया गया। देश को आठ गेहूँ क्षेत्रों में विभाजित किया गया। दक्षिण भारत में चावल क्षेत्र बनाए गये। इस प्रयोग के विफल होने के बाद, प्रत्येक राज्य को एक अलग क्षेत्र बना दिया गया। एक क्षेत्र के बीच खाद्यान्नों के चलन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, परन्तु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में खाद्यान्न के व्यापार पर नियन्त्रण लगाये गये। अतिरिक्त उत्पादन वाले राज्यों में खाद्यान्नों की उगाही करके उन्हें कमी वाले राज्यों में बांटने का काम सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) के माध्यम से स्वयं अपने हाथ में लिया।

लेकिन पहली बार, तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रलेख में यह माना गया कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्यों द्वारा प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। इसलिए सरकार को कृषि मूल्यों की नकारात्मक नीति को छोड़कर एक सकारात्मक नीति अपनाने के लिए कहा गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने कृषि उत्पादों के मूल्यों पर आंशिक नियन्त्रण की नीति को छोड़ दिया तथा वर्ष 1964 में **खाद्यान्न मूल्य समिति (झा समिति)** का गठन किया गया। झा समिति ने सरकार द्वारा कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्यों को निर्धारित किए जाने की बात कही तथा इन मूल्यों के निर्धारण के लिए सुझाव दिये-

1. मूल्यों के स्तर ऐसे होने चाहिए, जोकि कृषि में उन्नत प्रौद्योगिकी (advanced technology) अपनाने तथा उत्पादन को अधिकतम करने के लिए प्रोत्साहन देते हों।
2. निर्धारित किए गए मूल्य ऐसे हों, जोकि भूमि के अनुकूलतम प्रयोग को सुनिश्चित करते हों।
3. निर्धारित मूल्य का स्तर, जहाँ तक हो सके, ऐसा होना चाहिए कि यह भिन्न-भिन्न फसलों की पूर्ति तथा मात्रा के बीच संतुलन लाता हो।
4. किसी एक मूल्य को निर्धारित करते समय, इससे संबंधित फसल के आयात तथा निर्यात पर पड़ने वाले प्रभाव को सामने रखना चाहिए।
5. समूची मूल्य नीति के अन्य क्षेत्रों पर प्रभाव, विशेष रूप से उन क्षेत्रों के वेतन, रहन-सहन के खर्च, उत्पादन लागत आदि पर प्रभाव को भी सामने रखा जाना चाहिए।

समिति ने सुझाव दिया कि फसलों की अधिकतम संख्या को कृषि सम्बन्धी मूल्य नीति के अधीन लाना चाहिए। ऐसा करने से अधिक से अधिक मूल्यों का परस्पर सन्तुलन तथा समन्वय हो सकेगा। समिति ने कृषि उत्पादन के साधनों के लिए अनुदान के भी सुझाव दिये।

2.4 कृषि लागत तथा मूल्य आयोग (Agricultural Costs and Prices Commission)

सरकार ने झा समिति की सिफारिशों को मानते हुए 1965 में 'कृषि मूल्य आयोग' का गठन किया। 1980 में इस आयोग का नाम बदलकर 'कृषि लागत तथा मूल्य आयोग (Agricultural Costs and Prices Commission)' रख दिया गया। आयोग में एक अध्यक्ष, एक सदस्य सचिव, दो सरकारी सदस्यों सहित तीन गैर सरकारी सदस्य होते हैं। गैर सरकारी सदस्यों में कृषक समुदाय के प्रतिनिधि होते हैं। जिन्हें लम्बा कृषि अनुभव हो और जो कृषक समुदाय का सक्रीय सहयोग करते हैं।

2.4.1 कृषि लागत और मूल्य आयोग के कार्य (Functions of Agricultural Costs and Prices Commission)

आयोग किसानों, उपभोक्ता और सरकार के लिए निम्न कार्य सम्पादित करता है-

1. सरकार को कृषि उत्पादों के मूल्यों के बारे में विशेष रूप से गेहूँ, चावल, ज्वार, मक्की, चना दालें, गन्ना, तिलहन, पटसन तथा कपास के न्यूनतम समर्थन मूल्यों के बारे में सुझाव देना। आयोग को ये सुझाव देते समय, न केवल उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखना था, अपितु इन मूल्यों के समूची अर्थव्यवस्था के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव को भी सामने रखना था। इसके साथ ही आयोग को यह भी सुनिश्चित करना था, कि सुझाए गए मूल्यों का आपस में परिस्थिति के अनुसार पूरा सन्तुलन तथा समन्वय है।
2. देश के विभिन्न खण्डों में, विभिन्न कृषि उत्पादों को बाजार में बेचने के तरीकों तथा बेचने में आने वाली लागतों का अध्ययन करना। आयोग को इन उत्पादों की बिक्री पर आने वाली लागत को कम करने के सुझाव देने थे। साथ ही, इसने बिक्री की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के लिए उपयुक्त लाभों के बारे में भी बताना था।
3. कृषि मूल्य नीति के सम्बन्ध में हो रहे अध्ययनों पर निगाह रखनी, कृषि मूल्यों तथा अन्य सम्बन्धित आंकड़ों के बारे में सूचना एकत्रित करने के तरीकों पर ध्यान रखना तथा इनमें सुधार के बारे में सुझाव देना।
4. अर्थव्यवस्था में बदलती हुई परिस्थितियों का ध्यान रखना तथा इनके अनुसार समूची मूल्य नीति के लिए आवश्यक सुझाव देना।
5. उन उत्पादों के बारे में मूल्य नीति को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए सुझाव देने।
6. सरकार को कृषि उत्पादन तथा कृषि मूल्यों से जुड़ी हुई प्रत्येक उस समस्या के बारे में परामर्श देना जोकि सरकार समय-समय पर इसके सामने लाये।

आयोग लगातार ऐसी संस्थाओं से सम्पर्क बनाए रखता है, जो कृषि मूल्यों और कृषि उत्पादन से जुड़े हुए विषयों के बारे में जानकारी रखती है।

2.4.2 आयोग के कृषि मूल्य नीति के उद्देश्य (Objectives of the Commission's Agricultural Price Policy)

कृषि लागत और मूल्य आयोग ने कृषि मूल्य नीति बनाते समय निम्न उद्देश्यों को सामने रखा है-

1. विभिन्न कृषि उत्पादों के मूल्यों में मौसमी उतार-चढ़ाव को कम करना।
2. कृषि उत्पादकों को उनके उत्पादों के उचित दाम दिलवाना।
3. कृषि उत्पादकों को कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करना।
4. उपभोक्ताओं के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति उचित मूल्य व मात्रा में सुनिश्चित करना।
5. औद्योगिक क्षेत्र के लिए कच्चे माल को उचित मात्रा में उपलब्ध कराना।
6. विभिन्न कृषि उत्पादों के मूल्य इस प्रकार निर्धारित किए जाए कि सभी कृषि उत्पादों को ऐच्छिक दिशा में परिवर्तित किया जा सके।
7. मूल्यों को ऐसा निर्धारित करना कि ये समूची अर्थव्यवस्था के व्यवस्थित विकास में सहायता करें।
8. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद, आयोग के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि कृषि उत्पादों के मूल्य इस प्रकार निर्धारित किये जाए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता करने में समर्थ हो।

2.4.3 आयोग की कृषि मूल्य नीति में भूमिका (Role of the Commission in Agricultural Price Policy)

कृषि लागत और मूल्य आयोग अपनी स्थापना के समय से ही विभिन्न कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन कीमतें, वसूली कीमतें और जारी कीमतों की घोषणा करता आ रहा है। **समर्थन कीमतें (support prices)**, उत्पादकों को यह आश्वासन (guarantee) देता है कि यदि अत्यधिक उत्पादन हुआ तो भी सरकार कीमतों को इनसे नीचे नहीं गिरने देगी। इस उद्देश्य के लिए सरकार न्यूनतम समर्थन कीमतों पर बड़े पैमानों पर खाद्यान्नों की खरीददारी करने के लिए वचनबद्ध है। **वसूली कीमतें (recovery prices)**, वे कीमतें हैं जिन पर सरकार आम वर्षों में खाद्यान्नों को मण्डियों से खरीदती है। **जारी कीमत/निर्गम मूल्य (issue price)**, वह कीमत है, जिस पर उचित दर दुकानों के माध्यम से सरकार उपभोक्ताओं को खाद्यान्न बेचती है।

कृषि लागत और मूल्य आयोग को फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य को निर्धारित करते समय निम्न तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है-

1. फसल की उत्पादन लागत।
2. फसल की उत्पादकता में अनिश्चितता के कारण होने वाली सम्भावित हानि।
3. उत्पादन साधनों के मूल्यों में सम्भावित परिवर्तन।
4. फसल का चालू बाजार मूल्य।
5. फसल की माँग तथा पूर्ति की अवस्था या स्थिति।
6. निर्धारित मूल्य का औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादन लागतों पर प्रभाव।

7. निर्धारित मूल्य का रहन-सहन के खर्च पर प्रभाव।
8. निर्धारित मूल्यों का देश के सामान्य मूल्य स्तर पर प्रभाव।
9. अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मूल्य स्थिति।
10. मूल्यों में समता की नीति, जिसमें निम्नलिखित पहलू सम्मिलित है।
 - (अ) विभिन्न फसलों के मूल्यों में समता,
 - (ब) उत्पादन के साधनों के मूल्यों तथा कृषि उत्पादों के मूल्यों में समता
 - (स) कृषि क्षेत्र द्वारा उपलब्ध करवाये गये कच्चेमाल के मूल्यों तथा इनसे तैयार किए गए औद्योगिक उत्पादों के मूल्यों में समता और
 - (द) किसानों द्वारा प्राप्त किए गए मूल्यों तथा उनके द्वारा दिये गये मूल्यों में समता के उद्देश्यों की प्राप्ति
11. पिछले वर्षों में फसल की मांग, पूर्ति तथा मूल्यों में हुए परिवर्तन के आधार पर इनके बारे में भविष्य में हाने वाले अनुमानित परिवर्तन।

आयोग उत्पादन की लागतों के बारे में आवश्यक आंकड़ों के लिए अर्थ व सांख्यिकीय निदेशालय (Directorate of Economics and Statistics), कृषि मंत्रालय, भारत सरकार तथा कई संस्थाओं द्वारा की गई फर्म प्रबन्धन अध्ययन पर निर्भर करता है। इसके साथ यह राज्य सरकारों तथा अन्य मान्यता प्राप्त संस्थाओं द्वारा उत्पादन लागत के बारे में एकत्रित किए गए अनुमानों पर भी विचार करता है।

1989 तक आयोग ने उत्पादन लागत C_2 को न्यूनतम समर्थन मूल्य के लिए आधार बनाया जाता रहा है। C_2 उत्पादन लागत में पूरी उत्पादन लागतों, पट्टे पर ली गई भूमि पर लगान, परिवार श्रम का अनुमानित मूल्य तथा अपनी पूंजी पर ब्याज शामिल किया जाता है। 1989 में राष्ट्रीय मोर्चे की समर्थन मूल्यों के निर्धारण के तरीकों में कुछ संशोधन किये कि C_2 उत्पादन लागत में अब कुल उत्पादन लागत का 10 प्रतिशत भाग किसानों के प्रबन्धक के रूप में कार्य करने के लिए जोड़ दिया जाएगा। इस उत्पादन लागत की धारणा को C_2 के बजाए C_3 कहा जाता है। अब फसल की उत्पादन लागत जानने के लिए श्रमिकों को दी गई वास्तविक मजदूरी या विधेयक द्वारा निश्चित की गई न्यूनतम मजदूरी जो अधिक होगी उसे माना जाएगा। न्यूनतम समर्थन मूल्य में मुद्रा स्फीति की दर में हुई वृद्धि के अनुसार परिवर्तन किया जाएगा। फसल की औसत उत्पादन लागत जानने के लिए देश के केवल उन क्षेत्रों का चयन करता है जहाँ पर यह विशेष फसल मुख्य रूप से बोई जाती है।

प्रत्येक वर्ष आयोग ना केवल भिन्न-भिन्न फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्यों की घोषणा करता है अपितु कुछ फसलों के लिए, सरकारी खरीद के मूल्यों की घोषणा करता है। 1974-75 तक सरकार कुछ फसलों जैसे- चावल, गेहूँ, मक्का तथा मोटे अनाज के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा सरकारी खरीद के मूल्य घोषित किया करती थी। परन्तु उसके बाद केवल सरकारी खरीद के ही मूल्य घोषित किए जाते रहे हैं। सरकारी खरीद के मूल्य ही न्यूनतम समर्थन मूल्य बन जाते हैं।

1980 से पहले कृषि मूल्य नीति का उद्देश्य कृषि उत्पादन को अधिकतम करना था। अब इसका उद्देश्य, कृषि उत्पादों के मिश्रण में ऐसे परिवर्तन करना था जो देश की अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक हों। कृषि लागत तथा मूल्य आयोग को यह भी कहा गया कि वह कृषि क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र के व्यापारिक दर में होने वाले

परिवर्तन पर भी निगाह रखें। यह तथ्य इस बात का संकेत देता है कि सरकार अब कृषि से अपनाई गई नई तकनीक के लाभों की, किसानों तथा उपभोक्ताओं के बीच एक उचित बांट के लिए उत्सुक थी।

14 नवम्बर 1986 को सरकार ने कृषि मूल्य नीति में एक लम्बे समय को सामने रखकर कुछ परिवर्तन किये। इस नई नीति का उद्देश्य, केवल किसानों को कृषि में आधुनिक तकनीक अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा उपभोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करना ही नहीं था, अब सरकार ने इस बात की भी घोषणा की कि मूल्यों में परिवर्तनों के द्वारा तिलहन, दालें, गन्ना तथा मोटे अनाज के उत्पादन में ऐसे परिवर्तन लायें जायें जो कि देश की आवश्यकताओं के अनुकूल हों।

नई मूल्य नीति का उद्देश्य यह था कि उत्पादन की लागत को जितना हो सके कम किया जाये। इस बात का भी संकेत दिया कि मूल्य इस प्रकार नियत किये जायें कि जिससे निर्यात किए जाने वाले कृषि उत्पादों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिले। इसके अतिरिक्त कृषि मूल्य नीति को भली प्रकार अमल में लाने के लिए आवश्यक आधुनिक संरचना की भी व्यवस्था की जाने की घोषणा की गई। कृषि लागत और मूल्य आयोग की मूल्यों के बारे में सिफारिशों तथा निर्धारित मूल्यों की घोषणा की समय-सारिणी की भी बात कही गई।

1991 में आर्थिक सुधारों के लागू होने के पश्चात् देश की कृषि मूल्य नीति में कुछ और परिवर्तन देखने में आये। सर्वप्रथम, सरकार ने आर्थिक सुधारों के एक मुख्य उद्देश्य अर्थात् राजकोषीय घाटे को कम करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कृषि उत्पादन के साधनों के लिए दिए जाने वाले अनुदान में कटौती करने की चेष्टा की। यह भी देखा गया कि सरकार ने इस अनुदान को कम करने के कारण उत्पादन लागत में आने वाली वृद्धि को देखते हुए, कृषि उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में भी वृद्धि कर दी। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के पश्चात सरकार ने कृषि लागत और मूल्य आयोग को कृषि उत्पादों के मूल्यों को निर्धारित करते समय इनके अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रचलित मूल्यों पर विशेष ध्यान देने को कहा। ऐसा इसलिए किया गया ताकि घरेलू उत्पादों की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता की क्षमता बनी रहे।

तालिका 2.1 में कृषि लागत और मूल्य आयोग द्वारा विभिन्न वर्षों में विभिन्न कृषि उत्पाद के लिए निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य/सरकारी खरीद के मूल्य दिये गये हैं-

तालिका 2.1

न्यूनतम समर्थन मूल्य/सरकारी खरीद के मूल्य

(रूप प्रति क्विंटल)

कृषि उत्पाद	1997-98	1998-99	1999-2000	2000-01	2001-02	2002-03	2003-04	2004-05
सामान्य धान	415	440	490	510	530	530	550	560
गेहूँ	510	550	580	610	620	620	630	640
ज्वार, बाजरा, रागी	360	390	415	445	485	485	505	515
चना	815	895	1015	1100	1200	1220	1400	1425
अरहर	900	960	1105	1200	1320	1320	1360	1390
मूँग	900	960	1105	1200	1320	1330	1370	1410

उड़द	900	960	1105	1200	1320	1330	1370	1410
गन्ना	48.45	52.70	56.10	59.50	62.05	69.5	73	74.5
क्पास (H-4)	1530	1650	1775	1825	1875	1875	1925	1960
जूट	570	650	750	785	810	850	860	890
सूरजमुखी बीज	1000	1060	1155	1170	1185	1195	1250	1340
सोयाबीन (पीला)	750	795	845	865	885	885	930	1000
सोयाबीन (काला)	670	705	755	755	795	795	840	900

Source: CACP Reports

जिससे पता चलता है कि 2001-02 तथा 2002-03 में अधिकांश उत्पादों के मूल्यों में कोई वृद्धि नहीं की गई। तालिका 2.2 में गेहूँ तथा धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य/सरकारी खरीद के मूल्य तथा पिछले वर्ष की तुलना में किए गए प्रतिशत परिवर्तन को प्रदर्शित किया गया है-

तालिका 2.2

न्यूनतम समर्थन मूल्य (मसप) तथा वार्षिक प्रतिशत परिवर्तन

वर्ष	न्यूनतम समर्थन मूल्य (रूपये/ क्विंटल)			MSP में वार्षिक प्रतिशत परिवर्तन		
	सामान्य धान	A ग्रेड धान	गेहूँ	सामान्य धान	A ग्रेड धान	गेहूँ
2000-01	510	540	580	4.85	3.85	5.45
2001-02	530	560	610	3.92	3.70	5.17
2002-03	530	580	620	0.00	3075	1.64
2003-04	550	580	620	3.77	0.00	0.00
2004-05	560	590	630	1.82	1.72	1.61
2005-06	570	600	640	1.79	1.69	1.59
206-07		620	650	700	8.77	8.33
2007-08	745	775	850	20.16	19.23	21.43
2008-09	900	930	1000	20.81	20.00	17.65
2009-10	1000	1030	1080	11.10	10.80	8.00

Source: CACP Reports

तालिका 2.2 के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्ष 2000-01 से 2005-06 तक न्यूनतम समर्थन कीमतों में लगभग 1 से 5 प्रतिशत की वृद्धि तक ही वृद्धि की गई। जबकि 2007-08 तथा 2008-09 में 17 से 20 प्रतिशत तक कीमतों में वृद्धि की गई।

2.5 कृषि मूल्य नीति का मूल्यांकन (Evaluation of Agricultural Price Policy)

भारत में साकारात्मक कृषि मूल्य नीति के मुख्य अंश न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा सरकारी खरीद के लिए मूल्य निर्धारित करना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सुरक्षित भंडार (buffer stock) की व्यवस्था तथा उत्पादन साधनों के लिए अनुदान व्यवस्था करना है। कृषि मूल्य नीति का मुख्य उद्देश्य किसानों के उनकी फसल का उचित मूल्य प्रदान करना है तथा उनमें निश्चितता व विश्वास जगाना है। यद्यपि भारत में कृषि मूल्य नीति इस उद्देश्य को प्राप्त

करने में कुछ हद तक सफल रही तथापि उसने अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया है और उसके कुछ अन्य दुष्परिणाम भी रहे हैं। जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

1. **न्यूनतम समर्थन मूल्य ज्ञात करने की दोषपूर्ण नीति (Faulty policy of determining Minimum Support Price)** - कृषि लागत तथा मूल्य आयोग न्यूनतम समर्थन मूल्य को ज्ञात करने के लिए उत्पादन लागतों का सहारा लेता है। **रमेश चन्द्र (Ramesh Chandra)** ने कहा कि यह रीति उस समय उचित है जब खाद्यान्नों का अभाव पाया जाता है और मुख्य उद्देश्य पूर्ति अर्थात् उत्पादन में वृद्धि करना है। परन्तु जब अतिरेक्त की स्थिति हो तब कीमत निर्धारण हेतु माँग को भी ध्यान में रखना चाहिए। परन्तु इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। जिसके कारण चावल तथा गेहूँ के भण्डार जमा होते जा रहे हैं। जिससे राजकोषीय भार बहुत बढ़ गया है क्योंकि इनके संग्रहण पर सरकार को बहुत धन व्यय करना पड़ रहा है।

न्यूनतम समर्थन कीमतों का निर्धारण उत्पादन लागत के आधार पर करने का एक दोष यह भी है कि किसान बिना यह जाने कि उनकी भूमि किस फसल के लिए उपयुक्त है अधिक कीमत वाली फसल उगाते हैं। जिसके अन्य दुष्परिणाम पैदा होते हैं। इस सन्दर्भ में **रमेश चन्द्र (Ramesh Chandra)** ने पंजाब तथा हरियाणा के अध्ययन में यह पाया कि इन राज्यों में रेतीले तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल की खेती को अन्धाधुन्ध बढ़ावा मिला, जिससे लागतें बढ़ी तथा प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। केवल उत्पादन लागतों पर ध्यान देने से समाज की प्राथमिकताओं की भी अनदेखी होती है।

2. **स्फीतिकारी प्रवृत्तियों में योगदान (Contribute to Inflationary Trends)** - कृषि लागत तथा मूल्य आयोग प्रति वर्ष वसूली कीमतों को बढ़ाने का सुझाव देता रहा है। इस प्रकार वसूली कीमतों का न्यूनतम समर्थन मूल्य साल में दो बार (रबी की फसल तथा खरीफ की फसल हेतु) वृद्धि की घोषणा एक आम घटना हो गई है। पिछले कुछ वर्षों से धनी किसानों का वर्ग बहुत मजबूत हो गया है तथा राजनैतिक दबाव के द्वारा वसूली कीमतों में अत्यधिक वृद्धि करवाने में सफल रहा है। यह वृद्धि कृषि लागत तथा मूल्य आयोग द्वारा प्रस्तावित वृद्धि से कहीं अधिक रही है। 1990 के दशक में इस प्रवृत्ति को बल मिला। जैसा कि तालिका 2.3 में दर्शाया गया है कि 1981-82 से 1990-91 तक धान तथा गेहूँ के मूल्य में ऋणात्मक वृद्धि हुई जबकि 1990-91 से 2000-01 में धान के मूल्य में 0.99 प्रतिशत तथा गेहूँ के मूल्य में 2.23 प्रतिशत वृद्धि हुई वहीं 2000-01 से 2009-10 तक धान में 1.81 प्रतिशत तथा गेहूँ में 1.30 प्रतिशत कीमत वृद्धि हुई।

तालिका 2.3

न्यूनतम समर्थन मूल्य अनुपात में प्रतिशत परिवर्तन

अवधि	धान	गेहूँ
1981-82 से 1990-91 तक	-0.95	-2.22
1990-91 से 2000-01 तक	0.99	2.23
2000-01 से 2009-10 तक	1.81	1.30

source: CACP Reports

अगर वर्षवार कीमत वृद्धि देखी जाये तो तालिका 2.1 तथा 2.2 के अनुसार 2006-07 के बाद न्यूनतम कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे सामान्य कीमत स्तर में भी वृद्धि हुई है।

3. **बड़े किसानों की ओर झुकाव (Leaning towards Big Farmers)** - न्यूनतम समर्थन तथा वसूली कीमतों में होने वाली निरन्तर वृद्धि ने किसानों को उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रेरित किया है लेकिन इसका अधिकांश लाभ बड़े किसानों को हुआ है क्योंकि बड़े किसानों में नई कृषि तकनीक को अपनाने की क्षमता थी तथा उन्हें कृषि साख तथा अन्य कृषि आगत भी आसानी से उपलब्ध थे। एक अनुमान के अनुसार बड़े किसानों को सीमान्त किसानों की तुलना में औसत आय अन्तरण 10 गुणा या उससे भी अधिक हुआ। C_2 उत्पादन लागत के आधार पर पंजाब में सीमान्त किसानों को औसतन 3000 रूपए प्रति वर्ष और बड़े किसानों को 34000 रूपए प्रतिवर्ष का प्रति परिवार कुल आय अन्तरण हुआ।
4. **निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effect on Investment)** - न्यूनतम समर्थन तथा वसूली कीमतों में वृद्धि से सरकार पर अतिरिक्त व्यय का भार पडता है। जिससे अन्य क्षेत्रों में निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भण्डार संग्रहण के परिणामस्वरूप केवल गेहूँ व चावल उत्पादकों को इतना लाभ नहीं होता। अपने अर्थमितीय (econometric) मॉडल के आधार पर **किरीट पारिख, गणेश कुमार** तथा **गंगाधर डारबा**। इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गेहूँ व चावल के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 10 प्रतिशत की वृद्धि होने पर निवेश में 1.3 प्रतिशत तथा सकल घरेलू उत्पाद में 0.33 प्रतिशत की गिरावट आती है।
5. **फसले के ढांचे में परिवर्तन (Changes in Cropping Pattern)** - 2001-02 की वित्त तथा करेन्सी की रिपोर्ट के अनुसार सरकार की मूल्य वृद्धि नीति से फसलों के ढांचे में परिवर्तन की स्थिति आई है। इसका कारण यह है कि जहां गेहूँ और चावल की वसूली कीमत उत्पादन लागत से अधिक रही हैं वहाँ मोटे अनाजों और दालों की वसूली कीमत आमतौर पर उत्पादन लागत से कम रही है। उदाहरण के लिए 1997-98 में गेहूँ की न्यूनतम समर्थन कीमत 510 रूपयें प्रति क्विंटल थी। चावल की 415 रूपए प्रति क्विंटल जबकि लागत लागत 411 रूपए प्रति क्विंटल थी। इसके विपरीत मोटे अनाजों की वसूली कीमत मात्र 360 रूपए प्रति क्विंटल थी जबकि उत्पादन लागत 499 रूपए प्रति क्विंटल थी। अरहर की उत्पादन लागत 1221 रूपए प्रति क्विंटल थी जबकि वसूली कीमत मात्र 900 रूपए थी। स्वाभाविक है कि मोटे अनाजों तथा दालों के स्थान पर गेहूँ व चावल की खेती ज्यादा लाभप्रद थी, इसलिए मोटे अनाज व दालों के अधीन क्षेत्रों पर चावल और गेहूँ का उत्पादन किया जाने लगा।
6. **अतिरिक्त वाले राज्यों की ओर झुकाव (Leaning towards Surplus States)** - आयोग की न्यूनतम समर्थन कीमत से केवल कुछ राज्यों को लाभ मिला है। भारत में लगभग सभी राज्यों में चावल की तथा लगभग 20 राज्यों में गेहूँ की खेती होती है परन्तु **भारतीय खाद्य निगम** गेहूँ की 95 प्रतिशत वसूली पांच राज्यों- पंजाब, आन्ध्र-प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडू से की जाती है। न्यूनतम समर्थन कीमत और उत्पादन लागत में व्यापक अन्तर होने के कारण इन पांच राज्यों के किसान अत्यधिक लाभान्वित हुए हैं।
7. **ग्रामीण गरीबों पर प्रभाव (Impact on Rural Poor)** - बढ़ती हुई न्यूनतम समर्थन कीमत या वसूली कीमतों से खाद्यानों की कीमतों में लगातार वृद्धि हुई है जिससे खेतिहर मजदूरों, छोटे किसानों तथा

सीमान्त किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उचित कीमतों से इन लोगों को कोई लाभ नहीं होता क्योंकि इनके पास विपणन अधिशेष नहीं होता और ये लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाजार पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार न्यूनतम समर्थन मूल्यों में वृद्धि का लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण जनता पर तथा सम्पूर्ण शहरी जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

8. **कीमत प्रोत्साहन के राजकोषीय दुष्प्रभाव (Fiscal side effects of price incentives) – जे. मोहन राव और स्टोर्स** के अनुसार जब कीमत प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप कृषि कीमतों में वृद्धि होती है, जो सार्वजनिक निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका कारण राजकोषीय संसाधनों में होने वाली कमी है क्योंकि कृषि कीमतों में वृद्धि की भरपाई खाद्य सहायता द्वारा की जाती है। इससे सीधे सरकार की आय हानि होगी। कीमत वृद्धि के कारण सरकार को सरकारी कर्मचारियों को मंहगाई भत्ता देना पड़ता है, जिससे राजस्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
9. **अधिकतम मूल्य का निर्धारण नहीं (No Ceiling Price)** - एक अच्छी मूल्य नीति के अन्तर्गत कृषि उत्पाद के मूल्यों के न्यूनतम तथा अधिकतम स्तर दोनों का ही निर्धारण होना चाहिए। भारत में कृषि मूल्य नीति अब तक सरकार ने मूल्यों को बढ़ने से रोकने के लिए बाजार में हस्तक्षेप की नीति अपनाई है परन्तु अभी उसने कृषि उत्पादों के अधिकतम मूल्य निर्धारण करने के लिए कोई तरीका ढूँढने की चेष्टा नहीं की।
10. **अधिक अनुदान (Excess Grant)** - सरकार न केवल कृषि आगतों के लिए अनुदान देती है, बल्कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा देश के गरीबी रेखा के नीचे के लोगों तथा अन्त्योदय परिवारों को रियायती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है। राय तथा गुलाटी ने यह अनुमान लगाया था कि 1990 के दशक के आरम्भ में उर्वरक, बिजली, सिंचाई तथा साख पर, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दिये जाने वाले अनुदान की राशि अत्यन्त बढ़ गई। जिससे राजकोषीय घाटे में बढ़ोतरी होती जा रही है।
11. **मूल्य नीति को राजनीतिक रंग देना (Politicizing Price Policy)** - सरकारी खरीद के लिए फसलों की घोषित गुणवत्ता के मानदण्ड में अनुचित ढील देनी, कृषि मूल्य नीति पर राजनीतिक दबाव का एक उदाहरण है। इस प्रकार की ढील का परिणाम यह हुआ है कि सरकार के पास ऐसी निम्न गुणवत्ता का अनाज इकट्ठा हो गया है। जोकि खाने के योग्य नहीं हैं। जनता दल की सरकार का मूल्य निर्धारण के लिए उत्पादन लागत में अतिरिक्त राशि को जोड़ना, इस राजनीतिक दबाव का एक और मुख्य उदाहरण है। राजनीतिक दबाव के अन्तर्गत, प्रत्येक वर्ष खाद्यान्न के मूल्यों को बढ़ाने के कारण देश में स्फीतिकारी दबाव बढ़े हैं। इससे भूमिहीन कृषि से जुड़े श्रमिकों, सीमान्त किसानों, कारीगरों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों की दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वास्तव में अनाज के बढ़ते दामों ने सरकार की देश में गरीबी को कम करने की चेष्टा में काफी रुकावट डाली है।
12. **फलों तथा सब्जियों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्यों का निर्धारण न होना (Non-fixation of Minimum Support Prices for fruits and vegetables)** - इस समय अत्यन्त नश्वर वस्तुओं, जैसे कि दूध, मछली, फल, सब्जियों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों को निर्धारित करने की कोई प्रथा नहीं है। इस कारण इन वस्तुओं के मूल्य इनके उत्पादन के असीम वृद्धि की अवस्था में काफी गिर जाते हैं तथा कई बार यह उत्पादन लागत से भी कम हो जाते हैं और इस कारण से इनके उत्पादकों को हानि का

सामना करना पड़ता है। पिछले वर्षों में प्याज के मूल्यों में असाधारण वृद्धि, एक प्रकार की परिसीमा की ओर संकेत करती है। इनके अधिकतम मूल्यों को निर्धारित करना बहुत कठिन है क्योंकि इन वस्तुओं को लम्बे समय के लिए गोदामों में नहीं रखा जा सकता, इनके लिए बाजार में हस्तक्षेप की नीति भी नहीं लागू की जा सकती। इस कारण इनके मूल्यों को एक सीमा से ऊपर जाने से रोकने के लिए कुछ अन्य उपाय करने होंगे।

2.6 भारत की कृषि नीति में सुधार के सुझाव

केवल कीमतों पर अत्यधिक ध्यान देने से लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है। इसका कारण यह है कि इस नीति के परिणामस्वरूप गैर-कीमत क्षेत्र की अवहेलना हो सकती है, जैसे कि तकनीकी खोजों की अवहेलना तथा उत्पादन में आने वाली वास्तविक अडचनों की अवहेलना। भारत की कृषि नीति को ओर अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. न्यूनतम समर्थन मूल्य केवल कुशल किसानों द्वारा खर्च की गई उत्पादन लागत के आधार पर निर्धारित किए जाने चाहिए।
2. जहां तक एक फसल के अधिकतम मूल्य का सम्बन्ध है अभी तक इसके लिए कोई सर्व-स्वीकार्य तरीका नहीं अपनाया जा सका।
3. मूल्य निर्धारण के अतिरिक्त अन्य उपायों जैसे- कृषि तकनीक का विकास, कुशल विपणन व्यवस्था, गोदामों की व्यवस्था, आधारिक संरचना का निर्माण, उत्पादन के साधनों तथा साख की उपलब्धता आदि कदम उठाने चाहिए। तभी मूल्य नीति सफल हो सकेगी।
4. कृषि उत्पादनों पर दिए जाने वाले अनुदान को धीरे-धीरे तथा विवेकपूर्ण ढंग से कम किया जाना चाहिए परन्तु छोटे व सीमान्त किसानों के लिए अनुदान जारी रखे जाने चाहिए।
5. कृषि मूल्य नीति का उद्देश्य किसानों के हितों की रक्षा करना है तथा उनको कृषि विकास के लिए प्रोत्साहन देना है परन्तु इससे गैर-कृषि क्षेत्र में कार्यरत लोगों के हितों की हानि नहीं होनी चाहिए।
6. किसी फसल के मूल्य को निर्धारण करने के लिए कृषि लागत तथा मूल्य आयोग के कई बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। इनकी सूची बहुत लम्बी है तथा इनमें से कई एक-दूसरे से मेल नहीं खाती। इस सूची में संशोधन करने की आवश्यकता है।
7. फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य/ सरकारी खरीद के मूल्य विभिन्न बीजों की बुवाई (sowing) से पहले ही घोषित कर दी जाने चाहिए। इस प्रकार की अग्रिम घोषणा किसानों को फसलों के उत्पादन के बारे में ठीक निर्णय लेने में सहायता करेगी।
8. नश्वर वस्तुओं जैसे- फल, सब्जियों दूध आदि के उत्पादकों के हितों की रक्षा करना आवश्यक है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं, कि सरकार इन सब वस्तुओं के न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित नहीं कर सकती। फिर भी इन वस्तुओं के उत्पादकों को बिचौलियों के शोषण से बचना आवश्यक है।

2.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

1. भारत सरकार ने में खाद्यान्नों के राज्य व्यापार का प्रयोग किया।
2. राज्य व्यापार का प्रयोग से राज्य व्यापार दो मुख्य खाद्यान्नों-.....तक सीमित था।
3. कृषि मूल्य में स्थायित्व लाने के प्रयास में मार्च 1964 में क्षेत्रों का गठन किया गया।
4. देश को गेहूँ क्षेत्रों में विभाजित किया गया। दक्षिण भारत में क्षेत्र बनाए गये।
5.में खाद्यान्न मूल्य समिति (झा समिति) का गठन किया गया।
6. सरकार ने झा समिति की सिफारिशों को मानत हुए में 'कृषि मूल्य आयोग' का गठन किया।
7.में इस आयोग का नाम बदलकर 'कृषि लागत तथा मूल्य आयोग' रख दिया गया।
8. भारतीय खाद्य निगम गेहूँ की 95 प्रतिशत वसूली पांच राज्यों-.....से की जाती है।

2.8 सारांश (Summary)

कृषि मूल्य नीति किसानों के हितों की रक्षा के साथ, उत्पादन बढ़ाने तथा उद्योग के लिए कच्चे माल की नियमित पूर्ति में सहायक है। कृषि मूल्य नीति में मूल्य निर्धारण के साथ कृषि आगतों के मूल्य तथा उपभोक्ता के हितों को ध्यान में रखा जाता है। भारत में स्वतन्त्रता के समय नकारात्मक मूल्य नीति प्रचलित थी परन्तु पिछले कुछ समय से सकारात्मक मूल्य नीति को अपनाया गया है। इसके अन्तर्गत कृषि लागत तथा मूल्य आयोग का गठन किया गया, जो विभिन्न फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करता है, जिस पर सरकार किसानों से फसल खरीदती है। आयोग किसानों के हित में कार्य कर रहा है। परन्तु इसमें कुछ कमियां हैं, जिससे छोटे व सीमान्त किसान इसके लाभों से वंचित हैं। अतः आयोग को अपने कार्यों का मूल्यांकन करना चाहिए।

2.9 शब्दावली (Glossary)

- अनुदान/रियायत - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप, जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- C₂ उत्पादन लागत- इसमें उत्पादन लागतों, पट्टे पर ली गई भूमि पर लगान, परिवार श्रम का अनुमानित मूल्य तथा अपनी पूंजी पर ब्याज शामिल किया जाता है।

- **C₃ उत्पादन लागत-** इसमें C₂ उत्पादन लागत में कुल उत्पादन लागत का 10 प्रतिशत भाग किसानों के प्रबन्धक के रूप में कार्य करने के लिए जोड़ दिया जाए।
- **वैश्वीकरण** - ऐसी व्यवस्था जहाँ विश्व के सभी देशों में वस्तुएँ लाने ले जाने की स्वतंत्रता हो।
- **विपणन** - बाजार व्यवस्था जिससे माल को बेचा जा सके।
- **वरीयता** - प्राथमिकता या प्रमुखता।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

- | | |
|--------------------|---|
| 1. अप्रैल 1959 | 2. गेहूँ और चावल |
| 3. खाद्य क्षेत्रों | 4. आठ, चावल |
| 5. 1964 | 6. 1965 |
| 7. 1980 | 8. पंजाब आन्ध्र प्रदेश हरियाणा उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडू। |

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- सोनी, आर. एन.; (2007) 'कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय', विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा।
- मिश्र, एस. के. पुरी, वी. के.; (2008) 'भारतीय अर्थशास्त्र', हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
- दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम.; (2007) 'भारतीय अर्थव्यवस्थाएँ', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- माथुर, बी. एल.; (2011) 'कृषि अर्थशास्त्र', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त, डॉ शिव भूषण; (2010) 'कृषि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन आगरा।
- मामेरिया, डॉ. चतुर्भज एवं जैन डॉ. एस. सी.; (1995) 'भारतीय अर्थशास्त्र', प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- Bilgrami, S. A. R.; (2006) 'An Introduction to Agricultural Economics;', Himalaya Publishing House Delhi.

2.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Texts)

- Taylor, H.C., (1949), 'Outlines of Agricultural Economic's, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), 'Agriculture and Economic Development'; Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), 'Fundamentals Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), 'Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.

- Dantawala, M. L. et al. (1991): '*Indian Agricultural Development since Independence*', Oxford & IBH, New Delhi.

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. कृषि मूल्य नीति से क्या अभिप्राय है? मूल्य नीति के उद्देश्यों तथा मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. कृषि लागत तथा मूल्य आयोग के कार्यों का वर्णन करते हुए कृषि मूल्य नीति में इसकी भूमिका की व्याख्या कीजिए।
3. भारत की कृषि मूल्य नीति का मूल्यांकन करो तथा उसमें सुधार के सुझाव दो।

इकाई 3- कृषि लाभ अधिकतमकरण और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Agricultural Profit Maximization and Public Distribution System)

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली
 - 3.4.1 सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य विशेषताएं
 - 3.4.2 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और भारतीय खाद्य निगम
 - 3.4.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और खाद्य अनुदान
 - 3.4.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा
 - 3.4.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार की नीति
- 3.5 लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना
 - 3.5.1 अन्तोदय अन्न योजना
 - 3.5.2 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत खाद्यान्न आबंटन
 - 3.5.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (नियन्त्रण) आदेश 2001
 - 3.5.4 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत करने के उपाय
 - 3.5.5 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन
- 3.6 अभ्यास प्रश्न
- 3.7 सारांश
- 3.8 शब्दावली
- 3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1. प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व की इकाई में आप कृषि मूल्य नीति, मूल्य और लागत आयोग का स्वरूप एवं भूमिका की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में कृषि लाभ अधिकतमकरण पर प्रकाश डाला गया है तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भी जानकारी प्रस्तुत की जायेगी। इसके अध्ययन से आप कृषि लाभ अधिकतमकरण तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सम्पूर्ण प्रणाली से अवगत हो जायेंगे।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

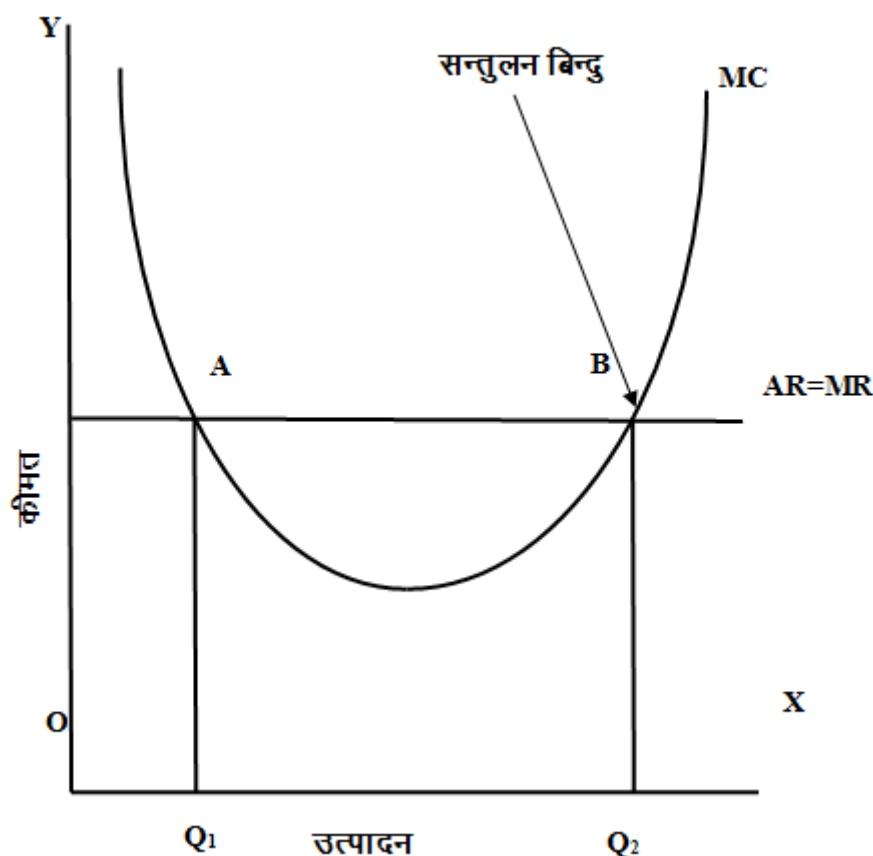
इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ कृषि लाभ अधिकतमकरण को समझ सकेंगे।
- ✓ सार्वजनिक वितरण प्रणाली पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- ✓ लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना की स्थिति को जान जायेंगे।

3.3 कृषि लाभ अधिकतमकरण (Agricultural Profit Maximization)

जिस प्रकार प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है, उसी प्रकार किसान का उद्देश्य भी अपने लाभ को अधिकतम करना होता है जिससे वह अपनी कृषि को आधुनिक तकनीकी द्वारा उन्नत कर सकें और अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर देश के विकास में योगदान करें। किसान उस बिन्दु पर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा, जिस पर उसकी उपज से प्राप्त सीमान्त आगम (आय) उसे उत्पादन हेतु प्रयुक्त की गई सीमान्त लागत के बराबर हो अर्थात् **सीमान्त आगम (Marginal Revenue) = सीमान्त लागत (Marginal Cost)** हो। क्योंकि सीमान्त आगम और सीमान्त लागत, कुल आगम और कुल लागत में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है। अगर किसान के सीमान्त उत्पाद की लागत उसे बेच कर (बिक्री) प्राप्त होने वाली सीमान्त आय (marginal Revenue) से अधिक अर्थात् $MC > MR$ हो तो प्रत्येक अगली अतिरिक्त इकाई के उत्पादन में किसान को हानि होगी, इसलिए किसान उस बिन्दु पर उत्पादन करेगा जहाँ $MR = MC$ होगा। लाभ अधिकतमकरण के दो महत्वपूर्ण नियम हैं।

1. किसान उसी बिन्दु तक उत्पादन करेगा जहाँ कुल आगम, कुल परिवर्तनशील लागत (total variable cost) के बराबर ($TC = TR$) होगा अर्थात् किसान तब तक उत्पादन बढ़ायेगा जब तक सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर ($MR = MC$) न हो जायें।
2. $MR = MC$ बिन्दु के बाद सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक अर्थात् $MC > MR$ होगा। इस स्थिति को चित्र 3.1 द्वारा दर्शाया गया है। चित्र में B बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है क्योंकि इस बिन्दु पर $MC = MR$ है और इस बिन्दु के बाद $MC > MR$ है। A बिन्दु पर भी $MC = MR$ है, लेकिन इस स्थिति में किसान केवल OQ_1 अर्थात् कम मात्रा का ही उत्पादन करता है जबकि B बिन्दु पर OQ_2 अर्थात् अधिक मात्रा का उत्पादन करके किसान अधिकतम उत्पादन प्राप्त करेगा।



चित्र 3.1 कृषि लाभ अधिकतमकरण

तालिका 3.1

विभिन्न वर्षों में उत्पादित उत्पादन की मात्रा तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा अन्य योजनाओं के लिए वितरित व आबंटित अनाज की मात्रा का प्रदर्शित

वर्ष	अनाजो का उत्पादन (लाख टन)	सार्वजनिक प्रणाली व अन्य योजनाओं के लिए अनाज (लाख टन)
1999-2000	1964	184
2000-01	1857	152
2001-02	1995	210
2002-03	1636	317
2003-04	1985	377
2004-05	1912	310
2005-06	1603	402

स्रोत: भारतीय सरकार आर्थिक समीक्षा 2005-06 तथा वार्षिक रिपोर्ट रिजर्व बैंक

लाभ अधिकतम की स्थिति पर पहुँचने के लिए भारत में किसानों को अधिकतम उत्पादन हेतु प्रेरित किया जाता है, ताकि प्रति हेक्टेयर भूमि उत्पादन लाभदायक हो और किसानों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इस अधिक उत्पादन का बाजार में उचित मूल्य मिले। इसके लिए सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य पर भारतीय खाद्य निगम के

माध्यम से किसानों से बड़ी मात्रा में खाद्यान्न खरीदती है जिसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे (below poverty line) तथा ऊपर रहने वाले लोगों को अलग-अलग मूल्य तथा मात्रा में वितरित किया जाता है। जिससे एक तरफ तो किसानों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो और दूसरी तरफ देश की गरीब जनता को खाद्य सुरक्षा प्राप्त हो।

तालिका 3.1 में किसानों द्वारा विभिन्न वर्षों में उत्पादित उत्पादन की मात्रा तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा अन्य योजनाओं के लिए वितरित व आबंटित अनाज की मात्रा को प्रदर्शित किया जाता है। जिसके विश्लेषण से पता चलता है कि 1999-2000 में सरकार ने कुल अनाज उत्पादन 1964 लाख टन में से 184 लाख टन सार्वजनिक वितरण व अन्य योजना हेतु आबंटित किया जबकि 2005-06 में कुल अनाज उत्पादन 1603 लाख टन था। जबकि सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा अन्य योजनाओं के लिए कुल 402 लाख टन अनाज आबंटित किया।

3.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)

द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होते समय तक उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण भारत में साधारण व्यापारिक स्रोतों द्वारा सन्तोषजनक रूप से हो रहा था। युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई, किन्तु 1942 से उपभोक्ता वस्तुओं की कमी का काल आरम्भ हो गया क्योंकि मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का भारत में जमाव हो गया। इसलिए विशेष रूप से खाद्यान्न, वस्त्र, चीनी तथा कागज आदि की कमी अनुभव हुई। इन्हीं परिस्थितियों में राशन व्यवस्था प्रारम्भ हुई। गेहूँ, चावल, चीनी आदि एक सीमित मात्रा में सरकार द्वारा स्थापित की गई राशन की दुकानों पर राशन कार्डों पर मिलने लगे। खाने की वस्तुओं की कमी के साथ-साथ कपड़े की कमी भी हो गयी। इसके लिए भी कपड़े की दुकानें मोहल्ले के हिसाब से निश्चित कर दी गयीं जहाँ निश्चित मूल्य पर एक निश्चित मात्रा में कपड़ा मिल सकता था। ऊनी कपड़े के वितरण की व्यवस्था भी इसी प्रकार की गयी। युद्ध समाप्त होने के बाद भारत में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। वास्तव में यहीं से मूल्यों की वृद्धि और मुद्रा स्फीति का इतिहास आरम्भ होता है। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं जिनमें निर्धन वर्ग के लोगों को उनके जीवन-निर्वाह की वस्तुओं का मिलना कठिन हो गया। इन परिस्थितियों में राशन-प्रणाली स्थायी सी बन गयी। इस **राशन-प्रणाली** को ही **सार्वजनिक वितरण प्रणाली** कहा जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अभिप्रायः उस प्रणाली से है जिसका उद्देश्य उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर आवश्यक उपभोग्य वस्तुएँ उपलब्ध कराना है, ताकि उन्हें इनकी बढ़ती कीमतों के प्रभाव से बचाया जा सके तथा जनसंख्या को न्यूनतम आवश्यक उपभोग स्तर प्राप्त करने में सहायता दी जा सके। दूसरे शब्दों में **“सार्वजनिक वितरण प्रणाली से तात्पर्य उपभोक्ताओं को उचित मूल्यों पर अनिवार्य वस्तुओं की पूर्ति हेतु सार्वजनिक व्यवस्था से है।”** इस प्रणाली का सर्वोच्च लक्ष्य गरीबों की सहायता करना है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चलाने के लिए सरकार व्यापारियों तथा उत्पादकों से वसूली कीमतों पर वस्तुएँ खरीदती है। जिनका वितरण राशन की दुकानों और उचित दर दुकानों द्वारा किया जाता है। खाद्यान्नों के अतिरिक्त इस प्रणाली का प्रयोग खाद्य तेल, चीनी, कोयला, मिट्टी का तेल तथा कपड़े के वितरण के लिए भी किया जाता है। इसे किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं रखा गया, जिन परिवारों के पास निश्चित घरेलू पता है, उन सभी लोगों को

राशन कार्ड दिये गये हैं। प्रत्येक 2000 या इससे अधिक आबादी वाले गाँव या समूह के लिए एक उचित मूल्य की दुकान होगी, लेकिन आदिवासी या पहाड़ी क्षेत्र में प्रत्येक 1000 की आबादी वाले गाँव समूह के लिए एक दुकान होगी। सम्भवतः विश्व में यह अपनी तरह की सबसे बड़ी वितरण प्रणाली है।

3.4.1 सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य विशेषताएं (Salient Features of the Public Distribution System)

मुख्य रूप से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के छः अंग हैं। जिनके माध्यम से उपभोक्ताओं को वस्तुएं उपलब्ध कराई जाती हैं-

- 1. उचित मूल्य या राशन की दुकानें (Fair price or ration shops)** - सारे देश में खाद्यान्नों की उचित मूल्य पर बेचने वाली राशन की दुकानें हैं, जिनकी संख्या 1960 के अन्त में 47 हजार थी जो 1984 में 3.12 लाख तक पहुँच गई, 2011 तक लगभग 5.05 लाख से अधिक की दुकानें थीं। जिसमें से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में थीं। इन दुकानों पर गेहूँ, चावल तथा चीनी सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर राशन कार्डों के आधार पर उपभोक्ता को बेचा जाता है। इन दुकानों पर आवश्यकतानुसार कभी-कभी वनस्पति व सरसों का तेल, कोयला, मिट्टी का तेल तथा कपड़ा भी उपलब्ध करा दिया जाता है।
- 2. सरकारी उपभोक्ता भण्डार (Public Consumer Store)** - सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अंग है। इन भण्डारों में उपभोक्ताओं की आवश्यकता की वस्तुओं के साथ-साथ कण्ट्रोल की वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था होती है। 1999 को एक राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ, 35 राज्य सहकारी उपभोक्ता संघ, जिला स्तर पर 965 केन्द्रीय/थोक उपभोक्ता समितियाँ और आधार स्तर पर 26732 प्राथमिक उपभोक्ता समितियाँ कार्य कर रही थीं।
- 3. नियन्त्रित कपड़े की बिक्री की दुकानें (Controlled Clothing Sales Shops)** - सस्ते कपड़े की बिक्री की दुकानों की संख्या उतनी अधिक नहीं है किन्तु फिर भी यह दुकानें देश के सभी भागों में हैं और इन दुकानों पर सरकार को सस्ते कपड़े की योजना के अन्तर्गत बना हुआ कपड़ा राशन कार्डों के आधार पर बेचा जाता है। इस समय इस प्रकार की दुकानों की संख्या 66,300 के लगभग है।
- 4. सॉफ्ट कोक डिपो (Soft Coke Depot)** - उपभोक्ता को उचित मूल्य पर सॉफ्ट कोक बेचने के लिए सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोयले के डिपो सभी बड़े नगरों में काम कर रहे हैं। जिनकी संख्या 245 हजार है।
- 5. सुपर बाजार (Super Bazaar)** - सुपर बाजारों की स्थापना बड़े-बड़े नगरों में हो गयी है। इन भण्डारों में तो साधारण उपभोग की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।
- 6. मिट्टी के तेल के विक्रेता (Dealer of Kerosene oil)** - इस समय मिट्टी का तेल नियन्त्रित वस्तुओं के अन्तर्गत आता है, जिसकी बिक्री के लिए 245 हजार विक्रेता हैं जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर मिट्टी के तेल का विक्रय करते हैं।

3.4.2 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और भारतीय खाद्य निगम (Public Distribution System and Food Corporation of India)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए खाद्यान्न उपलब्धता की व्यवस्था भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) द्वारा की जाती है। 1965 में स्थापित भारतीय खाद्य निगम खाद्यान्नों व अन्य खाद्य सामग्री की खरीदारी, भण्डारण, संग्रहण, स्थानान्तरण, वितरण तथा बिक्री का काम करता है। निगम एक ओर तो यह निश्चित करता है कि किसानों को उनके उत्पादन की उचित कीमत मिले तथा दूसरी ओर यह निश्चित करता है कि उपभोक्ताओं को भण्डार से एक-सी कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध हो। निगम को यह भी जिम्मेदारी सौंपी गई है कि वह सरकार की ओर से खाद्यान्नों के प्रतिरोधक भण्डार (buffer stock) बना कर रखे। भारत में मौसमी प्रभाव के कारण कृषि उत्पादन में उतार चढ़ाव होते रहते हैं इसलिए निगम एक प्रतिरोधक भण्डार रखता है। इन्दिरा गांधी विकास और अनुसंधान संस्थान (Indira Gandhi Institute of Development and Research) के डॉ. किरीट पारिख के अध्ययन में यह सिफारिश की गई कि खाद्य सुरक्षा हेतु गेहूँ का 100 लाख टन तथा चावल का 60 लाख टन प्रतिरोधक भण्डार पर्याप्त होगा।

जुलाई 1995 में केन्द्र का प्रतिरोधक भण्डार 356 लाख टन के स्तर पर पहुँच गया, जबकि इसको 223 लाख टन तक रखने की सिफारिश की गयी थी। चूँकि 1994-95 में एक टन खाद्यान्न को रखने की कीमत 1447 रूपए थी। इसलिये अतिरिक्त भण्डार को रखने की लगभग लागत 969 करोड़ रूपए थी। जनवरी 1997 में प्रतिरोधक भण्डार न्यूनतम मानदण्ड से 30 प्रतिशत अधिक था परन्तु जनवरी 1998 में यह पुनः 45 प्रतिशत अधिक हो गया। 1991-1992 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से 190 लाख टन खाद्यान्नों (88 लाख गेहूँ तथा 102 लाख टन चावल) का वितरण हुआ, परन्तु बाद के वर्षों में इसमें गिरावट आई है। 1991-92 में चावल और गेहूँ का कुल आबंटन 219.20 लाख टन था जबकि उठाव (offtake) 190 लाख टन था। इस प्रकार उठाव (offtake) आबंटन का 86.7 प्रतिशत था। 2001-02 में खाद्यान्न आबंटन 303.70 लाख टन था जबकि उठाव (offtake) केवल 138.40 लाख टन था। इस प्रकार उठाव (offtake) आबंटन का मात्र 45.6 प्रतिशत था। यह कम उठाव (offtake) चिन्ता का कारण बन गया है क्योंकि इस कारण निगम के पास अनाज का भण्डार बढ़ता जा रहा है। जिसके कारण भण्डारण, तथा रखरखाव पर भारी राशि खर्च हो रही है जबकि गरीब जनता महंगाई की मार झेल रही है।

3.4.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और खाद्य अनुदान (Public Distribution System and Food Subsidies)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत सस्ती दर की लगभग 5 लाख दुकानों द्वारा प्रतिवर्ष 30,000 करोड़ रूपयों की वस्तुओं को लगभग 160 परिवारों को वितरित किया जाता है। जिसके लिए सरकार को बड़ी मात्रा में प्रतिरोधक भण्डारों हेतु खाद्यान्न खरीदने पड़ते हैं और उसे राशन की दुकानों के माध्यम से सहायिकी/अनुदान (subsidy) मूल्य पर वितरित किया जाता है। जिस कारण सरकार बड़ी राशि सहायिकी/अनुदान (subsidy) के रूप में व्यय करती है। इस व्यय राशि में लगातार वृद्धि देखी गई है। जिसे तालिका 3.2 में दर्शाया गया है। 1980-81 में अनुदान राशि 650 करोड़ रूपए थी जो 1985-86 में 1650 करोड़ रूपये, 1990-91 में 2450 करोड़ रूपये,

1995-96 में 5377 करोड़ रूपये, 2001-02 में 17612 करोड़ रूपए और 2003-04 में बढ़कर 25800 करोड़ रूपए हो गई। जो 1980-81 में कुल सरकारी व्यय का प्रतिशत थी जो 1985-86 में कुल सरकारी व्यय का 2.89 प्रतिशत, 1990-91 में कुल सरकारी व्यय का 2.33 प्रतिशत, 1995-96 में कुल सरकारी व्यय का 2.90 प्रतिशत, 2001-02 में कुल सरकारी व्यय का 4.83 प्रतिशत और 2003-04 में बढ़कर कुल सरकारी व्यय का 5.20 प्रतिशत हो गई।

तालिका 3.2

खाद्य अनुदानपर केन्द्र सरकार का व्यय

वर्ष	व्यय (करोड़ रूपये) चालू कीमतों पर	कुल सरकारी व्यय का प्रतिशत
1980-81	650	2.89
1985-86	1650	3.11
1990-91	2450	2.33
1995-96	5377	2.90
2000-01	12125	3.61
2001-02	17612	4.83
2003-04	25800	5.20

स्रोत- भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (2004-05) और पहले के अंक

पिछले वर्षों में इसमें और भी अधिक वृद्धि हुई है। जिससे केन्द्र सरकार पर अनुदानों का बोझ बढ़ता जा रहा है। जिसका विवरण तालिका (3.3) में दिया गया है। 2005-06 में कुल अनुदान राशि 23,071 करोड़ रूपए थी जो 2006-07 में 23828 करोड़ रूपये, 2007-08 में 31260 करोड़ रूपये, 2008-09 में 43668 करोड़ रूपए और 2009-10 में बढ़कर 58,242 करोड़ रूपए हो गई, जिसने सरकार को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गरीबों तक सीमित किया जाए।

तालिका 3.3

खाद्य अनुदान हेतु जारी राशि (करोड़ रूपए में)

वर्ष	भारतीय खाद्य निगम	राज्यों	कुल
2005-06	19871	320	23071
2005-06	20786	3042	23828
2005-06	27760	3500	31260
2005-06	36744	6924	43668
2005-06	46867	11375	58242

Source-Annual Report-2010-11 Department of Food and Public Distribution

3.4.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा (Public Distribution System Food Security for the Poor)

खाद्य सुरक्षा का अर्थ है सभी लोगों को सभी समयों पर पर्याप्त प्राप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराना ताकि वे सक्रिय व स्वास्थ्य जीवन व्यतीत कर सकें। पी. वी. श्री निवासन (P. V. Srinivasan) का कहना है कि इसके लिए ना केवल उचित मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध हो बल्कि लोगों के पास इसे क्रय करने की उपयुक्त शक्ति भी हो ताकि वह आवश्यकतानुसार खाद्यान्न क्रय कर सकें। खाद्य सुरक्षा समस्या के समाधान के लिये भारत सरकार ने तीन खाद्य आधारित सुरक्षा जाल अपनाये हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली, समेकित बाल विकास सेवायें तथा दोपहर भोजन कार्यक्रम। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य राशन की दुकानों के माध्यम से गरीबों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराना है।

तालिका 3.4

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में वितरित मदों का विवरण

क्र. संख्या	वस्तु	कुल क्रय में प्रतिशत
1	चावल	26.70
2	गेहूँ	10.08
3	बाजरा	0.09
4	ज्वार	0.27
5	अन्य अनाज	0.44
6	दालें	0.20
7	चीनी	34.84
8	खाद्य तेल	8.54
9	मिठ्टी का तेल	14.58
10	कोयला	0.31
11	मानक कपड़ा	3.94

Source-PDS Reform and Scope for Commodity Targetting

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सरकार गेहूँ, चावल, चीनी, खाद्य तेल, साफ्ट कोक और मिठ्टी का तेल बेचने की व्यवस्था करती है किन्तु इनमें से चार मदों (Items) चावल, गेहूँ, चीनी तथा मिठ्टी के तेल का कुल विक्रय में हिस्सा 86 प्रतिशत था तथा अन्य वस्तुओं जैसे बाजरा, ज्वार, दालें व अन्य अनाज कोयला व कपड़े का हिस्सा नाम मात्र का था जिसका विवरण तालिका 3.4 में दिया गया है।

श्री राधाकृष्ण और उनके सहकर्मियों ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (national sample survey) के 42 वें दौर (Round) के आधार पर 1986-87 के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव का अध्ययन किया। जिसमें बिहार और उत्तर प्रदेश में इस प्रणाली का प्रदर्शन निराशाजनक था जबकि केरल और आन्ध्र प्रदेश में यह प्रणाली प्रभावी रूप से लागू थी और लोग इसका लाभ उठा रहे थे।

अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रणाली में अनाज के क्रय में एक तरफ समृद्ध राज्य जैसे पंजाब व हरियाणा बहुत कम अनाज की खरीद कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ गरीबी के उच्च स्तर वाले राज्य जैसे बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश में अनाज की खरीद कम थी। इसलिए श्री राधाकृष्ण इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि **“प्रभावी फैलाव और अनुदान के रूप में किया गया अतिरिक्त राज्य स्तर पर व्यय इस बात की गारन्टी नहीं देता कि गरीब वर्गों की मदद की जा रही है। यह प्रणाली खर्चीली और अधिकतर अलक्षित हो रही है।”**

श्री राधाकृष्ण ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली का गरीबी को कम करने के रूप में प्रभाव का भी अध्ययन किया है। समस्त भारत पर विचार करें तो सभी उपभोक्ता अनुदान का निर्धनता पर प्रभाव मर्यादित था, अनुदान ने निर्धनता को ग्राम-क्षेत्र में 1.66 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 1.71 प्रतिशत ही कम किया। जिसका विवरण तालिका 3.5 में दिया गया है। जिससे पता चलता है कि केरल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों में गरीबी की कमी का प्रतिशत अन्य राज्यों की तुलना में अधिक या जबकि उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पंजाब, हरियाणा व राजस्थान में गरीबी निवारण में इसकी भूमिका शोचनीय (deplorable) थी।

तालिका 3.5

1986-87 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रभावधीन गरीबी में प्रतिशत गिरावट

क्रम संख्या	राज्य	गरीबी में प्रतिशत कमी	
		ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
1.	केरल	5.49	3.62
2.	आन्ध्र प्रदेश	4.64	3.24
3.	कर्नाटक	4.33	1.88
4.	गुजरात	3.85	2.67
5.	महाराष्ट्र	2.05	1.75
6.	पश्चिम बंगाल	1.67	2.36
7.	असम	1.50	1.03
8.	मध्य प्रदेश	1.43	0.92
9.	राजस्थान	0.91	0.40
10.	हरियाणा	0.50	0.64
11.	पंजाब	0.55	0.44
12.	बिहार	0.30	0.37
13.	उड़ीसा	0.30	0.69
14.	उत्तर प्रदेश	0.22	0.82

Source-Annual Report-2010-11 Department of Food and Public Distribution

3.4.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार की नीति (Policy for Reforms in the Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सर्वोच्च उद्देश्य गरीबों की मदद करना है। इसके लिए गरीबों की पहचान बुनियादी समस्या है। इसके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निम्न सुझाव दिये-

1. गरीबों की पहचान के कार्य को नौकरशाही की अपेक्षा पंचायती राज संस्थाओं को सौंप देना चाहिए।
2. विस्तृत उपभोक्ता सर्वेक्षणों द्वारा ऐसी वस्तुओं की पहचान की जानी चाहिए, जोकि सार्वजनिक वितरण में गरीबों की अधिक आर्थिक सुरक्षा में सहायक हो सकें और अन्य वस्तुएँ जो गैर-निर्धनों द्वारा इस्तेमाल की जाती है, धीरे-धीरे खुले बाजार में हस्तान्तरित कर देनी चाहिए।
3. गरीबों को प्रभावी रूप में सुरक्षा के लिए अनिवार्य वस्तुओं की जारी कीमत (issue price) और बाजार कीमत (market price) में काफी अन्तर होना चाहिए ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वस्तुओं को खरीदने के लिए गरीब आकर्षित हो सकें।
4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली को रोजगार कार्यक्रमों जैसे जवाहर रोजगार योजना व रोजगार आश्वासन योजना के माध्यम से लागू करना चाहिए, क्योंकि इन कार्यक्रमों के गरीबों को दोहरे लाभ प्राप्त होते हैं।
5. राज्य सरकार को खाद्य स्टाम्प या प्रमाण पत्र पंचायती राज संस्थाओं को जारी कर देना चाहिए, ताकि वे इनको जवाहर रोजगार आश्वासन कार्यक्रम के चालकों को श्रमिकों में बाटने के लिए सौंप दें।
6. ग्रामीण क्षेत्र में बच्चों के साथ अकेली माताएं या बेसहारा विधवाओं को शामिल किया जाए।
7. सभी भूमिहीन किसान, श्रमिक, छोटे दस्तकार इसमें शामिल किए जाने चाहिए।
8. शहरी क्षेत्रों का चुनाव ध्यानपूर्वक करना चाहिए, गन्दी-बस्तियाँ ऐसे क्षेत्र जो परम्परा से गरीब सम्प्रदायों के निवास है।

3.5 लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना (Targeted Public Distribution Scheme)

खाद्य अनुदान के बढ़ते हुए भार को कम करने के उद्देश्य से तथा उसे उन लोगों तक बेहतर तरीके से पहुँचाने के लिए जिन्हें उसकी अधिक आवश्यकता है, भारत सरकार ने 1 जून 1997 से लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना लागू की। इस योजना के अधीन राज्य सरकारों से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का पता लगाने को कहा गया। इस गरीबी रेखा से नीचे उन परिवारों का रखने की व्यवस्था थी जिनकी वार्षिक आय 15,000 रूपयों से कम है। शुरु में प्रति परिवार 10 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति मास (per month) देने की व्यवस्था की गई जिसे बाद में बढ़ाकर 25 किलोग्राम कर दिया गया। 1 अप्रैल 2002 को राशन की मात्रा और बढ़ाकर 35 किलोग्राम प्रति मास प्रति परिवार कर दी गई।

लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना में 6 करोड़ गरीब परिवारों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से 72 लाख टन अनाज की मात्रा निर्धारित की गई। गरीबों की पहचान का काम राज्य सरकारों को योजना आयोग के 1993-94 के गरीबी आकलन के विशेषज्ञ समूह के आधार पर करनी थी। विशेषज्ञ समूह की अध्यक्षता प्रोफेसर लकडावाला (Professor Lakdawala) ने की थी जहाँ तक गरीबी रेखा के नीचे (below poverty line) तथा ऊपर रहने

वाले (above poverty line) परिवारों के लिए निर्गमन कीमतों का सम्बन्ध है, उनमें काफी अन्तर रखा गया है। मार्च 2000 में सरकार ने निर्गमित कीमत को गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के लिए भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत का 50 प्रतिशत तथा गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों के लिए आर्थिक लागत के बराबर निश्चित कर दिया।

उदाहरण के लिए, गेहूँ के लिए भारतीय खाद्य निगम की 2000-01 में आर्थिक लागत 830 रूपए प्रति क्विंटल थी, इसलिए बीपीएल परिवारों के लिए निर्गमन कीमत 415 रूपए प्रति क्विंटल (अर्थात् 4.15 रूपए प्रति किलो) निर्धारित की गई चावल के लिए भारतीय खाद्य निगम की 2000-01 में आर्थिक लागत 1130 रूपए प्रति क्विंटल थी, इसलिए गरीबी रेखा के नीचे (below poverty line) परिवारों के लिए चावल की निर्गमन कीमत 565 रूपए प्रति क्विंटल (अर्थात् 5.65 रूपए प्रति किलो) तथा गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले (above poverty line) परिवारों के लिए 1130 रूपए प्रति क्विंटल (अर्थात् 11.30 रूपए प्रति किलो) निर्धारित की गई।

गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों के लिए इन ऊंची कीमतों का निर्धारण करने से इन परिवारों ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली से खरीदारी बहुत कम कर दी। इसके परिणामस्वरूप भारतीय खाद्य निगम के पास अनाज के भारी भण्डार जमा हो गए। इसलिए जुलाई 2001 में गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले (above poverty line) परिवारों के लिए निर्गमन कीमत को कम करके आर्थिक लागत का 70 प्रतिशत कर दिया गया। 2010-11 में बीपीएल और अन्त्योदय परिवारों के लिए गेहूँ की निर्गमन कीमत 8.45 रूपए प्रति किलोग्राम तथा चावल की निर्गमन कीमत 11.85 रूपए प्रति किलो थी।

3.5.1 अन्तोदय अन्न योजना (Antodaya Anna Yojana)

अन्तोदय अन्न योजना, दिसम्बर 2000 में शुरू की गयी थी, इस योजना का उद्देश्य 652 लाख की कुल गरीबी की रेखा के नीचे की आबादी में से 100 लाख सबसे गरीब परिवारों का पता लगाकर उन्हें गेहूँ 2 रूपए प्रति किलो तथा चावल 3 रूपए प्रति किलो की निम्न दर से प्रत्येक महीने प्रत्येक परिवार को 25 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। इसे 1 अप्रैल 2002 को बढ़ाकर 35 किलो प्रति माह प्रति परिवार कर दी गई। इस प्रकार अन्त्योदय के अन्तर्गत 1 करोड़ गरीबी रेखा के नीचे (below poverty line) रहने वाले परिवारों को योजना का लाभ दिया गया।

2003-04 में अन्त्योदय योजना में पहला विस्तार किया गया। जब जून 2003 को जारी आदेश द्वारा 50 लाख बीपीएल परिवारों, जो विधवाओं, बीमार, 60 साल व अधिक आयु वर्ग के लोगों को इनमें जोड़ा गया। इसके साथ 1.5 करोड़ (अर्थात् 23 प्रतिशत बीपीएल) परिवार इसमें शामिल हो गए। वर्ष 2004-05 बजट में इस योजना में दूसरा विस्तार करते हुए 3 अगस्त 2004 को जारी आदेश द्वारा और 50 लाख बीपीएल परिवारों को इसमें सम्मिलित किया गया। जिसमें भूमिहीन किसान, कृषि श्रमिक, सीमान्त किसान, कुम्हार, चर्मकार, बुनकर, लौहार, बढ़ई, कुली, रिकशाचालक, सपेरे, मोची, बेसहारा, फल-फूल विक्रेता आदि को शामिल किया गया। इस प्रकार अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत 2 करोड़ (30.66 बीपीएल) परिवार सम्मिलित हो गये। 2005-06 के बजट में पुनः 50 लाख और परिवार को इस योजना में शामिल करने की बात कही गई। इस प्रकार इस योजना में 2.50 करोड़ परिवारों को शामिल कर लिया गया।

3.5.2 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत खाद्यान्न आबंटन (Allocation of Foodgrains under Targeted Public Distribution System)

अन्त्योदय योजना तथा बीपीएल श्रेणी के लिए 35 किलोग्राम खाद्यान्न आबंटन प्रतिमाह निर्धारित किया गया। जिससे 6.52 करोड़ परिवारों पर लागू है जहाँ तक गरीबी रेखा के ऊपर (एपीएल) को खाद्यान्न वितरण की बात है तो यह खाद्यान्न उपलब्धता के आधार पर 10 किलो से 35 किलोग्राम तक हो सकता है। वर्ष 2010-11 में सरकार लक्षित सार्वजनिक वितरण के तहत अन्त्योदय, बीपीएल तथा एपीएल परिवारों के लिए 470.80 लाख टन खाद्यान्न जारी कर चुकी है। इसके अलावा 5.90 लाख टन खाद्यान्न आपदा राहत के तहत राज्यों को जारी कर चुकी है। आबंटित खाद्यान्न की कीमत गेहूँ के लिए 8.45 रूपए प्रति किलो तथा 11.85 रूपए प्रति किलो की दर पर जारी की गई। 2010-11 (दिसम्बर 2010 तक) खाद्यान्न को उठाव (offtake) का विवरण तालिका (3.6) में दिया गया है।

तालिका 3.6

2010-11 (दिसम्बर 2010 तक) खाद्यान्न को उठाव (offtake) का विवरण

क्र सं	लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना	गेहूँ	चावल	कुल
1	अन्त्योदय खाद्य योजना	23.69	49.06	72.74
2	गरीबी रेखा के नीचे	43.99	84.50	128.49
3	गरीबी रेखा के ऊपर	74.49	52.50	126.99
	कुल	186.05	142.17	126.99

Source-Annual Report-2010-11 Department of Food and Public Distribution

जून 1999 में जारी दिशा निर्देशों में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के क्रियान्वयन व निरीक्षण में पंचायती राज संस्थाओं को साथ लेने की बात कही गई साथ ही पंचायत, वार्ड, तहसील, तथा जिला और राज्य स्तर सतर्कता समितियों के गठन पर जोर दिया गया जिससे समय समय पर ये राशन की दुकानों में वस्तु मूल्य व आबंटित राशन कार्ड उपलब्ध खाद्यान्न, बीपीएल परिवारों की सूची तथा राशन कार्डों के सत्यापन सम्बन्धि जानकारी प्राप्त कर सकें।

3.5.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (नियन्त्रण) आदेश 2001 (Public Distribution System (Control) Order 2001)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा उपलब्धता बनाए रखने के लिए 31 अगस्त 2001 को सार्वजनिक वितरण प्रणाली (नियन्त्रण) आदेश 2001 अधिसूचित किया गया। आदेश में निम्न मुद्दों पर मुख्य रूप से प्रावधान है-

1. गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की पहचान
2. राशन कार्ड
3. पैमाना तथा जारी मूल्य
4. खाद्यान्नों का वितरण
5. लाइसेंसिंग
6. मॉनिटरिंग

आदेश में सभी राज्य सरकारों, केन्द्र शासित राज्यों से यह सुनिश्चित करने के लिए कहा गया कि अन्त्योदय तथा बीपीएल के रूप में पहचाने गये परिवार वास्तव में गरीब है। राज्य सरकारें व केन्द्र शासित राज्यों की सरकारें राशन कार्डों की जांच कर अपात्र और फर्जी राशन कार्डों पर रोक लगाये। यह भी सुनिश्चित करे कि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ उचित लाभार्थियों को ही प्राप्त हो रहा है। ऐसा ना होने पर आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के तहत आपराधिक मामला माना जाएगा।

3.5.4 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत करने के उपाय (Measures to Strengthen Targeted Public Distribution System)

सरकार पर अनुदान (subsidy) के बोझ को कम करने तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की लागत को नियन्त्रित करने के लिए कदम उठाया गया और नौ बिन्दुओं की कार्यान्वयन योजना लागू की गई। 2005 में योजना आयोग और ओ.आर.जी. (O.R.G.) मार्ग द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन रिपोर्ट में अन्त्योदय तथा बीपीएल परिवारों की पहचान में भारी त्रुटियाँ सामने आयीं। जिस कारण खाद्य मंत्रियों के राष्ट्रीय सम्मेलन में नौ बिन्दुओं की कार्यान्वयन योजना विकसित की गई, जिसके नौ कार्यान्वयन बिन्दु निम्न प्रकार हैं-

1. अन्त्योदय व बीपीएल सूची की समय-समय पर समीक्षा की जाए, जिससे सही लोगों को योजना का लाभ प्राप्त हो।
2. योजना में निरन्तर व सुनिश्चित वस्तु वितरण की व्यवस्था की जाए तथा रिसाव की स्थिति में दोषियों के विरुद्ध कार्यवाही की जाए।
3. पंचायती राज संस्थान तथा सलाहकार समितियों को भागीदार बनाया जाए।
4. प्रणाली में पारदर्शिता हेतु अन्त्योदय तथा बीपीएल परिवारों की सूची, वस्तुओं की कीमत आदि की सूचना, सूचना पट पर प्रदर्शित की जाए।
5. प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए कम्प्यूटरीकरण (computerization) द्वारा जिलेवार आबंटन खाद्यान्न की सूचना वेबसाइटों (websites) पर डाली जाए।
6. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विवरण की वस्तुओं को राशन की दुकानों तक पहुँचाने की व्यवस्था हो।
7. समय पर खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
8. जनता में जागरूकता लाई जाए जिससे वह प्रणाली के संचालन पर सतर्क दृष्टि रखें।
9. आर्थिक रूप से व्यवहारिक बनाने के लिए राशन की दुकानों पर गैर सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वस्तुएँ बेचने की अनुमति दी जाए।

राज्य तथा केन्द्र शासित सरकारों से दिसम्बर 2010 में प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार निम्न तथ्य सामने आये-

- (क) 26 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों में अनुमानित 208.57 लाख अपात्र व फर्जी राशन कार्ड है।
- (ख) खाद्यान्न की राशन की दुकान पर ही पहुँचाने की व्यवस्था मात्र 17 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों में है।
- (ग) सतर्कता समितियों व पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी 27 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों में थी।
- (घ) 30 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों के राशन दुकानों पर बीपीएल सूची प्रदर्शित थी।
- (ङ) लक्षित सार्वजनिक वितरण के कम्प्यूटरीकरण की शुरुआत 10 राज्यों में हो गई।

- (च) 33 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों ने अन्त्योदय व बीपीएल सूची की समीक्षा की।
- (छ) 20 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों में जिलेवार राशन की दुकानों पर आबंटित खाद्यान्न का विवरण का प्रदर्शन था।
- (ज) 27 राज्यों/केन्द्रशासित राज्यों में सर्तकता समितियों के प्रशिक्षण व्यवस्था की गई।

3.5.5 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of Targeted Public Distribution System)

वर्तमान समय में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन 26 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research) द्वारा किया गया है। अध्ययन में पाया गया की तीन राज्यों में ग्लोबल पोजिशनिंग व्यवस्था (global positioning system) के कार्यान्वयन के प्रयास किये जा रहे हैं तथा तमिलनाडू ने इसके लिए 2009-10 में 64,000 रूपए जारी किये हैं। इस प्रणाली में प्रयोग किये जा रहे परिवहनों पर पहचान प्रदर्शित करने की व्यवस्था की जा रही है। ग्राम पंचायतों, सर्तकता समितियों, शहरी स्थानीय निकायों तथा स्वयं सहायता समूह द्वारा राशन की दुकानों का मासिक प्रमाणीकरण किया जा रहा है। देश की कुल 5.05 लाख राशन दुकानों में से 1,25,743 सहकारिता, महिला स्वयं सहायता समूह, ग्राम पंचायत, शहरी स्थानीय निकाय तथा अन्य स्वयं सहायता समूहों को आवंटित थी।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली संचालन का कम्प्यूटरीकरण करने के लिए 11 वीं पंचवर्षीय योजना में 376 करोड़ रूपए के आबंटन को मंजूरी दे दी है। स्मार्ट सरकार के लिए राष्ट्रीय संस्थान, हैदराबाद, मार्च 2008 से विभाग के साथ इसमें लगा हुआ है। योजना को 4 पायलट राज्यों (आन्ध्र प्रदेश, असम, छत्तीसगढ़ तथा दिल्ली) के 3-3 जिलों में लागू किया जा रहा है। आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, केरल, मेघालय, सिक्किम तथा उड़ीसा में बारकोड कूपन वाले राशन कार्ड की व्यवस्था कर दी गई है। हरियाणा व चण्डीगढ़ में लक्षित सार्वजनिक प्रणाली के तहत स्मार्ट कार्ड जारी किये गए। गेहूँ के स्थान पर गेहूँ का आटे के वितरण की व्यवस्था जनवरी 2008 से आठ राज्यों में शुरू हो गई है।

3.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

1. किसान तब तक उत्पादन बढ़ायेगा जब तक सीमान्त न हो जायें।
2. सन्तुलन बिन्दु के बाद सीमान्त होगा।
3. प्रत्येक या इससे अधिक आबादी वाले गाव समूह के लिए एक उचित मूल्य की दुकान होगी, लेकिन आदिवासी या पहाड़ी क्षेत्र में प्रत्येक की आबादी वाले गाँव समूह के लिए एक दुकान होगी।
4. उचित मूल्य या राशन की दुकानों की संख्या अब लगभग..... है।
5. में स्थापित भारतीय खाद्य निगम खाद्यन्नों व अन्य खाद्य सामग्री की खरीदारी, भण्डारण, संग्रहण, स्थानान्तरण, वितरण तथा बिक्री का काम करता है।

6. डॉ. किरिट पारिख के अध्ययन में यह सिफारिश की गई कि खाद्य सुरक्षा हेतु गेहूँ का तथा चावल का..... प्रतिरोधक भण्डार पर्याप्त होगा।
7. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सरकार गेहूँ, चावल, चीनी, खाद्य तेल, साफ्ट कोक और मिट्टी का तेल बेचने की व्यवस्था करती है। किन्तु इनमें से चार मदों का कुल विक्रय में हिस्सा 86 प्रतिशत था।
8. भारत सरकार नेसे लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना लागू की।
9. 1 अप्रैल 2002 को राशन की मात्रा और बढ़ाकर प्रति मास प्रति परिवार खाद्यान्न की व्यवस्था कर दी गई।
10. मार्च 2000 में सरकार ने निर्गमित कीमत को गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के लिए भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत का..... तथा गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों के लिए आर्थिक लागत का निश्चित कर दिया।
11. अन्तोदय अन्न योजना में शुरू की गयी थी।
12. अन्त्योदय योजना तथा बीपीएल श्रेणीपरिवारों पर लागू है।

3.7 सारांश (Summary)

किसानों के अधिकतम लाभ देने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी भूमि पर अधिकतम उत्पादन करें। अधिकतम उत्पादन की स्थिति में भूमि का सीमान्त उत्पादन अर्थात् उत्पादन से प्राप्त सीमान्त आय उस उत्पादन हेतु की गई सीमान्त लागत के बराबर होनी चाहिए। अधिकतम उत्पादन की स्थिति में सरकार द्वारा बड़ी मात्रा में किसानों से उनका उत्पाद खरीदा जाता है जिससे किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य मिल सके और सरकार की विभिन्न कल्याण योजनाओं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली हेतु खाद्यान्न की व्यवस्था हो जाये। सार्वजनिक वितरण प्रणाली वह व्यवस्था है जिसमें उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएं उचित मूल्य पर सीमित मात्रा में निरन्तर प्राप्त होती रहती है। इसके लिए प्रत्येक 2000 या अधिक आबादी वाले गांव समूह या आदिवासी या पहाड़ी क्षेत्र में प्रत्येक 1000 की आबादी वाले गांव समूह के लिए एक राशन की दुकान होगी। इस समय भारत में इनकी संख्या लगभग 5 लाख है। जिनसे गेहूँ, चावल, चीनी, मिट्टी का तेल, कोयला आदि वितरित किया जाता है। इस प्रणाली हेतु खाद्यान्न की व्यवस्था भारतीय खाद्य निगम करता है। जिसके लिए सरकार अनुदान (subsidy) देती है। इस प्रणाली द्वारा गरीबों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। राधाकृष्ण के अध्ययन से इसकी अनेक कमियों का पता चला इसलिए सरकार ने जून 1997 और लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरूआत की।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा अन्तोदय और बीपीएल परिवारों को 35 किलो खाद्यान्न प्रतिमाह प्रदान करती है। अन्त्योय अन्न योजना 2000 में शुरू की गई अब इसके अन्तर्गत 2.50 करोड़ परिवार शामिल है। इस प्रकार लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में 6.52 करोड़ परिवारों पर लागू है। 2001 के सार्वजनिक वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश द्वारा इसमें प्रावधान करेंगे। प्रणाली में पारदर्शिता हेतु बीपीएल परिवारों की सूची की समीक्षा, व्यवस्था का कम्प्यूटरीकरण, पंचायती शहरी निकाय, ग्राम समितियों की भागीदारी आदि व्यवस्था लागू की गई।

3.8 शब्दावली (Glossary)

- **लक्षित** - लक्ष्य के अनुसार या निश्चित लक्ष्य पर आधारित।
- **सहकारी** - वह व्यवस्था जिसमें कुछ लोग एक उद्देश्य के लिए साथ मिलकर कार्य करते हैं।
- **अन्त्योदय** - सामाजिक रूप से अन्तिम पायदान के लोगों का उदय अर्थात् गरीबों में से भी सबसे गरीबों का विकास
- **अनुदान/रियायत** - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

1. सीमान्त आगम सीमान्त लागत के बराबर (MR = MC)
2. सीमान्त लागत सीमान्त आगम से अधिक अर्थात् (MC > MR)
3. 2000 ; 1000
4. 5 लाख
5. 1965
6. 100 लाख टन ; 60 लाख टन
7. चावल, गेहूँ, चीनी तथा मिट्टी के तेल
8. 1 जून 1997
9. 35 किलोग्राम
10. 50 प्रतिशत ; 70 प्रतिशत
11. दिसम्बर 2000
12. 6.52 करोड़ परिवारों

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- सोनी, आर. एन.; (2007) 'कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय', विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा
- मिश्र, एस. के. पुरी, वी. के.; (2008) 'भारतीय अर्थशास्त्र', हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
- दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम.; (2007) 'भारतीय अर्थव्यवस्थाए', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- माथुर, बी. एल.; (2011) 'कृषि अर्थशास्त्र', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त, डॉ शिव भूषण; (2010) 'कृषि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन आगरा।
- मामेरिया, डॉ. चतुर्भज एवं जैन डॉ. एस. सी.; (1995) 'भारतीय अर्थशास्त्र', प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- Bilgrami, S. A. R.; (2006) 'An Introduction to Agricultural Economics,' Himalaya Publishing House Delhi.

3.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Texts)

- Taylor, H.C., (1949), '*Outlines of Agricultural Economic's*', MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), '*Agriculture and Economic Development*'; Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), '*Fundamentals Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), '*Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): '*Indian Agricultural Development since Independence*', Oxford & IBH, New Delhi.

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आप क्या समझते हैं? भारत की सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
2. लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की समीक्षा कीजिए।
3. क्या लक्षित सार्वजनिक वितरण व्यवस्था पुरानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर सुधार है? व्याख्या कीजिए।

इकाई 4- कृषि अतिरेक एवं कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural Surplus and Agricultural Marketing System)

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 कृषि अतिरेक
 - 4.3.1 विपणन योग्य कृषि अतिरेक का आर्थिक महत्व
 - 4.3.2 विपणन योग्य कृषि अतिरेक को निर्धारित करने वाले तत्व
 - 4.3.3 भारत में विपणन योग्य कृषि अतिरेक
- 4.4 कृषि विपणन व्यवस्था
 - 4.4.1 अच्छी विपणन व्यवस्था की विशेषताएं
 - 4.4.2 कृषि विपणन के उद्देश्य
 - 4.4.3 आर्थिक विकास में कृषि विपणन का महत्व
- 4.5 भारत में कृषि विपणन व्यवस्था
 - 4.5.1 भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था के दोष
 - 4.5.2 दोषपूर्ण विपणन के परिणाम
 - 4.5.3 कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार हेतु किए गए सरकारी उपाय
- 4.6 सहकारी विपणन व्यवस्था
 - 4.6.1 सहकारी विपणन संस्थाओं के उद्देश्य
 - 4.6.2 सहकारी विपणन व्यवस्था की संरचना
 - 4.6.3 भारत में सहकारी विपणन व्यवस्था की प्रगति
 - 4.6.4 सहकारी विपणन व्यवस्था के लाभ
 - 4.6.5 भारत में सहकारी विपणन व्यवस्था की धीमी प्रगति के कारण
 - 4.6.6 सहकारी विपणन में सुधार हेतु सुझाव
- 4.7 अभ्यास प्रश्न
- 4.8 सारांश
- 4.9 शब्दावली
- 4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व की इकाई में आप सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में कृषि अतिरेक्त की जानकारी के साथ कृषि विपणन व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है तथा सहकारी विपणन व्यवस्था की भी जानकारी प्रस्तुत की जाएगी। इसके अध्ययन से आप कृषि विपणन व्यवस्था की सम्पूर्ण प्रणाली से अवगत हो जायेंगे।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त के महत्व को समझ सकेंगे।
- ✓ भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली को समझ सकेंगे।
- ✓ सहकारी विपणन व्यवस्था की कृषि विपणन में भूमिका से अवगत हो जायेंगे।

4.3 कृषि अतिरेक्त (Agricultural Surplus)

कृषि प्रधान देश प्रभावपूर्ण रूप से काफी हद तक विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त (marketable agricultural surplus) पर निर्भर करते हैं। किसी देश के विकास में बढ़ता हुआ कृषि उत्पादन ही नहीं बल्कि वास्तव में बढ़ता हुआ विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त (marketable agricultural surplus) ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

किसी देश की तीव्र तथा स्थिर विकास दर के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि ही काफी नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त में निरन्तर व समानरूप से वृद्धि हो। विपणन योग्य अतिरेक्त (marketable agricultural surplus) कृषि उपज का वह भाग है जिसे किसान विपणन के लिए बाजार में प्रस्तुत करता है अर्थात् कृषि उपज का वह भाग जिसे कृषक वर्ग समाज के अन्य उपभोक्ताओं के लिए बाजार में प्रस्तुत करता है, विक्रय योग्य अतिरेक्त कहलाता है।

किसान जो भी कृषि उत्पाद पैदा करता है, उनमें से वह अपने उपभोग के लिए रखी गई, उपज वस्तु में मजदूरी भुगतान हेतु, बीज तथा पशुओं के उपभोग हेतु कुछ अंश आदि को निकालकर जो शेष बचता है, उसे कृषि अतिरेक्त (agricultural surplus) कहते हैं। इस कृषि अतिरेक्त को ही किसान बाजार में बेचता है। इसे विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त (marketable agricultural surplus) को बेचकर वह जो धन प्राप्त करता है, उससे गैर-कृषि क्षेत्र की उत्पादित वस्तुओं का क्रय कर लेता है।

4.3.1 विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त का आर्थिक महत्व (Economic Importance of Marketable Agricultural Surplus)

विकासशील देशों में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त (marketable agricultural surplus) में निरन्तर वृद्धि तीव्र औद्योगिकरण की पूर्व शर्त (precondition) है। एम. कॉन (M. Con), डब्लू. एच. निकोल्स (W. H. Nichols) तथा डब्लू. डब्लू. रोस्टोव (W. W. Rostow) जैसे अर्थशास्त्रियों भी इस तथ्य से सहमति रखते हैं कि

अगर विपणन योग्य अतिरेक्त में उत्पादन के साथ वृद्धि नहीं हुई तो तीव्र विकास सम्भव नहीं है। विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त का किसी भी देश के आर्थिक विकास में निम्न महत्व होता है।

1. **कच्चे माल की पूर्ति (Supply of Raw Materials)** - अनेक उद्योग जैसे - वस्त्र, जूट, तथा चीनी आदि कच्चे माल के लिए कृषि पर निर्भर करते हैं। यदि किसानों के पास कपास, जूट तथा गन्ने की अतिरेक्त मात्रा नहीं हो तो इन उद्योगों के लिए कच्चे माल की कमी हो जाएगी और इनका विकास रूक जाएगा। इसलिए देश के तीव्र तथा निरन्तर औद्योगिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र के विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त का होना आवश्यक है।
2. **पूँजी निर्माण का आधार (Basis of Capital Formation)** - विकासशील देशों में विकास हेतु पूँजी निर्माण की कमी एक प्रमुख समस्या है। ये देश मुख्य रूप से कृषि प्रधान होते हैं। जिसके कारण कृषि क्षेत्र में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त अधिक होने पर ही किसानों की आय अधिक होने से अधिक बचत प्राप्त होगी। जिसके परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर (rate of capital formation) भी अधिक होगी। और अधिक पूँजी निर्माण द्वारा ही देश का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव होगा।
3. **देश की जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उपलब्धता (Food availability for the country's population)** - विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त द्वारा ही देश की गैर कृषि क्षेत्र की जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित होती है। यदि विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त पर्याप्त नहीं होता तो ऐसी स्थिति में विदेशों से खाद्यान्न आयात करना पड़ता है। जिससे विदेशी मुद्रा का प्रयोग देश के आर्थिक विकास में ना होकर उपभोग के लिए करना पड़ता है।
4. **पूँजीगत वस्तुओं के आयात की पूर्ति (Import of Capital Goods)** - विकासशील देशों द्वारा विकसित देशों को मुख्य रूप से कृषि उत्पाद का निर्यात किया जाता है। यदि कृषि क्षेत्र में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त अधिक हो, तो कृषि उत्पाद के निर्यात में वृद्धि करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। जिसे पूँजीगत वस्तुओं के आयात से देश के आर्थिक विकास को गति मिलती है।
5. **आन्तरिक बाजार का विस्तार (Expansion of Internal Market)** - विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त की मात्रा पर ही विकासशील देशों में आन्तरिक बाजार का विस्तार निर्भर करता है। विपणन अतिरेक्त अधिक होने पर किसानों की आय में वृद्धि होती है, जिससे उनका रहन-सहन का स्तर बढ़ता है और नये-नये क्षेत्रों में नवीन वस्तुओं की माँग बढ़ती है जिससे देश का आर्थिक विकास होता है।
6. **उचित कीमत नीति निर्धारण में सहायक (Helpful in Determination of Fair Pricing)** - विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त की निरन्तरता के कारण ही नियमित मण्डियों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही विपणन अतिरेक्त उचित कीमत नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिससे किसानों को अधिकाधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहन मिलता है।

इस प्रकार विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त देश की अर्थव्यवस्था के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। इसलिए कृषि उत्पादन वृद्धि के साथ विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त में निरन्तर वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रो. लेविस (Prof. Levis) ने विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त के महत्व को व्यक्त करते हुए कहा है कि **“आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए कृषि उपजों के विपणन योग्य अतिरेक्त का होना आवश्यक**

है। यदि कृषि अतिरेक्त को विपणन हेतु बाजार में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, तो शहरी जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। जिस विदेशी मुद्रा का उपयोग देश के आर्थिक विकास के लिए होता है, वह विदेशों से खाद्य आयात पर व्यय करना पड़ेगा।”

4.3.2 विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors to Determining the Marketable Agricultural Surplus)

सामान्यतया यह अनुभव किया गया है, कि विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होता है। जबकि एक क्षेत्र और एक फसल में भी भिन्न-भिन्न हो सकता है। किसी अर्थव्यवस्था में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त को निम्न तत्व निर्धारित करते हैं-

- 1. उत्पादन का स्तर (Level of Production)** - विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त मुख्य रूप से उत्पादन के स्तर उत्पादकता पर निर्भर करता है। जिस फसल की उत्पादकता अधिक होती है उसका उत्पादन क्षेत्र बढ़ता है और विपणन योग्य अतिरेक्त भी बढ़ता है। कृषि विकास के साथ उत्पादन का स्तर बढ़ता है और विपणन अतिरेक्त में भी वृद्धि होती है।
- 2. उत्पाद का मूल्य (Value of the product)** - कृषि उत्पाद का मूल्य महत्वपूर्ण ढंग से विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त को प्रभावित करता है। उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होने पर कृषक वर्ग अधिक उत्पादन करने पर उच्च मूल्य प्राप्त होता है, तो वह निर्धारित विपणन अतिरेक्त में ज्यादा मात्रा विपणन हेतु बाजार में लाने का प्रयास करता है।
- 3. खेत का आकार (Size of the farm)** - यह विपणन योग्य अतिरेक्त को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि अधिकतर मध्यम और बड़े किसानों द्वारा ही विपणन योग्य अतिरेक्त अधिक मात्रा में पूर्ति की जाती है। छोटे व सीमान्त किसान अपने खेत के छोटे आकार के कारण खर्चीली पड़ती है जो उत्पादन बढ़ाने में बाधा उत्पन्न करती है।

भारत में खेत के आकार तथा विपणन अतिरेक्त के विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त आकलनों को तालिका 4.1 दर्शाया गया है। जिसमें धर्म नारायण का आंकलन 1950-51 का पाटनिक का आंकलन 1960-61 तथा अशोक गुलाटी के आंकलन 1971-72 से सम्बन्धित है और काफी सार्थक एवं प्रासंगिक है। तालिका में प्रदर्शित विभिन्न आंकलनों से ज्ञात होता है कि खेत के आकार में वृद्धि के साथ विपणन अतिरेक्त बढ़ता जाता है साथ ही कृषि विकास अर्थात् समय के साथ भी अतिरेक्त बढ़ता जाता है।

तालिका 4.1

कुल कृषि उत्पादन में विपणन योग्य अतिरेक्त का प्रतिशत तथा खेत के आकार में सम्बन्ध

खेत का आकार (एकड़ में)	कुल कृषि उत्पाद में विपणन योग्य अतिरेक्त का प्रतिशत		
	धर्म नारायण का आंकलन	पाटनिक का आंकलन	गुलाटी का आंकलन
0-5	34	23	26
5-10	27	27	45
10-15	23	31	52
15-20	30	36	55
20-25	32	45	60
25-30	40	49	64
30 से अधिक	47	58	78

4. किसानों की नकद की आवश्यकता (Cash requirement of Farmers) - किसानों की आर्थिक

स्थिति भी विपणन अतिरेक्त को प्रभावित करती है। फसल उत्पादन के बाद किसान की बहुत सी नकद देनदारी होती है। जैसे- राजस्व, ऋणों की अदायगी, आवश्यक वस्तुओं का क्रय, कृषि अदायें आदि। मध्यम तथा बड़े किसानों की आवश्यकता अधिक होती है जिस कारण वह बड़ी मात्रा में विपणन अतिरेक्त बाजार में बेचते हैं।

5. उपभोग की आदत (Habits of Consumption) - विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त को निर्धारित करने

वाला अन्य महत्वपूर्ण कारक किसानों की उपभोग की आदत है। जब तक वह समस्त उत्पाद बाजार में बेच देते थे। इसके साथ ही जीवन स्तर में वृद्धि के साथ गैर-कृषि उत्पाद तथा पूंजीगत आरामदायक व विलासिता की वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हुई है। जिसके कारण इनकी खरीदारी हेतु बड़ी मात्रा में नकद पैसों की आवश्यकता होती है जिसे अधिक विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त को बाजार में बेच कर ही पूरा किया जा सकता है।

6. फसल की प्रकृति (Nature of Crop) - फसल मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। खाद्य फसल तथा

व्यापारिक फसल। खाद्य फसलों की विपणन योग्य अतिरेक्त की मात्रा कम होती है जबकि व्यापारिक फसलों का उत्पादन बाजार में बेचने के उद्देश्य से ही किया जाता है। जैसे – गन्ना, जूट, तिलहन, तम्बाकू, कपास, आदि का लगभग सम्पूर्ण उत्पाद विपणन हेतु बाजार में ही लाया जाता है। इसलिए इन फसलों को नकद फसल भी कहा जाता है।

4.3.3 भारत में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त (Marketable Agricultural Surplus in India)

प्राचीनकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कृषि उत्पादन कार्य किसानों द्वारा मुख्य रूप से अपनी और अपने परिवार के पेट भरने के लिए किया जाता था। अपनी नकद आवश्यकता पूर्ति के लिए किसान अपने उत्पादन का कुछ भाग बेच देता था, किन्तु कृषि उत्पादन को बाजार में बेचने की यह प्रक्रिया

सन्तोषजनक नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जूट और सूती वस्त्र उद्योग के विकास के कारण तथा बीसवीं शताब्दी में चीनी उद्योग के विकास से कृषि क्षेत्र में व्यापारिक फसलों के महत्व में वृद्धि हुई। इसी दौरान नगरीकरण के विकास के साथ जनसंख्या में वृद्धि की गति में तेजी आयी। जिस कारण उनकी खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति हेतु अधिक उत्पादन के साथ विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त का महत्व बढ़ गया।

स्वतंत्रता के बाद देश में भूमि सुधारों तथा अन्य कृषि विकास योजनाओं के परिणामस्वरूप गाँवों में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न किसानों का एक ऐसा वर्ग बन गया, जिसने कृषि को एक व्यवसाय के रूप में ग्रहण किया। इस व्यवस्था में विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त में तेजी से वृद्धि हुई। भारत में कृषि अतिरेक्त के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। 1950-51 में धर्म नारायण द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार भारत में कुछ कृषि उत्पाद का 33.4 प्रतिशत ही उत्पादकों द्वारा बाजार में बेचा जाता है। निरीक्षण व विपणन निदेशालय के अनुसार औसतन कृषि अतिरेक्त का 25 प्रतिशत भाग ही विपणन हेतु बाजार में आता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसार यह आंकड़ों का 30 प्रतिशत तक है।

खाद्य संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार “कुल खाद्यान्न उत्पादन का 75 प्रतिशत कभी भी बाजार में नहीं बेचा गया। इस प्रकार विपणन अतिरेक्त कुल खाद्यान्न उत्पादन का 25 प्रतिशत तक ही रहा।” एक स्वतंत्र अनुमान के अनुसार भारत में कुल खाद्य उत्पादन में से 1/3 ही विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त के रूप में होता है, जिसमें 32 प्रतिशत धान, 35 प्रतिशत गेहूँ, 25 प्रतिशत ज्वार बाजरा है। लेकिन नकद या व्यापारिक फसलों की स्थिति में यह 90 से 95 तक होता है। भारत में वस्तु विनिमय प्रणाली की उपलब्धता, कम उत्पादन, यातायात के साधनों का अभाव, मध्यस्थों की कपटपूर्ण नीति, किसानों की अशिक्षा, बाजार मूल्य की जानकारी का अभाव आवश्यक सुविधाओं का अभाव तथा उचित विपणन व्यवस्था की कमी के कारण ही विपणन योग्य कृषि अतिरेक्त में कमी रही है।

4.4 कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural Marketing System)

विपणन उत्पादन का एक अभिन्न अंग है क्योंकि किसी भी उत्पादन क्रिया को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादित वस्तु की बिक्री की जाए। इसके बिना उत्पादन कार्य अधूरा ही रहेगा। उचित कृषि विपणन व्यवस्था से किसानों की आय में वृद्धि होती है। जिसके परिणामस्वरूप कृषक उत्पादन बढ़ाने का यथा सम्भव प्रयास करता है। उत्पादन बढ़ने से एक तरफ तो खाद्यान्न समस्या का हल होता है। दूसरी तरफ किसानों की आय व वृद्धि से उनके जीवन स्तर में सुधार आता है जिससे देश के आर्थिक विकास को गति मिलती है। विपणन एक आर्थिक क्रिया है, जिसमें वस्तुओं व सेवाओं का विनिमय (exchange) किया जाता है तथा उनका मूल्य मुद्रा में आंका जाता है। इसका अभिप्राय विनिमय सम्बन्धी क्रियाओं से है जिनके द्वारा वस्तु को उत्पादन केन्द्र से उपभोक्ता तक हस्तान्तरित किया जाता है।

विस्तृत अर्थ में, कृषि विपणन से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से लगाया जाता है, जिनका सम्बन्ध कृषि उत्पादन का किसान के यहाँ से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाने में किया जाता है।

प्रो. अबॉट के अनुसार “कृषि विपणन के अंतर्गत उन समस्त कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा खाद्य पदार्थ एवं कच्चा माल फार्म से उपभोक्ता तक पहुंचता है।”

ए. पी. गुप्ता के शब्दों में “विपणन कार्य से तात्पर्य उन कार्यों क्रियाओं और सेवाओं को करने से हैं जिनके द्वारा मूल उत्पादक तथा अन्तिम उपभोक्ता के मध्य वस्तुओं के लेन-देन का सम्बन्ध स्थापित होता है।”

प्रो कोल्स एवं उल के अनुसार “विपणन कार्यों से तात्पर्य उन प्रमुख विशिष्ट क्रियाओं को करने से हैं, जो विपणन कार्य, वस्तुओं की विपणन प्रक्रिया की प्रमुख आर्थिक क्रिया है।”

कृषि उपज के विपणन में निम्न महत्वपूर्ण क्रियाएं सम्मिलित की जा सकती हैं-

- | | |
|---|---|
| 1. कृषि उपज का एकत्रीकरण | 5. उपज का उत्पाद केन्द्र (खेत) से उपभोग केन्द्र तक परिवहन |
| 2. कृषि उपज का प्रमाणीकरण तथा श्रेणी विभाजन | 6. उपज का थोक व्यापार |
| 3. कृषि उपज का प्रसंस्करण | 7. उपज का फुटकर व्यापार |
| 4. उपज को गोदामों में रखना | 8. उपर्युक्त कार्यों के लिए वित्त व्यवस्था |
| | 9. सभी कार्यों में निहित जोखिम उठाना |

4.4.1 अच्छी विपणन व्यवस्था की विशेषताएं (Characteristics of a good marketing system)

विपणन व्यवस्था उत्पादन क्रिया का महत्वपूर्ण अंग है और किसानों के विकास के साथ देश का आर्थिक विकास भी इस पर निर्भर करता है। इसलिए एक विपणन व्यवस्था में निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक है-

1. मध्यस्थ विक्रेताओं की संख्या कम से कम होनी चाहिए।
2. कृषि उत्पाद को संग्रह करने के लिए भण्डारगृहों (warehouses) का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।
3. विपणन प्रणाली में किसानों के हित के साथ उपभोक्ताओं के हितों की भी सुरक्षा होनी चाहिए।
4. उचित और सस्ती परिवहन व्यवस्था होनी चाहिए ताकि किसान नियमित मण्डियों या शहरी मण्डियों में अपना उत्पाद बेच सकें।
5. किसानों को अपनी उपज को विलम्ब से बेचने की क्षमता अर्जित करनी चाहिए जिससे उचित मूल्य पर वस्तु को बेचने जा सकें।
6. किसानों को बाजार मूल्य के बारे में पूर्ण सूचना प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे आढ़तियों, दलालों तथा बिचौलियों के चक्र में न फसें।
7. विपणन का कार्य ऐसी संस्थाओं एवं एजेन्सियों को सौंप दिया जाना चाहिए जोकि किसानों को उचित मूल्य दिला सके।
8. सरकार को समय-समय पर किसान संगोष्ठीयां, सम्मेलनों, सेमिनारों का आयोजन करना चाहिए जिससे किसान अपनी समस्या सरकार के समक्ष रख सकें।
9. बाजार भाव को स्थानीय समाचार पत्रों में छपवाना चाहिए साथ ही दूरदर्शन केन्द्रों, कृषि समाचार व रेडियों द्वारा भी बाजार भाव का प्रचार व प्रसार करना चाहिए।

4.4.2 कृषि विपणन के उद्देश्य (Objectives of Agricultural Marketing)

कृषि विपणन का मुख्य उद्देश्य तो किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाना है लेकिन इसके साथ ही इससे उपभोक्ताओं सहित देश का आर्थिक विकास भी प्रभावित होता है। कृषि विपणन के मुख्य रूप से निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. **किसानों का विपणन उद्देश्य (Marketing Objectives of Farmers)** - कृषि विपणन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य किसानों को उपज का अधिकाधिक मूल्य दिलाकर उनके लाभ को अधिकतम करना है। क्योंकि किसानों की आय उनकी उत्पादन नीति तथा उत्पादन क्षमता को प्रभावित करती है। अपने उत्पादन का लाभकारी मूल्य प्राप्त करने पर वह अपने उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित होता है। जो देश को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हैं।
2. **उपभोक्ता का विपणन उद्देश्य (Marketing Objectives of the Consumer)** - एक अच्छी विपणन व्यवस्था से उपभोक्ता के हितों की रक्षा ही जा सकती है क्योंकि इससे उन्हें अच्छी किस्म की आवश्यक खाद्यान्न व अन्य वस्तुएं एक उचित मूल्य में मिल जाती है। जिससे उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर लेता है।
3. **सरकार का विपणन उद्देश्य (Marketing Objectives of the Government)** - एक उचित वितरण व्यवस्था के द्वारा जब किसान अपनी उपज का अधिकाधिक मूल्य प्राप्त करते हैं तो वह अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित होते हैं। जिससे देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर होता है। उचित विपणन व्यवस्था के कारण किसानों तथा उपभोक्ताओं को तो लाभ होता ही है साथ ही विपणन क्रिया से सरकार के विपणन उद्देश्य की पूर्ति भी होती है।
4. **मध्यस्थों का विपणन उद्देश्य (Marketing Objectives of Intermediaries)** - मध्यस्थों तथा बिचौलियों की दृष्टि से भी विपणन व्यवस्था के उद्देश्य महत्वपूर्ण हैं। इससे उन्हें उनकी सेवाओं के लिए अधिकतम आय उपलब्ध होती है। कुछ विपणन मध्यस्थ, अल्पकाल में अधिकतम लाभ की इच्छा नहीं रखते, परन्तु वे दीर्घकाल में निरन्तर एक निश्चित लाभ की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं।

4.4.3 आर्थिक विकास में कृषि विपणन का महत्व (Importance of Agricultural Marketing in Economic Development)

किसी भी अल्पविकसित एवं विकासशील देश की अर्थव्यवस्था में कृषि विपणन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक विकास के लिए विपणन व्यवस्था द्वारा ही किसान अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहित होते हैं जो देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के साथ-साथ अन्य उद्योगों के विकास में भी सहायक होती है। आर्थिक विकास में कृषि विपणन की निम्न भूमिका है

1. **आर्थिक विकास के लिए पूँजी (Capital for Economic Development)** - उत्पादन वृद्धि के साथ किसानों के पास विपणन अतिरिक्त बढ़ता है जिसके कारण आर्थिक विकास के लिए आवश्यक पूँजी एवं संसाधन सुलभ होते हैं। यही कारण है कि जापान, जर्मनी, अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में

पहले कृषि का विकास किया गया, फिर उससे प्राप्त आय का उपयोग औद्योगीकरण हेतु किया गया। कृषि उत्पादन की वृद्धि राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी कर आर्थिक विकास को गति प्रदान करती है।

2. **देश में खाद्यान्न पूर्ति में सहायक (Helpful in the Supply of Food Grains in the Country)** - औद्योगीकरण के कारण गाँवों की जनसंख्या नगरों की ओर पलायन करती है इस कारण अच्छी विपणन व्यवस्था के द्वारा ही नगरों में खाद्यान्न की आपूर्ति की जाती है। यदि किसान अपनी उपज बाजार में न बेचे तो शहरों की जनसंख्या का जीवन-निर्वाह संकट में पड़ जाएगा, देश में उचित विपणन व्यवस्था द्वारा ही उचित कीमत पर प्रचुर मात्रा में खाद्यान्नों को जनता तक पहुँचाया जाता है।
3. **उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति में सहायक (Helpful in the Supply of Raw Materials for Industries)** - कृषि से ही उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होता है यदि कृषि विपणन व्यवस्था नहीं होती तो किसानों द्वारा उत्पादित कच्चा माल उद्योगों तक नहीं पहुँच सकता था। सूती वस्त्र, पटसन, जूट, चीनी, वनस्पति तेल आदि उद्योग अपने उत्पाद के लिए कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त करते हैं। उचित विपणन व्यवस्था द्वारा ही उद्योगों को कम कीमत पर उचित मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध होता है।
4. **जीवन-स्तर सुधारने में सहायक (Helpful in Improving the Standard of Living)** - कृषि विपणन व्यवस्था से ना केवल किसान और उपभोक्ता सम्बन्धित है बल्कि बड़ी मात्रा में विपणन व्यवस्था से जुड़े कर्मचारी भी सम्मिलित है। उचित विपणन व्यवस्था के कारण ही इनके जीवन स्तर में सुधार होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप ही देश के आर्थिक विकास में गति मिलती है।
5. **योजनागत विकास में सहायक (Helpful in Plan Development)** - हमारे देश की योजनागत विकास की सफलता कृषि विपणन व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी को कम करने, आवश्यक वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने, बढ़ती कीमतों को रोकने और कृषि उत्पादों के निर्यात से विदेशी मुद्रा आर्जित करने आदि के लिए देश में कृषि वस्तुओं के लिए उपयुक्त एवं कुशल विपणन व्यवस्था का होना आवश्यक होता है।
6. **निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक (Helpful in the Achievement of the Set Goals)** - कृषि उत्पादन के लिए, निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किसानों को आवश्यक कृषि आगतों, कृषि यन्त्रों तथा उपयुक्त तकनीकी की आवश्यकता होती है जिसके लिए उन्हें बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। इसमें धन व्यवस्था, विपणन व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

4.5 भारत में कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural Marketing System in India)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है जिसमें देश की कुल जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या काम करने में लगी हुई है इसलिए देश की जनता के कल्याण व विकास के लिए कृषि का विकास आवश्यक है। कृषि का विकास तभी होगा जब किसान को अपने उत्पाद का सही मूल्य प्राप्त होगा। प्राचीन काल से ही भारत में कृषि जीवन-निर्वाह हेतु की जाती रहीं है परन्तु स्वतंत्रता के बाद तीव्र आर्थिक विकास में कृषि व्यवस्था में अनेक बदलाव आए और हरित क्रान्ति के बाद तो तीव्र कृषि विकास ने कृषि को जीवन-निर्वाह की श्रेणी से निकालकर

व्यावसायिक (commercial) रूप प्रदान कर दिया। किसान लाभ कमार्ने के उद्देश्य से कृषि उत्पादन कार्य करने लगे। इस व्यवस्था के साथ ही कृषि विपणन व्यवस्था में भी समय के साथ अनेक बदलाव आए हैं। भारत में कृषि विपणन की व्यवस्था इस प्रकार है -

1. **गाँवों में महाजन एवं व्यापारी को फसल की बिक्री (Sale of Crops to Moneylenders and Traders in Villages)** - भारत के अधिकांश किसान अपने उत्पादन का बड़ा भाग गाँव में ही साहूकारों, महाजनों तथा व्यापारियों को बेच देते हैं। साहूकार, महाजन तथा व्यापारी, किसानों की ऋणग्रस्तता का लाभ उठाते हुए मनमाने मूल्य पर फसलों को क्रय कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में कमीशन एजेन्ट और व्यापारी बड़ी मात्रा में उत्पादन का एक हिस्सा कमीशन के रूप में वसूल लेते हैं।
2. **गाँव की हाट में बिक्री (Sale in the Village Haat)** - भारत के प्रत्येक गाँव में सप्ताह में एक या दो बार हाट (Market) अर्थात् स्थानीय बाजार लगता है। जहाँ से ग्रामीण निवासी अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदते हैं। छोटे व सीमान्त किसान अपनी फसल का तथा मध्यम किसान अपनी फसल के कुछ भाग को इसी प्रकार के बाजारों में बेचते हैं। शहरी क्षेत्र के थोक व्यापारी इन हाट से किसानों का उत्पाद खरीद कर उन्हें उँची कीमतों पर शहरों की मण्डियों में बेच देते हैं।
3. **मण्डियों में बिक्री (Sale in Mandis)** - कई गाँवों, कस्बे अथवा शहरों में एक मण्डी होती है। इन मण्डियों में थोक व्यापारी होते हैं, जिन्हें **आढतिया** कहते हैं। दलालों की सहायता से किसान अपनी उत्पादित मात्र आढतियों को बेचते हैं। अक्सर दलाल आढतियों से मिले रहते हैं और किसानों को उपज का ठीक मूल्य नहीं मिल पाता। यातायात सम्बन्धी कठिनाइयों, मण्डियों के दलालों और आढतियों के कपटपूर्ण व्यवहार आदि से आंशकित होकर छोटे किसान मण्डी से अपना माल बेचने में संकोच करते हैं।
4. **मेलों में बिक्री (Sale in Fairs)** - भारत देश संसार में मेलों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ लगभग 1700 से अधिक कृषि पदार्थों एवं जानवरों के मेले लगते हैं, जिनमें लगभग 40 प्रतिशत मेले कृषि वस्तुओं के होते हैं जो मुख्य रूप से बिहार, उड़ीसा में पाए जाते हैं। मेला स्थानों के आसपास किसान इन्हें मेलों में अपनी फसल बेच देते हैं।
5. **सरकारी खरीद (Government Procurement)** - पिछले कुछ वर्षों से सरकार द्वारा भी किसानों की उपज को क्रय किया जा रहा है। इसके लिए सरकार ने स्थान-स्थान पर कुछ क्रय केन्द्र स्थापित किए हैं जहाँ पर कृषक अपनी उत्पादित वस्तुएँ लाकर निर्धारित मूल्य पर बेच सकते हैं। सरकार द्वारा यह खरीद स्वयं अपने कर्मचारियों के माध्यम से, सहकारी समितियों के माध्यम से अथवा भारतीय खाद्य निगम के माध्यम से करती है।
6. **सहकारी विपणन (Cooperative Marketing)** - विपणन प्रणाली की कार्य कुशलता का स्तर उँचा करने और किसानों को मध्यस्थों के कपटपूर्ण व्यवहार से बचाकर उन्हें अपनी फसल का उचित मूल्य दिलाने के लिए सहकारी विपणन पर जोर दिया गया है। सहकारी विपणन समितियाँ और बहुउद्देशीय समितियों के सदस्यों के थोड़े-थोड़े विपणन अतिरेक्त को एकत्रित कर मण्डियों में थोक व्यापारियों के साथ प्रतियोगिता करते हुए बेचती हैं। इस प्रकार कृषकों को अपने उपज का उचित मूल्य मिल जाता है।

4.5.1 भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था के दोष (Defects of Indian Agricultural Marketing System)

यद्यपि भारत एक कृषि प्रधान देश है तब भी यह कृषि विपणन व्यवस्था की दशा सन्तोषजनक नहीं है। कृषक बहुत निर्धन एवं अशिक्षित हैं। उसे अपनी उपज क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है, परिणामस्वरूप उसे अपने कृषि उत्पादन का उचित मूल्य नहीं मिल पाता, विपणन व्यवस्था के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं।

1. मध्यस्थों की लंबी श्रृंखला (Long Chain of Intermediaries) - भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था

में बिचौलियों की एक लंबी श्रृंखला है। जिस कारण प्रायः किसानों को उपभोक्ताओं द्वारा दिये गये मूल्य का लगभग 50 प्रतिशत भाग ही मिल पाता है। प्रो. डी. एस. सिन्धु के एक शोध से पता चलता है कि किसानों की चावल की कीमत का मात्र 53 प्रतिशत ही प्राप्त हो पाता है। जिसमें शेष 31 प्रतिशत बिचौलियों का हिस्सा है तथा 16 प्रतिशत विपणन लागत है। सब्जियों में तो किसानों का हिस्सा मात्र 39 प्रतिशत और फलों में 34 प्रतिशत है। कृषि उपज की विपणन व्यवस्था में गाँव का साहूकार, महाजन, घूमता-फिरता व्यापारी, कच्चा आढतिया, पक्का आढतिया, थोक व्यापारी मिल वाला, दलाल, निर्यातकर्ता, फुटकर व्यापारी आदि शामिल हैं। इतने सारे मध्यस्थ विपणन व्यवस्था के लिए आवश्यक नहीं हैं।

2. दोषपूर्ण संग्रह व्यवस्था (Defective Collection System) - ग्रामीण कृषकों के पास अपनी उपजों

को संग्रह करने के लिए उचित एवं वैज्ञानिक संग्रहण व्यवस्था का अभाव है। ग्रामीण कृषक अपनी उपज को खत्तियों, कच्चे कोठों, बोरों या मिट्टी के बड़े-बड़े बर्तनों में रखते हैं जिससे उनके सड़ने-गलने और चूहों तथा कीड़े-मकोड़ों द्वारा बर्बाद होने की आशंका रहती है। खाद्यान्न जाँच समिति के अनुसार उपज की इस तरह होने वाली हानि 1.5 प्रतिशत थी। संग्रहण की अपर्याप्त और अवैज्ञानिक व्यवस्था के कारण किसानों का विवश होकर शीघ्र ही वस्तुएँ बेचनी पड़ती है। जिससे उन्हें कम मूल्य मिलता है।

3. अनियमित मण्डियों में प्रचलित धोखेबाजी (Frauds Prevalent in Unregulated Markets)

- हमारे देश की सभी अनियंत्रित मण्डियों की संख्या बहुत अधिक है। मण्डियों में निम्नालिखित धोखेबाजियाँ प्रचलित हैं जिनका किसान को शिकार बनना पड़ता है। मण्डियों में कृषि उपजों को तौलने या मापने के प्रमाणित बॉट और माप नहीं होते। कृषि उत्पादन का वह भाग जो नमूने के तौर पर लिया जाता है वह कृषकों को वापस नहीं किया जाता है। दलाल कपड़े के नीचे गुप्त मूल्य निश्चित करते हैं। जिसमें कृषक (वास्तविक विक्रेता) निश्चित किए गए मूल्य से बिलकुल अनभिज्ञ रहता है। दलाल कृषकों की अपेक्षा आढतिया का अधिक पक्ष लेता है। तौल अथवा मूल्य सम्बन्धी विवाद होने पर कृषक के हित की कोई भी रक्षा नहीं करता और उसे खरीदार की बात मानने के लिए विवश होना पड़ता है। प्रायः मण्डियों में कृषकों से बहुत सी कटौतियाँ जैसे – रामलीला, पाठशाला, गौशाला, प्याऊ, अनाथालय, विधवाश्रम आदि उनको भुगतान देना पड़ता है।

4. **श्रेणी विभाजन का अभाव (Lack of Category Division)** - भारत में ग्रामीण किसानों की अज्ञानता और कृषि उत्पादन कम होने के कारण उपजों के श्रेणी विभाजन पर ध्यान नहीं दिया जाता है समस्त उपज एक ही ढेरी के रूप में बेची जाती है। जिसे **दडा प्रणाली (Dara System)** भी कहते हैं। इस प्रकार कृषकों की उत्तम उपज का भी उन्हें कम मूल्य ही मिलता है।
5. **विपणन हेतु वित्त का अभाव (Lack of Finance for Marketing)** - विपणन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। सहकारी समितियों से उपलब्ध वित्त का लाभ प्रायः बड़े किसानों को ही हो सकता है। छोटी किसान अभी भी वित्त के लिए साहूकार या महाजन तथा व्यापारियों पर निर्भर रहता है। साहूकार तथा महाजन किसान को मण्डी में अपना माल बेचने के लिए हतोत्साहित करते हैं और स्वयं ही उसे खरीद लेते हैं। जिससे इन कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता।
6. **अल्प विकास परिवहन व्यवस्था (Underdeveloped Transport System)** - भारतीय गाँवों की मण्डियों को शहर से जोड़ने के लिए परिवहन सुविधाएँ पर्याप्त नहीं हैं। बहुत सारे गाँवों में से थोड़े से गाँव ही रेल और पक्की सड़कों द्वारा मण्डियों से जुड़े हैं। कच्ची सड़कों पर मोटर परिवहन प्रायः सम्भव नहीं है। बरसात में पुल-पुलियों के अभाव में यातायात बन्द हो जाता है और उन पर केवल बैलगाड़ियाँ ही आ जा सकती हैं। परिवहन साधनों के पिछड़ेपन के फलस्वरूप विपणन लागतों में अनुमानित 20 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में किसान गाँवों में ही फसल बेचने की बाध्य होते हैं।
7. **मूल्य सम्बन्धी सूचना का अभाव (Lack of Price Information)** - ग्रामीण किसानों के लिए दूर-दराज की विभिन्न मण्डियों में समय-समय पर प्रचलित मूल्यों के विषय में सही सूचना प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। अधिकांश कृषक तो मण्डी के साथ कोई भी सम्पर्क नहीं रख पाते। इस कारण व्यापारी उन्हें जो मूल्य देता है, उसे वे ले लेते हैं।
8. **विपरीत परिस्थितियों में विपणन (Marketing in Adversity)** - भारत में जमींदारी उन्मूलन से पूर्व सामान्यतः सभी कृषकों को लगान का भुगतान करने के लिए उपज का एक भाग फसल काटने के तुरन्त बाद ही बेचना पड़ता था। जमींदारी उन्मूलन के बाद कृषि सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप एक सम्पन्न किसान वर्ग पैदा हो गया है। यह वर्ग भूमि का स्वामी होता है।
9. **उत्पादकों में संगठन का अभाव (Lack of Organization among Producers)** - भारत में विपणन प्रणाली का सबसे बड़ा दोष उत्पादकों में अच्छे सामूहिक संगठन का अभाव है। कुछ व्यापारिक फसलों जैसे - कपास, तिलहन, पटसन और गन्ने के खरीददार बहुत अच्छी तरह संगठित रहते हैं जबकि इनके वास्तविक उत्पादक छोटे-छोटे कृषक हैं जोकि बहुत बड़ी संख्या में एक बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं। ऐसे स्थान पर जहाँ उत्पादक असंगठित हैं तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने वाला और उनके हितों की रक्षा करने वाला कोई नहीं होता और वहीं क्रेता संगठित रूप से हों और राज्य तटस्थ हो तो वहाँ के उत्पादनकर्ताओं का बुरी तरह शोषण होता है और हमारे देश में ऐसी ही स्थिति बनी हुई है।

10. अन्य (Other) - देश कृषि विपणन व्यवस्था में उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त कुछ अन्य दोष भी हैं जो विपणन व्यवस्था के विकास के मार्ग में अवरोधात्मक हैं। जैसे - कम उपज और निम्न कोटि की उपज, किसानों की ऋणग्रस्तता और निर्धनता, किसानों की अज्ञानता और निरक्षरता हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान कृषि उपज की विपणन व्यवस्था को भूमि संबंधों से स्वतन्त्र रूप में देख सकना सम्भव नहीं है। बाजारों के नियन्त्रण, आकाशवाणी द्वारा भावों के प्रसारण, यातायात व्यवस्था में सुधार आदि से पूँजीवादी ढंग से खेती करने वाले किसानों को तो लाभ हुआ है और वे अपने विपणन आधिक्य का उचित मूल्य पाने में सफल हुए हैं किन्तु इन सभी सुविधाओं का लाभ लघु एवं सीमान्त कृषकों को बहुत कम मिल पाया है।

4.5.2 दोषपूर्ण विपणन के परिणाम (Consequences of Faulty Marketing)

कृषि उत्पादन का विपणन बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन विपणन के दोषपूर्ण तरीकों का परिणाम भी अत्यधिक दुखदायी है जोकि कृषि विकास एवं कृषकों के उत्थान के लिए एक अवरोध है। इसके कुपरिणामों की व्याख्या निम्नालिखित प्रकार से की जा सकती है।

- 1. अल्प लाभ (Small Profit) -** कृषि उपजों की बिक्री से कम मूल्य प्राप्त होना, नाप-तौल में गड़बड़ी होना या निम्न कोटि की उपजों का मिश्रण और विभिन्न प्रकार की अनुचित कटौतियाँ आदि कृषकों को मिलने वाले लाभों में अत्यधिक कमी कर देते हैं। आय की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि किसानों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती हैं और अन्ततः उनकी आर्थिक दशा कमजोर हो जाती है।
- 2. उत्पादन के प्रति अरूचि (Aversion to Production) -** जब कृषकों को उनके श्रम एवं विनियोग का उचित प्रतिफल नहीं मिल पाता है तब वे निराश हो जाते हैं और अधिक उत्पादन करने के प्रति उनके अन्दर कोई उत्साह नहीं रह जाता है। इस प्रकार एक दोषपूर्ण विपणन व्यवस्था कृषकों के अधिक उत्पादन के मार्ग में अवरोध बन जाती है।
- 3. देश के लिए उचित न होना (Not Fair to the Country) -** कृषि पदार्थों के बिक्री सम्बन्धी दोषों के कारण आर्थिक नियोजन के कार्य में बाधा पहुँचती है। कृषि देश की आय में एक बहुत बड़ी सक्रिय भूमिका निभाती है। जोकि पूँजी निर्माण की मात्रा को भी कम कर देती है तथा कृषि पदार्थों एवं इससे सम्बन्धित निर्यात की वस्तुओं के कमी आती है। जिसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा की मात्रा भी कमी हो जाती है और भुगतान असन्तुलन में आ जाता है जोकि भारत देश के लिए वांछनीय नहीं है।
- 4. बिक्री-योग्य बचत पर कुप्रभाव (Adverse Effect on Salable Savings) -** इस प्रकार की दोषपूर्ण विपणन पद्धति के कारण कृषकों को बाजार में जो मूल्य प्राप्त होते हैं, वे उनकी आशाओं के अनुकूल नहीं होते अर्थात् अलाभकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त कृषक विभिन्न बाधाओं एवं अनाचारों के कारण अपनी बचत को अपने गाँवों में ही बेचना उचित समझता है यद्यपि वहाँ भी कठिनाइयों का ही सामना करना पड़ता है। इन सबके परिणामस्वरूप बिक्री योग्य बचत में कमी करना होता है जोकि उचित नहीं है।

4.5.3 कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार हेतु किए गए सरकारी उपाय (Government measures taken to improve Agricultural Marketing System)

कृषि विपणन व्यवस्था को सुधारने के लक्ष्य से नियोजनकाल में सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जिसे सरकार ने किसानों को मध्यस्थों के शोषण से मुक्ति दिलाने तथा किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने के विचार से आरम्भ किया। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्र को शहरों से जोड़ा जा सके। कृषि विपणन व्यवस्था के दोषों को दूर करने के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक आयोग एवं समितियों का गठन किया गया। शाही कृषि आयोग (1928), केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति (1931), प्रान्तीय आर्थिक सम्मेलन (1934), राष्ट्रीय नियोजन समिति (1946), कांग्रेस भूमि सुधार समिति (1949) और अखिल भारतीय विपणन अधिकारी समिति आदि के सर्वेक्षणों के आधार पर कृषि वस्तुओं के विपणन में सुधार लाने के लिए सरकार ने निम्न उपाय किये-

1. नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना (Establishment of Controlled Markets) - मण्डियों में

दलालों व आढतियों को कपटपूर्ण नीति से किसानों को बचाने के लिए नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना की गई। इन मण्डियों का संगठन एक संविधान अनुसार होता है जिसके लिए एक समिति का गठन किया जाता है। जिसमें राज्य सरकार, स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधि, आढति, दलाल और किसानों को सम्मिलित किया जाता है। जिससे सभी के हितों का प्रतिनिधित्व होता है। ये समितियाँ मण्डियों में श्रेणी विभाजन, खुली नीलामी पद्धति तथा प्रमाणिक कार्य के प्रयोग को प्रोत्साहन देती है तथा कपड़े के नीचे के भाव निर्धारण, अनुचित कटौतियों पर प्रतिबन्ध लगाती है।

नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना की दिशा में पहला प्रयास 1897 में बरार में किया गया था। इस प्रयोग की सफलता के बावजूद भी नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना में सरकार ने विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। इसलिए देश में नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना की गति धीमी रही। 1950- 51 में नियन्त्रित मण्डियों की संख्या 286 थी जो बढ़कर 31 मार्च 2005 तक 7521 तक पहुँच चुकी है।

2. श्रेणी विभाजन एवं मानकीकरण (Category Segmentation and Standardization) - कृषि

विपणन व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से श्रेणी विभाजन तथा मानकीकरण के द्वारा नमूना दिखाकर माल की बिक्री की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिए सरकार ने 1937 में कृषि उत्पादन (श्रेणी विभाजन एवं अंकन) कानून पास किया जिसके द्वारा विपणन तथा निरीक्षण निदेशालय को अधिकार दिया गया कि वह स्वीकृत मानको के अनुसार श्रेणी विभाजन तथा अंकन करने की अनुमति किसी भी संस्था को दे सकता है। निदेशालय ने अब तक 182 कृषि वस्तुओं के लिए मानक निर्धारित किये हैं। निर्यात के लिए कृषि वस्तुओं का श्रेणी विभाजन अनिवार्य है। कृषि विपणन विभाग द्वारा ही श्रेणी विभाजित वस्तुओं पर AGMARK की मोहर लगाई जाती है। देश में केन्द्रीय श्रेणी नियंत्रण प्रयोगशाला नागपुर में है। इसके अतिरिक्त 22 क्षेत्रीय श्रेणी नियंत्रण प्रयोगशालाएँ हैं।

3. मानक बाट और नाप-तौल की अनिवार्यता (Standard Weights and Measures Requirements) - अनियन्त्रित मण्डियों तथा ग्रामीण हाट में किसानों के साथ कपट करने के लक्ष्य से

मानक बाटों और नाप-तौल का प्रयोग नहीं किया जाता है। सरकार ने 1939 में मानक बाट तथा नाप तौल अधिनियम पास कर उनका प्रचार किया है। भार और माप में **मीट्रिक प्रणाली** को भारतीय संसद द्वारा दिसंबर 1956 में मानकों के साथ अपनाया गया था। बाट और माप अधिनियम, जो 1 अक्टूबर 1958 से प्रभावी हुआ। 1 अप्रैल 1962 से मीट्रिक बाटों का प्रयोग भी अनिवार्य कर दिया गया। अब किसान भी इन बाटों को समझने लगे हैं और उनके साथ कपट सम्भव नहीं है।

4. फसल संग्रह हेतु गोदामों का निर्माण (Construction of Godowns for Collection of Crops) - विपणन व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से गोदामों के निर्माण का बहुत महत्त्व है। इससे किसानों की कृषि उपज को रोक कर बेचने की सामर्थ्य बढ़ जाती है। किसान नकदी की आवश्यकता होने पर भी उपज बेचने के लिए विवश नहीं होते क्योंकि उन्हें प्रमाणित गोदामों से प्राप्त रसीदों की प्रतिभूति पर सहकारी समितियों और वाणिज्यिक बैंकों से ऋण प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए **अखिल भारतीय खाद्य सर्वेक्षण समिति (1954)** ने राष्ट्रीय स्तर तथा ग्रामीण स्तर पर गोदामों के निर्माण की सिफारिश की। इन सुझावों के आधार पर सरकार ने 1957 में **केन्द्रीय गोदाम निगम (Central Warehouse Corporation)** की स्थापना की और कई राज्यों में राज्य गोदाम निगमों की स्थापना की गई। इसके अलावा **भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India)** की स्थापना हुई। मार्च 2001 से सरकार ग्रामीण गोदामों के निर्माण की एक केन्द्रीय क्षेत्र योजना को कार्यान्वित कर रही है। इस योजना के अधीन 31 मई 2006 तक 11,583 भण्डारण परियोजनाओं को स्वीकृत दी जा चुकी है। जिनकी क्षमता 166.42 लाख टन है।

5. विशेष बोर्डों की स्थापना (Establishment of Special Boards) - सरकार ने समय समय पर कॉफी, चाय, तम्बाकू, रबड़, गर्म मसाले, नारियल, तिलहन तथा वनस्पति तेल आदि के बारे में विशिष्ट वस्तुओं के बोर्डों की स्थापना की। भारत सरकार ने कुछ विशेष वस्तुओं जैसे - चावल, पटसन, दालें, मोटे अनाज, रूई, तम्बाकू, तिलहन, सुपारी, गन्ना आदि के लिए बहुत सी विकास परिषदें स्थापित की हैं। सरकार ने कई निर्यात प्रोन्नति परिषदों की भी स्थापना की है।

6. कृषि उपज के मूल्यों के विषय में किसानों को सूचना देने की व्यवस्था (System of informing Farmers about the Prices of Agricultural Produce) - कृषि उपज की विपणन व्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक है कि मण्डियों में प्रचलित मूल्यों के अलावा उपज की मात्रा जो दिन विशेष में मण्डी में बिकने के लिए आती है उससे सम्बन्धित सूचना रेडियो और समाचार पत्रों द्वारा नियमित रूप से किसानों को मिलनी चाहिए। किसानों के हित में टी.वी. के प्रसारण में मुख्य वस्तुओं के दैनिक मूल्यों, मात्रा तथा बाजार गतिविधियों से सम्बन्धित सूचना दी जाती है।

7. सरकारी खरीद तथा समर्थन कीमतों का निर्धारण (Government Procurement and Fixation of Support Prices) - यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसानों को अपने उत्पादन की सही कीमत मिले इसले लिए सरकार समय-समय पर विभिन्न कृषि वस्तुओं के लिए न्यूनतम समर्थन कीमतों तथा वसूली कीमतों की घोषणा करती रहती है। इन कीमतों का निर्धारण कृषि लागत और कीमत

समिति की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है। भारतीय खाद्य निगम इन कीमतों पर किसानों से उनका उत्पादन की उचित कीमत प्राप्त होती है।

8. कृषि विपणन का राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Agricultural Marketing) - कृषि

विपणन के राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना 1988 में की गई। इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्य व लक्ष्य - शिक्षण अनुसंधान व परामर्श के कार्यक्रमों द्वारा देश में कृषि हेतु विपणन के ढाँचे का विकास करना। विभिन्न उद्यमों व संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना और उन्हें उसके अनुसार प्रशिक्षण देना। कृषि विपणन क्षेत्र में बेहतर प्रबन्धन तकनीकों हेतु अनुसंधान करना। निवेश परियोजनाओं को तैयार करने के लिए तथा समस्याओं के निदान हेतु परामर्श सेवाएं उपलब्ध करना। विद्यमान सुविधाओं के सम्पूरक (complement) के रूप में कृषि विपणन के लिए शैक्षणिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

9. फल और सब्जी विपणन (Fruit and Vegetable Marketing) - भारत में कृषि विपणन सुधार के

अन्तर्गत ज्यादा ध्यान खाद्यन्नों पर ही दिया गया है जबकि फल और सब्जी बाजार में अनेक मध्यस्थ कार्य कर रहे हैं जिससे उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत और किसानों को मिलने वाली कीमतों में भारी अन्तर है। 1988 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 5 लाख से अधिक जनसंख्या वाले 48 शहरों में 102 फल और सब्जी बाजार थे जिनमें केवल 54 बाजार ही नियमित थे। फलों के 65 थोक बाजार और सब्जियों के 81 थोक बाजार थे। औसतन 6.96 लाख लोगों के लिए फल व सब्जी का एक थोक बाजार है।

4.6 सहकारी विपणन व्यवस्था (Cooperative Marketing System)

भारत में सहकारिता का विधिवत् प्रारम्भ सन् 1904 में हुआ था। जब सहकारी साख समितियों की स्थापना की गई। 1912 में सहकारी समिति अधिनियम पारित किया गया। 1913 में पहली 'सहकारी विपणन समिति' का गठन 'कुम्नकोनम' नामक स्थान में किया गया। उसके बाद बम्बई प्रान्त में हुबली तथा गडक स्थानों पर दो विपणन समितियों का गठन किया गया। 1920-21 में इन समितियों की संख्या 31 थी। 1954 में बहुउद्देशीय समितियों की स्थापना हुई जोकि किसानों को साख प्रदान करने के साथ उनके उत्पादन का विपणन भी करती थी।

सहकारी विपणन से आशय उत्पादाकों के हितों की दृष्टि से उत्पादन को संगठित होकर बेचने से है। अर्थात् सहकारी विपणन बाजार का एक ऐसा स्वरूप है, जिसमें उत्पादक अपने उत्पादन के विक्रय सम्बन्धी हितों की पूर्ति के लिए सामूहिक स्वरूप से संगठित होकर विपणन क्रियाएं सम्पन्न करते हैं।

सर फिलिप्स एवं डंकन के अनुसार "वे संगठन जो सहकारिता के आधार पर किसानों के समूहों द्वारा अपनी वस्तुओं को बेचने और सामान तथा अन्य वस्तुएं खरीदने के लिए स्थापित हुए हैं। सहकारी विपणन संघ कहलाते हैं।"

के. आर. कुलकर्णी के अनुसार "उत्पादकों का सहकारी संगठन उत्पादन के छोटे आकार के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए आत्म सहायता का एक प्रयास है।"

अंतरराष्ट्रीय खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार “सहकारी विपणन एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत किसानों या उत्पादकों का वर्ग अपनी वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने सम्बन्धी कुछ अथवा सभी क्रियाओं या कार्यों को पूर्व करने के उद्देश्य से संगठित हो जाता है।”

सर ओ. बी. जेसनेस के शब्दों में “सहकारी विपणन का अर्थ पारस्परिक लाभ प्राप्त करने व विपणन समस्याओं को हल करने के लिए मिलकर कार्य करना है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सहकारी विपणन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. सहकारी विपणन संगठन स्वेच्छा से विपणन सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं।
2. सहकारी विपणन व्यवस्था पारस्परिक लाभ कमाने के उद्देश्य से बनाई जाती है।
3. सहकारी विपणन व्यवस्था में सदस्य परस्पर मिलकर अपने सदस्यों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाते हैं।
4. सहकारी विपणन व्यवस्था, एक प्रकार की व्यापारिक संस्थाएँ होती हैं।

4.6.1 सहकारी विपणन संस्थाओं के उद्देश्य (Objectives of Co-operative Marketing Institutions)

1. अपने सदस्यों को उनकी वस्तु का उचित प्रतिफल दिलाना।
2. संग्रह की सुविधा प्रदान करना।
3. आवश्यकता के समय वित्तीय ऋण देना।
4. बाजार सम्बन्धी सूचनाओं की जानकारी देना।
5. मूल्यों में स्थायित्व लाना।
6. अपने सदस्यों को कच्चा माल, बीज, खाद आदि उपलब्ध कराना।

4.6.2 सहकारी विपणन व्यवस्था की संरचना (Structure of Co-operative Marketing System)

भारत में सहकारी विपणन समितियों का ढाँचा सभी राज्यों में एक समान नहीं है। अधिकांश राज्यों में सहकारी विपणन का ढाँचा द्वि-स्तरीय है, किन्तु कुछ राज्यों में त्रि-स्तरीय। भारत में सहकारी विपणन का सामान्य ढाँचा इस प्रकार है।

1. प्राथमिक कृषि विपणन समितियाँ (Primary Agricultural Marketing Societies) - गाँवों के स्तर पर कृषि विपणन का कार्य इन समितियों द्वारा किया जाता है। यह समितियाँ दो प्रकार की होती हैं-

(क) सामान्य सहकारी विपणन समितियाँ (General Co-operative Marketing Societies)

- सामान्य सहकारी विपणन समितियाँ वे हैं, जिनका कार्य-क्षेत्र सामान्यतः पूरी तहसील होता और वे सभी प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करती हैं।

(ख) विशिष्ट वस्तु सहकारी समितियाँ (Specialty Commodities Co-operative Societies) - विशिष्ट वस्तु सहकारी समितियाँ वे हैं जो किसी विशिष्ट वस्तु का व्यापार करती हैं।

जैसे- उत्तर प्रदेश या बिहार की गन्ना समितियाँ, उत्तर प्रदेश की घी समितियाँ तथा गुजरात की दुग्ध समिति इसके अच्छे उदाहरण हैं।

2. **जिला क्षेत्रीय विपणन समितियाँ (District Regional Marketing Committees)** - प्राथमिक समितियों के ऊपर जिला स्तर पर केन्द्रीय जिला विपणन संघ होता है। इन संघों के सदस्य व्यक्ति और प्राथमिक समितियाँ दोनों ही हो सकते हैं। ये समितियाँ स्वतन्त्र रूप से कृषि वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं और प्राथमिक समितियों को ऋण तथा अन्य प्रकार की सहायता भी देते हैं।
3. **राज्य सहकारी विपणन संघ (State Co-operative Marketing Federation)** - इन समितियों का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य होता है। इसका कार्य क्रय-विक्रय करना तथा केन्द्रीय विपणन संघों तथा प्राथमिक विपणन समितियों के ऋण प्रदान करना है। 29 राज्य सहकारी विपणन संघ विपणन में किसानों की सहायता कर रहा है।
4. **भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन महासंघ (National Agricultural Cooperative Marketing Federation of India)** - यह राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी विपणन की शीर्ष संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि एवं अन्य वस्तुओं में अपने सदस्यों के विपणन, व्यापारिक कार्य-कलापों में समन्वय लाना और प्रोत्साहित करना, अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तर्राज्यीय कृषि व्यापार को बढ़ावा देना तथा सदस्यों की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

4.6.3 भारत में सहकारी विपणन व्यवस्था की प्रगति (Progress of Cooperative Marketing System in India)

भारत में 1912 के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत सहकारी विपणन समितियों का गठन प्रारम्भ हुआ। भारत में सर्वप्रथम 1913 में **कुम्बकोनम** नामक स्थान पर सहकारी विपणन समिति की स्थापना की गई। तत्पश्चात् बम्बई प्रान्त में दो सहकारी विपणन समितियों की स्थापना की गई। द्वितीय महायुद्ध में इन समितियों की स्थापना और विकास को काफी प्रोत्साहन मिला, जब सरकार ने इन्हें नियन्त्रित एवं दुर्लभ वस्तुओं के वितरण का कार्य सौंपा। तत्पश्चात् इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती चली गई। भारत में ये समितियाँ चार स्तर पर गठित की गई हैं।

वर्तमान समय में सहकारी विपणन तन्त्र में 6000 से अधिक विपणन समितियों कार्यरत हैं। जिला स्तर पर 172 जिला क्षेत्रीय विपणन समितियाँ, राज्य स्तर पर 29 राज्य सहकारी संघ तथा अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन महासंघ (NAFED) कार्यरत हैं। सहकारी विपणन समितियों ने 1950-51 में 47 करोड़ रूपए की कृषि उपज का क्रय-विक्रय किया था जो वर्ष 1998-99 में बढ़कर 12008 करोड़ रूपए हो गया। सहकारी विपणन द्वारा विभिन्न वर्षों में किए गए क्रय-विक्रय का विवरण तालिका 4.2 में दी गई है।

तालिका 4.2

सहकारी विपणन समितियों द्वारा किये गए कृषि माल का क्रय-विक्रय

वर्ष	कृषि माल का क्रय-विक्रय (करोड़ रूपए में)
1950-51	47
1960-61	175

1970-71	650
1980-81	1900
1986-87	3400
1995-96	11500
1998-99	12008

सहकारी विपणन के अतिरिक्त सहकारी विधायन (प्रसंस्करण) भी काफी प्रगति कर रहा है। आज देश में लगभग 2500 कृषि सहकारी प्रसंस्करण समितियां कार्य कर रही हैं। चीनी उद्योग में सहकारी समितियों की बड़ी हिस्सेदारी है और चीनी के राष्ट्रीय उत्पादन में 58 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र से आता है। देश में लगभग 220 सहकारी चीनी मिलें हैं।

सहकारी संग्रहण क्षमता की स्थापना हेतु सातवीं पंचवर्षीय योजना में 20 लाख टन अतिरिक्त क्षमता कायम करने का लक्ष्य रखा गया। जबकि पहले तीन वर्षों में ही 24 लाख टन की अतिरिक्त क्षमता विकसित की गई। 2000 के अन्त तक राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा 137.4 लाख टन की संग्रहण क्षमता थी जो कुल संग्रह क्षमता का 19.6 प्रतिशत थी। गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन समितियों का कुल बिक्री में 80 प्रतिशत तक हिस्सा है।

4.6.4 सहकारी विपणन व्यवस्था के लाभ (Advantages of Co-operative Marketing System)

विश्व के पश्चिमी देशों में सहकारी विपणन की व्यवस्था को अत्यन्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, डेनमार्क के विश्व डेयरी उत्पादों के पीछे सहकारी विपणन व्यवस्था ही है। सहकारी विपणन समितियां किसानों से उचित मूल्य पर उनकी उपज को खरीद कर उन्हें सहकारी उपभोक्ता भण्डारों द्वारा जनता के बीच वितरित करती हैं।

सहकारी नियोजन समिति (1959) के अनुसार “सहकारी विपणन कृषक की स्थिति को विक्रेता के रूप में सुदृढ़ बनाता है। उसकी उपज के नियमित रूप से बिकने का विश्वास स्थापित करता है और उसको अच्छे मूल्य पर बिकने के योग्य बनाता है। यही व्यवस्था कृषकों को यह भी सिखाती है कि कृषि एक प्रकार का व्यवसाय है।”

सहकारी विपणन व्यवस्था के लाभों को हम मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांट सकते हैं-

- 1. किसानों को लाभ (Benefits to Farmers)** - सहकारी विपणन का सबसे पहला लाभ यह है कि किसान और उपभोक्ता के बीच मध्यस्थों की श्रृंखला का अन्त हो जाता है। समिति किसानों को श्रेणीकरण व प्रमापीकरण के लिए प्रोत्साहित करती है। किसानों के लिए भण्डार गृहों तथा गोदामों की व्यवस्था करती है। समितियां किसानों को वित्तीय सुविधाएं प्रदान कर उसे साहूकार के चंगुल से मुक्त कराती हैं और उनकी फसल का उचित मूल्य दिलवाती हैं। समितियां उत्पादन की पूर्ति की मात्रा को नियन्त्रित कर कीमतों को किसानों के हित में करती हैं। समितियां किसानों को संगठित कर उनकी सौदा करने की क्षमता को बढ़ावा देती हैं। समितियां विज्ञापन व प्रचार द्वारा उपज की माँग में वृद्धि करती हैं। समितियां किसानों को बाजार की कपटपूर्ण नीतियों और बुराइयों से बचाती हैं।

2. **उपभोक्ता को लाभ (Benefit to the Consumer)** - किसानों के साथ-साथ इन समितियों द्वारा उचित मूल्य पर वस्तुओं की पूर्ति सुनिश्चित कर उपभोक्ता के हितों की भी रक्षा की जाती है। ये समितियां माल की पूर्ति निरन्तर बनाए रखती है। जिससे वस्तुओं के बाजार मूल्य में अधिक उतार-चढ़ाव नहीं आते और उपभोक्ताओं को उचित कीमतों पर वस्तुएं प्राप्त होती रहती है।
3. **सामाजिक लाभ (Social Benefits)** - मध्यस्थों के अंत द्वारा उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों ही लाभान्वित होते हैं और सहकारी समितियां किसानों की आय में वृद्धि कर राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। सहकारी विपणन समितियों के सदस्य अपनी आर्थिक और विपणन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते हैं एवं एक दूसरे के निकट आते हैं और सभी के हितों की रक्षा करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। जिससे सहकारिता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

4.6.5 भारत में सहकारी विपणन व्यवस्था की धीमी प्रगति के कारण (Reasons for Slow Progress of Cooperative Marketing System in India)

इसमें कोई दो मत नहीं है कि भारत में सहकारी विपणन की प्रगति की गति काफी धीमी रही है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

1. **वित्तीय साधनों का अभाव (Lack of Financial Means)** - कृषि उपज की निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा के कारण इन समितियों को पर्याप्त मात्रा में धन की आवश्यकता होती है किन्तु इन समितियों के पास पर्याप्त धन नहीं है इसलिए समिति को अपने कार्य का संचालन करने में परेशानी होती है।
2. **कर्मचारियों में शिक्षा और प्रशिक्षण का अभाव (Lack of Education and Training among Employees)** - अधिकांश समितियों के कर्मचारी अशिक्षित हैं और उनमें प्रशिक्षण का अभाव है। फलतः समिति के कार्य को कुशलता एवं मितव्ययिता के साथ चलाने में कठिनाई होती है।
3. **भण्डार गृहों एवं गोदामों का अभाव (Lack of Warehouses and Godowns)** - इन समितियों की धीमी प्रगति का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इनके पास भण्डार गृहों एवं गोदामों का अभाव है। अतः इन्हें कृषि वस्तुओं को क्रय करके उनका तुरन्त विक्रय करना पड़ता है जिससे इन्हें अधिक लाभ नहीं होता।
4. **विधायन के पर्याप्त साधनों का अभाव (Lack of Adequate Means of Legislation)** - पूँजी के अभाव में अधिकांश विपणन समितियों के पास विधायन के लिए पर्याप्त साधन नहीं है। वे उन वस्तुओं को खरीदने में असमर्थ रहती हैं जिन्हें बेचने के पूर्व बिक्री योग्य बनाना आवश्यक होता है।
5. **बाजार सम्बन्धी सूचनाओं का अभाव (Lack of Market Information)** - इन समितियों के पास टेलीफोन व आधुनिक संचार के साधन इन्टरनेट जैसे साधनों का पर्याप्त अभाव है और ये विपणन समितियां दूसरी विपणन समितियों से भी कोई सम्बन्ध नहीं रखती इसलिए बाजार सम्बन्धी नवीनतम सूचनाओं का ज्ञान इन समितियों को और कृषकों को नहीं होता।

6. **विपणन व्यवस्था का समयानुकूल न होना (Marketing System not Punctual)** - इन समितियों द्वारा व्यवसाय करने के जो तरीके अपनाये जाते हैं वे प्रचलित व्यापारिक तरीकों से भिन्न है। इससे उत्पादकों को अपने उत्पादन को इन समितियों के माध्यम से बेचने की प्रेरणा नहीं मिलती।
7. **आढ़तियों से प्रतियोगिता (Competition from Agents)** - समितियों और आढ़तियों में सदैव प्रतियोगिता बनी रहती है जिससे हर हालत में समितियों को ही हानि उठानी पड़ती है। यदि सहकारी समिति कृषक की उपज का मूल्य व्यापारियों की अपेक्षा अधिक देती है तो समिति को हानि होती है। यदि सहकारी समितियां कृषक की उपज का मूल्य व्यापारियों की अपेक्षा कम दें तो कृषक अपनी उपज को व्यापारी को बेचना पसन्द नहीं करता है।
8. **अनार्थिकता एवं निष्क्रियता (Uneconomicality and Inaction)** - आज भारतवर्ष में काफी सहकारी विपणन समितियां ऐसी है जो हानि एवं अलाभ की स्थिति में कार्य कर रही है तथा कुछ समितियां ठप्प पड़ी है।
9. **सदस्यों की उदासीनता (members' indifference)** - यद्यपि सहकारी विपणन समितियां अपने सदस्यों को सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान करती है। इसके बावजूद कृषक अपना माल समितियों के माध्यम से बेचना पसन्द नहीं करते। कृषकों को उनकी उपज की बिक्री का भुगतान बैंक से लेना पड़ता है। जिसमें कृषकों को परेशानी होती है और इस परेशानी से बचने के लिए वे इन समितियों के माध्यम से अपना माल बेचना पसन्द नहीं करते। कृषक समिति के नियमों व उपनियमों से पूर्णरूपेण परिचित नहीं होते। समितियों के गोदामों और क्रय केन्द्रों तक उपज को पहुंचाने के लिए किसानों के पास परिवहन एवं यातायात के साधनों का पर्याप्त अभाव होता है। कुछ समितियां तो ऐसे स्थानों पर है जहाँ सड़कें बहुत खराब है। समिति के सचिव कृषकों को सिगरेट आदि पिलाकर उनकी चापलूसी नहीं करते।

4.6.6 सहकारी विपणन में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for Improving Cooperative Marketing)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सहकारी विपणन समितियों से किसान को बहुत लाभ हो रहा है। परन्तु सम्पूर्ण देश के आकार तथा कृषि की आवश्यकताओं को देखते हुए इनकी प्रगति बहुत धीमी गति से हुई है। सहकारी विपणन के विकास के लिए कुछ सुझाव नीचे दिये जा रहे हैं-

1. सहकारिता के विभिन्न पहलुओं जैसे- साख-विपणन एवं उन्नत कृषि में समन्वय स्थापित करना चाहिए और यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि एक ही समिति इन तीनों प्रकार की सेवाएं प्रदान करे।
2. सहकारी विपणन समितियों को चाहिए कि जहां सम्भव हो, कृषि वस्तुएं उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से बेचे ताकि मध्यस्थों का व्यय बच सके।
3. सहकारी विक्रय समितियों का प्रबन्ध व संचालन शिक्षित व कुशल व्यक्तियों के हाथों में होना चाहिए। इसके लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।
4. इन सहकारी संस्थाओं द्वारा विधायन (legislation) एवं व्यापार कार्य के लिए वित्तीय सहायता राजकीय बैंक (state Bank) द्वारा दी जानी चाहिए।

5. विपणन सहकारी समितियों के विकास के लिए नियोजित ढंग से प्रयत्न किया जाना चाहिए और उसमें उत्पादन, विधायन, विपणन एवं संग्रह आदि पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. विपणन सहकारी समितियों को निजी क्षेत्र से प्रतियोगिता एवं वैमनस्य का खतरा बना रहता है इसे दूर किए जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।
7. उत्पादक व्यापारी को विपणन समिति की सदस्यता न दी जाये।
8. सरकार की ओर से इन संस्थाओं को कृषि- वस्तुओं के वर्गीकरण की सुविधा प्राप्त होनी चाहिए।
9. सहकारी विपणन संस्थाओं को प्रयत्न करना चाहिए कि उत्पादित अतिरिक्त खाद्य सामग्री का क्रय कर सके।
10. सरकार को चाहिए कि यथा सम्भव विपणन समितियों को अपने सहायता कार्यों जैसे-उन्नत बीजों या उर्वरकों के वितरण आदि का माध्यम नियुक्त किया जाना चाहिए।
11. सामुदायिक विकास योजना तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के क्षेत्रों में सहकारी विक्रय पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।
12. ग्रामीण क्षेत्रों में निजी संग्रह एवं गोदाम सुविधाएं विकसित करने के लिए सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।
13. बहुत सी वस्तुएं ऐसी हैं जिनके विपणन के पूर्व विधायन कर देने से अच्छे मूल्य पर और अधिक मात्रा में बेचा जा सकता है। सहकारी समितियों को चाहिए कि इन वस्तुओं जैसे- रूई आदि में भी यह कार्य करें।
14. अनार्थिक व निष्क्रिय समितियों को या तो पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया जाए या फिर उनकी दशा को सुधार कर उन्हें सुचारू रूप से चलाया जाए।
15. विपणन समितियों की स्थापना सामान्यतः मण्डी के निकट ही की जाये।

4.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

1. प्राचीनकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कृषि उत्पादन कार्य किसानों द्वारा मुख्य रूप से अपनी और अपने के लिए किया जाता था।
2. 1950-51 में द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार भारत में कुछ कृषि उत्पाद का 33.4 प्रतिशत ही उत्पादकों द्वारा बाजार में बेचा जाता है।
3. निरीक्षण व विपणन निदेशालय के अनुसार औसतन कृषि अतिरिक्त का..... प्रतिशत भाग ही विपणन हेतु बाजार में आता है।
4. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसार यह आँकड़ों का प्रतिशत तक है।
5. भारत देश संसार में मेलों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ लगभग 1700 से अधिक मेले, कृषि पदार्थों एवं जानवरों के लगते हैं, जिनमें लगभग प्रतिशत मेले कृषि वस्तुओं के होते हैं।
6. भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था में बिचौलियों की एक लंबी श्रृंखला है। जिस कारण प्रायः किसानों को उपभोक्ताओं द्वारा दिये गये मूल्य का लगभग..... प्रतिशत भाग ही मिल पाता है।

7. नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना की दिशा में पहला प्रयास..... में बरार में किया गया था।
8. सरकार ने..... में कृषि उत्पादन (श्रेणी विभाजन एवं अंकन) कानून पास किया जिसके द्वारा विपणन तथा निरीक्षण निदेशालय को अधिकार दिया गया।
9.में नाप तौल की मीट्रिक प्रणाली को अपनाया गया और 1 अप्रैल..... से मीट्रिक बाटों का प्रयोग भी अनिवार्य कर दिया गया।
10. सरकार ने में केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना की।
11. कृषि विपणन के राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना में की गई।
12. भारत में सहकारिता का विधिवत् प्रारम्भ सन् में हुआ था।
13. भारत में के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत सहकारी विपणन समितियों का गठन प्रारम्भ हुआ।
14. में बहुउद्देशीय सहकारी समितियों की स्थापना हुई जो किसानों को साख प्रदान करने के साथ उनके उत्पादन का विपणन भी करती थी।
15. विशिष्ट प्राथमिक सहकारी समितियों की संख्या लगभग हैं।
16. जिला सहकारी विपणन समितियाँ विभिन्न जिलों में कार्यरत है।
17.राज्य सहकारी विपणन संघ विपणन में किसानों की सहायता कर रहा है।
18. चीनी उद्योग में सहकारी समितियों की बड़े हिस्सेदारी है और चीनी के राष्ट्रीय उत्पादन में 58 प्रतिशत सहकारी क्षेत्र से आता है। देश में लगभग..... सहकारी चीनी मिलें हैं।

4.8 सारांश (Summary)

कृषि विपणन से अभिप्राय कृषि उत्पाद के क्रय विक्रय से है। भारत में कृषि विपणन की जो व्यवस्था प्रचलित है। उसमें कृषक अपने उत्पाद को मेलों तथा ग्रामीण हॉट में बेचता है। इसके अतिरिक्त नियमित मण्डियों द्वारा सरकारी खरीद भी कृषि विपणन का हिस्सा है। भारत की कृषि विपणन व्यवस्था में अनेक दोष हैं। जिन्हें दूर करने के लिए सरकार ने समय समय पर अनेक कदम उठाये हैं।

सहकारी विपणन भी कृषि विपणन का प्रभावशाली स्वरूप है। इसमें ग्राम स्तर पर प्राथमिक समिति, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी समिति तथा राष्ट्रीय स्तर पर NAFED कार्य कर रही है। इससे किसानों के हितों की रक्षा हो रही है परन्तु इसमें भी कुछ कमियाँ हैं जिन्हें दूर कर इन्हें मजबूत बनाने की आवश्यकता है। जिससे किसानों को अपनी फसल की सही कीमत मिले।

4.9 शब्दावली (Glossary)

- **विपणन** - वस्तुओं को बेचना या बाजार व्यवस्था
- **लक्षित** - लक्ष्य के अनुसार या निश्चित लक्ष्य पर आधारित।
- **सहकारी** - वह व्यवस्था जिसमें कुछ लोग एक उद्देश्य के लिए साथ मिलकर कार्य करते हैं।
- **अनुदान/रियायत** - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरें:-

1. परिवार की उदरपूर्ति	2. धर्म नारायण	3. 25 प्रतिशत
4. 30 प्रतिशत	5. 40 प्रतिशत	6. 50 प्रतिशत
7. 1897	8. 1937	9. 1958, 1 अप्रैल 1962
10. 1957	11. 1988	12. 1904
13. 1912	14. 1954	15. 3290
16. 172	17. 29	18. 220 सहकारी चीनी।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम.; (2007) 'भारतीय अर्थव्यवस्था', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- माथुर, बी. एल.; (2011) 'कृषि अर्थशास्त्र', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त, डॉ शिव भूषण; (2010) 'कृषि अर्थशास्त्र', साहित्य भवन आगरा।
- Bilgrami, S. A. R.; (2006) 'An Introduction to Agricultural Economics;' Himalaya Publishing House Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh 'Fundamentals of Agricultural Economics', (2006) Himalaya Publishing House Delhi.

4.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Texts)

- Taylor, H.C., (1949), 'Outlines of Agricultural Economic's, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), 'Agriculture and Economic Development'; Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), 'Fundamentals Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), 'Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): 'Indian Agricultural Development since Independence', Oxford & IBH, New Delhi.

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि विपणन से क्या तात्पर्य है? भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए उसकी कमियों का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार करने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. सहकारी विपणन से क्या अभिप्राय है? इसके उद्देश्यों एवं महत्व की व्याख्या कीजिए।
4. भारत में विद्यमान सहकारी विपणन ढाँचे की व्याख्या कीजिये। सहकारी विपणन समितियों की कमियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 5- कृषि वित्त के प्रकार, चुनौतियाँ, सम्भावनाएं एवं रणनीतियाँ (Types, Challenges, Prospects and Strategies of Agricultural Finance)

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 कृषि वित्त
 - 5.3.1 कृषि वित्त के प्रकार
- 5.4 कृषि वित्त के स्रोत
 - 5.4.1 गैर संस्थागत स्रोत
 - 5.4.2 संस्थागत स्रोत
- 5.5 कृषि वित्त की चुनौतियाँ, सम्भावनाएं एवं रणनीतियाँ
- 5.6 अभ्यास प्रश्न
- 5.7 सारांश
- 5.8 शब्दावली
- 5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कृषि वित्त के अर्थ व आवश्यकताओं की जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। तथा गैर संस्थागत तथा संस्थागत वित्तीय संस्थाओं की विस्तृत जानकारी देते हुए उनकी चुनौतियों और रणनीति पर प्रकाश डाला जायेगा। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप कृषि वित्त के स्रोतों तथा चुनौतियों को समझेगें।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ कृषि वित्त के प्रकार और स्रोतों को जान जायेंगे।
- ✓ कृषि वित्त के गैर संस्थागत स्रोत या व्यक्तिगत तथा स्रोत संस्थागत स्रोत की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- ✓ कृषि वित्त की चुनौतियों, सम्भावनाओं एवं रणनीतियों से अवगत हो जायेंगे।

5.3 कृषि वित्त

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग 67 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं तथा जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। ऐसे में कृषि वित्त का कृषि विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं जैसे कृषि विकास, ग्रामीण उद्योग, पशुपालन, डेयरी उद्योग आदि के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है। श्री निकल्सन के अनुसार कृषको को कृषि के चालू व्यय (जैसे- बीज आदि का क्रय, पशु, औजार व कच्चे माल का क्रय) चुकाने के लिए, नई भूमि का क्रय करने के लिए अथवा भूमि की सिंचाई, जल निकासी की व्यवस्था आदि के सुधारने के लिये, मकान बनाने व मरम्मत करने के लिए सरकार को मालगुजारी चुकाने के लिये, विवाह एवं सामाजिक उत्सवों पर खर्च करने के लिये तथा मुकद्दमों बाजी का संचालन करने के लिये वित्त की आवश्यकता पड़ती है।

कृषि वित्त (कृषि साख) से अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्र में किसानों को ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराने से है। ग्रामीण साख सर्वेक्षण के अनुसार **“कृषि की वह साख जिसकी कृषको को कृषि कार्यों को पूर्ण करने में आवश्यकता होती है, कृषि वित्त या साख के अन्तर्गत आती है।”** दूसरे शब्दों में कृषि वित्त या साख से तात्पर्य उस वित्त अथवा साख से होता है जिसका उपयोग कृषि से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों के संपादन हेतु किया जाता है। कृषि यन्त्र क्रय करने, सिंचाई की व्यवस्था करने विपणन से सम्बन्धित कार्य या कृषि से सम्बन्धित अन्य किसी कार्य के लिए हो सकती है।

भारतीय किसानों का अधिकतर भाग, छोटे व सीमान्त किसानों का है जो निर्धन है। जिस कारण कृषि की नवीन तकनीक को अपनाने के लिए, उत्पादन के नए साधनों को बाजार से खरीदने के लिए इनके पास पर्याप्त धन नहीं है। ऐसे में कृषि वित्त की उचित व्यवस्था द्वारा किसानों को कृषि विकास हेतु उचित वित्त उपलब्ध करा के ही भारत में कृषि का पूर्ण विकास किया जा सकता है।

5.3.1 कृषि वित्त के प्रकार

किसानों की आवश्यकताओं के आधार पर कृषि वित्त के मुख्य दो प्रकार हैं।

1. समय के अनुसार कृषि वित्त- समय का अभिप्राय उस अवधि से है जिसमें ऋण चुकाया जाता है। समय के अनुसार वित्त की आवश्यकता को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है-

(क) अल्पकालीन वित्त- सामान्यतया अल्पकालीन वित्त की अवधि एक फसल से दूसरी फसल तक की होती है। इस प्रकार के वित्त की आवश्यकता किसानों को बीज, उर्वरक, कृषि यंत्र, कीटनाशक, श्रमिकों की मजदूरी तथा अन्य तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए होती है। अल्पकालीन वित्त की अवधि 15 माह तक होती है।

(ख) मध्यकालीन वित्त- किसानों को अपनी भूमि में सुधार के लिए पशु खरीदने के लिए, कृषि के बड़े यन्त्र, सिंचाई के लिए पम्प खरीदने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। इन कार्यों को पूरा करने के लिए साधारण देय क्षमता से अधिक वित्त की आवश्यकता होती है। जिन्हें किसान फसल पर किस्तों द्वारा ही भुगतान करते हैं। मध्यकालीन वित्त की अवधि 15 माह से लेकर 5 वर्ष तक की होती है।

(ग) दीर्घावधि वित्त- जब किसानों को नयी भूमि खरीदनी हो, अपने खेत का विस्तार करना हो, पुराने ऋण का भुगतान करना हो, भूमि में कोई स्थायी सुधार करना हो तथा बड़े कृषि यंत्र खरीदने हो तो उन्हें बड़ी मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में किसान जो ऋण लेता है उसे वह 5 से 10 या 20 वर्ष तक के लिए लेता है।

2. उद्देश्य के अनुसार कृषि वित्त- भारतीय किसान को केवल कृषि कार्य के लिए ही नहीं परन्तु सामाजिक कार्यों को पूरा करने के लिए भी वित्त की आवश्यकता पड़ती है। इस आधार पर कृषि वित्त को निम्न भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) उत्पादक वित्त - इसमें ऐसे ऋण शामिल किये जाते हैं, जो किसानों को कृषि क्रियाओं जैसे- कृषि यन्त्र की खरीद, उर्वरक, उन्नत बीज, मजदूरी भुगतान, ट्यूबवैल लगाने, भूमि सुधार हेतु कुएं खुदवाने तथा फसल की बिक्री आदि में सहायता देते हैं। इन्हें उत्पादक इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इनका उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं से सीधा सम्बन्ध होता है। कृषि के व्यवसायीकरण के साथ आजकल खेती में धीरे-धीरे मशीनों का प्रयोग बढ़ रहा है। सिंचाई के लिए किसान अपने ट्यूबवैल तथा कृषि यंत्रों का प्रयोग करने लगे हैं। जिसके लिए उन्हें बड़ी मात्रा में कृषि वित्त की आवश्यकता होती है। अधिकांश उत्पादक कार्यों के लिए वित्त की व्यवस्था सहकारी समितियों, व्यापारिक बैंकों, भूमि विकास बैंक तथा नाबार्ड द्वारा की जाती है।

(ब) उपभोग वित्त- किसानों को प्रायः उपभोगता हेतु भी वित्त की आवश्यकता होती है। बहुत सारे किसानों को फसल बिक्री से इतनी आय नहीं होती कि वह अगली फसल तक परिवार का उचित जीवन-निर्वाह कर सकें। इसलिए वह अपनी दैनिक परिवारिक आवश्यकता के लिए ऋण लेते हैं। सूखे व बाढ़ के बाद यह आवश्यकता और बढ़ जाती है। ऐसे स्थिति में संस्थागत साख स्रोतों से किसानों को वित्त की

प्रति नहीं होती। इसलिए उन्हें मजबूर होकर उपभोग सम्बन्धी जरूरतों के लिए साहूकार और महाजनों से ही उधार लेना पड़ता है।

(स) अनुत्पादक वित्त- भारतीय किसानों को उपभोग के अतिरिक्त अनेक अनुत्पादक कोर्थों के लिए भी वित्त की आवश्यकता होती है। फसल ठीक न होने पर लगान अदायगी के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त किसान मुकदमेबाजी तथा अनेक सामाजिक संस्कारों जैसे- विवाह, पुत्र जन्मोत्सव, मृत्यु-भोज आदि के लिए भी अक्सर उधार लेते हैं। इन बातों के लिए गये कर्ज को आसानी से नहीं चुका पाते और प्रायः इस प्रकार के ऋणों की ब्याज की दर भी अधिक होती है और ऐसे वित्त की पूर्ति साहूकार व महाजन ही करते हैं।

5.4 कृषि वित्त के स्रोत

भारत में कृषि वित्त की पूर्ति के अनेक स्रोत हैं, जिन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है

1. गैर संस्थगत स्रोत या व्यक्तिगत स्रोत 2. संस्थागत स्रोत।

कृषि के व्यवसायीकरण के साथ गैर संस्थगत स्रोतों का महत्व धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

आर्थिक सर्वेक्षण 2004 में दिये गये आकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि संस्थागत स्रोतों का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आर्थिक सर्वेक्षण 2004 से प्राप्त आकड़ों को तालिका (5.1) दर्शाया गया है। तालिका (5.1) से स्पष्ट है कि 1951-52 में कुल कृषि वित्त में गैर संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी 92.7 प्रतिशत थी जो 1971 में 68.3 प्रतिशत, 1981 में 36.8 प्रतिशत, 1991 में 32.7 प्रतिशत तथा 2001 में घटकर 26.6 प्रतिशत रह गयी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास के साथ गैर संस्थागत वित्त स्रोत की हिस्सेदारी घटती गई। वहीं दूसरी तरफ संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी 1951-52 में मात्र 7.3 प्रतिशत थी जो 1971 में 31.7, 1981 में 63.2 प्रतिशत, 1991 में 64.0 तथा 2001 में बढ़कर 73.4 प्रतिशत हो गई।

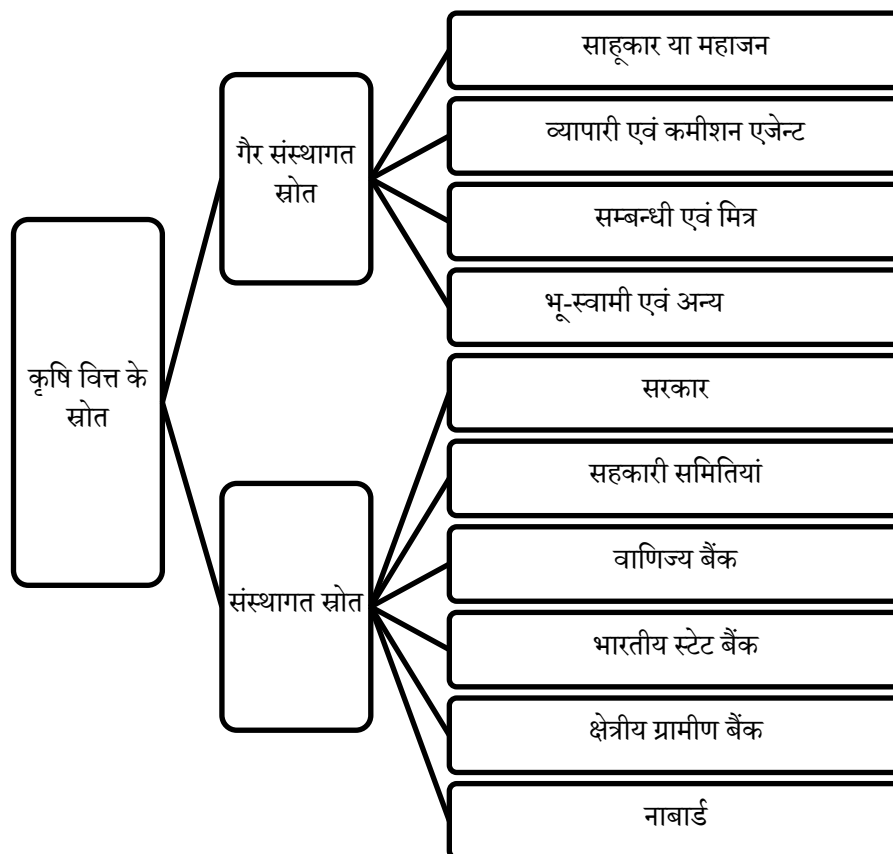
तालिका (5.1) कृषि वित्त का स्रोतानुसार वर्गीकरण (प्रतिशत भाग)

कृषि वित्त के स्रोत	1951.52	1971	1981	1991	2001
(अ) गैर संस्थागत स्रोत					
1. साहूकार	69.7	36.1	16.1	17.6	16.2
2. व्यापारी	5.5	8.4	3.2	2.5	2.3
3. सम्बन्धी एवं मित्र	14.2	13.1	8.7	5.5	4.3
4. भू-स्वामी एवं अन्य	3.3	10.7	8.8	4.0	3.8
उप-भोग (1 से 4)	92.7	68.3	36.8	32.7	26.6
(ब) संस्थागत स्रोत					
5. सरकार	3.1	7.1	3.9	6.1	7.1
6. सहकारी समितियाँ	3.3	22.0	29.9	21.6	30.3
7. वाणिज्य बैंक	0.9	2.6	29.4	33.7	33.4
8. अन्य	-	-	-	2.7	2.6
उपयोग (5 से 8)	7.3	31.7	63.2	64.0	73.4

कुल योग (अ + ब)	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0
-----------------	-------	-------	-------	-------	-------

Source-Economic Survey 2004

विस्तृत विवरण से पता चलता है कि इस दौरान गैर संस्थागत स्रोत में साहूकारों की हिस्सेदारी में मुख्य रूप से कमी आई वहीं संस्थागत स्रोत में वाणिज्य बैंको तथा सहकारी समितियों द्वारा दिये गये वित्त में विशेष रूप से वृद्धि हुई है। कृषि वित्त का विस्तृत वर्गीकरण निम्न है-



5.4.1 गैर संस्थागत वित्त स्रोत

गैर संस्थागत वित्त स्रोत में मुख्य रूप से साहूकार या महाजन, व्यापारी, मित्र व सम्बन्धी तथा भू-स्वामी आते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

- 1. साहूकार व महाजन-** भारत में साहूकार तथा महाजन संस्थागत कृषि साख का विकास हो जाने पर भी ग्रामीण वित्त व्यवस्था में अपना अस्तित्व बनाए हुए है। यह अभी भी देश के सभी भागों में पाए जाते हैं। अखिल भारतीय साख एवं निवेश सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार साहूकार तथा महाजन दो प्रकार के हैं प्रथम कृषक साहूकार है जो मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि कार्य करते हैं। द्वितीय व्यावसायिक साहूकार है जिनका प्रमुख व्यवसाय ही रूपया उधार देना है।

साहूकार उत्पादक, अनुत्पादक तथा उपभोग सभी उद्देश्यों के लिए अल्पकाल व दीर्घकाल के लिए किसानों को वित्त उपलब्ध कराते हैं। इन साहूकारों तक किसानों की पहुंच आसान होती है। क्योंकि

इनका किसानों से पारिवारिक सम्बंध होता है। इनके वित्त लेन-देन के तरीके सरल और लचीले होते हैं। साथ ही ये जमानत लेकर तथा बिना जमानत के भी वित्त उपलब्ध कराते। इस प्रकार इनकी कार्य पद्धति अत्यन्त लोचदार होती है, जो समय परिस्थिति तथा व्यक्ति के अनुसार परिवर्तित होती है। इसलिए ये अपने क्षेत्र में काफी लोकप्रिय होते हैं।

अखिल भारतीय ग्राम ऋण सर्वेक्षण (1954) की जांच के अनुसार सम्पूर्ण ग्राम वित्त में साहूकारों द्वारा 70 प्रतिशत वित्त दिया गया। लेकिन 1991 के एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार साहूकारों का अंश मात्र 18 प्रतिशत रह गया था। इससे पता चलता है कि इनका प्रभाव कम होता जा रहा है। क्योंकि अनेक बार साहूकार ब्याज की रकम अग्रिम रूप में काट लेते हैं। ये हिसाब-किताब में गड़बडी करते हैं और रसीद भी नहीं देते। अधिक ब्याज लगाते हैं। कम मूल्य पर फसल का जबरन क्रय करते हैं तथा किसानों से बगार भी कराते हैं। साहूकार के दोषों के बारे में **बम्बई बैंकिंग जांच समिति** ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि **“साहूकारों के लेन-देन का ढंग इस प्रकार का है कि एक बार उनसे ऋण लेने पर छुटकारा पाना कठिन है।”** ग्रामीण क्षेत्र में सहकारी व वाणिज्य बैंको की स्थापना के साथ दिन-प्रतिदिन इनका महत्व घटता जा रहा है, लेकिन ये अभी भी महत्वपूर्ण हैं।

2. **व्यापारी एवं कमीशन एजेन्ट-** व्यापारी व कमीशन एजेन्ट किसानों को कृषि उत्पादन कार्यों हेतु वित्त उपलब्ध कराते हैं। इनके द्वारा कुछ विशेष फसलों जैसे- फल, मूँगफली, गन्ना तथा तम्बाकू आदि के उत्पादन हेतु ऋण प्रदान किये जाते हैं। ये किसानों को कम कीमत पर फसल बेचने के लिए बाध्य करते हैं और इसमें से भी अपने कमीशन की भारी वसूली करते हैं। तालिका (20.1) अनुसार 1951-52 में इन की हिस्सेदारी कुल कृषि वित्त का 5.1 प्रतिशत जो 2001 में घट कर 2.1 प्रतिशत रह गयी, क्योंकि इनकी कार्यप्रणाली दोषपूर्ण थी।
3. **सम्बन्धी एवं मित्र-** किसान आवश्यकता पडने पर अपने मित्रों और रिश्तेदारों से नकद या वस्तुओं के रूप में उधार लेते हैं। ये उधार सामान्यतः अनौपचारिक रूप से दिए जाते हैं जिन पर ब्याज दर बहुत नीची होती है या ब्याज ही नहीं लिया जाता। ऐसे उधार अल्पकालिन होते हैं जो फसल कटाई पर लौटा दिये जाते हैं। इस प्रकार की वित्त व्यवस्था अनिश्चित होती है। कुल कृषि वित्त में इस प्रकार के वित्त का हिस्सा बहुत कम ही रहा है। 1951-52 में यह 14.2 प्रतिशत था जो 1991 में घटकर 4.3 प्रतिशत रह गया।
4. **भू-स्वामी एवं अन्य-** छोटे एवं सीमान्त किसान तथा काश्तकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भू-स्वामी एवं अन्य पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार के वित्त स्रोत में भी साहूकार व व्यापारियों एजेन्ट जैसी दोषपूर्ण कार्यप्रणाली द्वारा किसानों का शोषण किया जाता है। और छल द्वारा उनकी भूमि पर कब्जा कर लिया जाता है। और उन्हें भूमिहीन कर बन्धुआ मजदूर बनने के लिए मजबूर किया जाता है। 1951-52 में 3.3 प्रतिशत तथा 1991 में 3.8 प्रतिशत वित्त की पूर्ति इनके द्वारा की गई। कृषि के गैर संस्थागत स्रोतों की कार्य प्रणाली में अनेक दोष हैं- अनुत्पादक व उपभोग कार्यों के लिए वित्त देना, ब्याज की ऊँची दर, हिसाब में गड़बडी, अग्रिम ब्याज, भूमि पर कब्जा आदि। जो किसानों का शोषण कर उन्हें हमेशा के लिए कर्जदार बना देती हैं।

5.4.2 संस्थागत वित्त स्रोत

इसके अन्तर्गत ऐसी राशियाँ शामिल की जाती है जो सहकारी समितियों, वाणिज्य बैंकों, सरकार, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भूमि विकास बैंक आदि द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। संस्थागत वित्त संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य किसानों को अपनी उत्पादकता बढ़ाने या आय को अधिकतम करने में सहायता देना है। ये अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन सभी प्रकार के ऋण की व्यवस्था करते हैं। संस्थागत वित्त के प्रमुख स्रोत इस प्रकार है।

- 1. सरकार-** दोनो ही सरकारें (केन्द्र तथा राज्य) किसानों को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त सहायता देती रही है। सरकार किसानों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रदान करती है। प्रत्यक्ष रूप से किसानों को दिये जाने वाले ऋणों को तकावी ऋण कहा जाता है। ऐसे ऋण विपदा या आपात स्थिति में दिये जाते हैं। जैसे- युद्ध, बाढ़, सूखा, भूकम्प आदि यह ऋण सामुदायिक विकास विभाग राजस्व विभाग, या सहकारी समितियों के माध्यम से दिये जाते हैं।

सरकार किसानों को अप्रत्यक्ष रूप से अल्पकाल तथा दीर्घकाल के लिए ऋण देती है। सरकार यह ऋण सहकारी समितियों, भूमि विकास बैंको को धन राशि उपलब्ध करा कर किसानों तक पहुँचाती है। सरकार राज्य सहकारी बैंकों को अनुदान देकर भी किसानों को पर्याप्त मात्रा में साख उपलब्ध कराती है।

सरकार द्वारा दिये जाने वाले ऋण अधिक लोकप्रिय नहीं है। ब्याज दर कम होने के बावजूद, इन ऋणों की कम राशी, प्राप्ति में देरी, अकुशल प्रशासन तथा कागजी कार्यवाही के कारण किसान इनका लाभ नहीं उठा पाते।

- 2. सहकारी समितियाँ-** सहकारी साख समितियाँ कृषि वित्त का सबसे बढ़िया तथा सस्ता स्रोत है। ये समितियाँ उत्पादन कार्यों हेतु ही ऋण प्रदान करती है। जिनकी ब्याज दर भी अन्य संस्थाओं की तुलना में कम होती है। भारत में सहकारी समितियाँ तीन स्तरों पर कार्य करती है। राज्य सहकारी बैंक राज्य में शीर्ष संस्था होती है। उसके बाद केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक तथा ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक साख समितियों का स्थान होता है।

गाँव के कोई भी दस लोग मिलकर प्राथमिक सहकारी साख समिति की स्थापना कर सकते हैं। इनकी कार्यपद्धति समस्त सहकारी साख की उन्नति एवं समृद्धि की सूचक है। वर्ष 1950-51 में इनकी संख्या 1.05 लाख थी जो 1960-61 में बढ़कर 2.12 लाख हो गई। बाद में पुनर्गठन के बाद 1999-2000 में इनकी संख्या 0.92 लाख हो गई। लेकिन प्रदान किए गए ऋण की मात्रा 1950-51 में 23 करोड़ से बढ़कर 1999-2000 में 13,600 करोड़ रूपए हो गई है।

प्राथमिक साख समितियों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए जिला स्तर पर केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक का संचालन किया जाता है। भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना 1912 के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत हुई 1950-51 में इनकी संख्या 505 थी पुनर्गठन के बाद 1999-2000 में 367

हो गई जबकि इनके द्वारा दिये गये ऋण की मात्रा 1950-51 में 83 करोड़ रूपए से बढ़कर 1999-2000 में 47,630 करोड़ रूपए हो गया।

केन्द्रीय सहकारी बैंको को ऋण देने के लिए राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक होता है। यह बैंक रिजर्व बैंक, केन्द्रीय तथा प्राथमिक सहकारी साख समितियों के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करता है। 1950-51 में इनकी संख्या 15 थी जो 1999-2000 में 29 हो गई तथा इनके द्वारा दिये गये ऋण की मात्रा इस दौरान 42 करोड़ रूपए से बढ़कर 38,250 करोड़ रूपए हो गई।

यद्यपि अर्थव्यवस्था के विकास के साथ सहकारी समितियों की कृषि वित्त में हिस्सेदारी लगातार बढ़ी है फिर भी इनका लाभ अधिकतर बड़े किसानों ने ही उठाया है और बकाया ऋण भी एक बड़ी समस्या बना हुआ है। सहकारी साख संस्थाओं की सफलता के लिए इन्हें छोटे व सीमान्त किसानों पर अधिक ध्यान देना होगा और ऋणों की समय पर वापसी सुनिश्चित करनी होगी।

3. **वाणिज्य बैंक-** काफी लम्बे समय तक वाणिज्य (व्यापारिक) बैंकों का कृषि वित्त में हिस्सा बहुत कम था। 1950-51 में 0.9 प्रतिशत तथा 1961-62 में 0.7 प्रतिशत था 19 जुलाई 1969 को सरकार ने 14 वाणिज्य बैंकों तथा 15 अप्रैल 1980 में 6 वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इसके बाद इन बैंको द्वारा कृषि वित्त में महत्वपूर्ण योगदान दिया जाने लगा ये अल्पकालीन तथा मध्यकालीन दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं। वाणिज्य बैंक न केवल किसानों को उर्वरक, पम्पिंग सेट व अन्य कृषि यन्त्र खरीदने के लिये ऋण दे रहे हैं। राष्ट्रीयकरण के बाद कृषि वित्त में इनकी हिस्सेदारी तेजी से बढ़ी है। जो 1950-51 में मात्र 0.9 प्रतिशत थी वह 1971 में 2.6 प्रतिशत तथा 2001 में बढ़कर 33.4 प्रतिशत हो गई। 30 जून 2009 तक व्यापारिक बैंको की संख्या 80514 थी जिसमें से 39.53 प्रतिशत शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत थी।
4. **भारतीय स्टेट बैंक-** सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक सबसे बड़ा बैंक है। जो देश के कुल बैंकिंग कारोबार का 26.2 प्रतिशत कारोबार सम्भालते है 1955 में अपनी स्थापना के समय से ही यह कृषि वित्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहा है। यह सहकारी बैंको को वित्त उपलब्ध कराता है। सहकारी बैंकों के धन का निःशुल्क स्थानान्तरण करता है। गोदामों के निर्माण के लिये ऋण देता है। किसानों को ट्रैक्टर व अन्य यन्त्र खरीदने के लिये सीधे ऋण देता है। भारतीय स्टेट बैंक द्वारा 1972 में कृषि विकास शाखा खोलने की एक विशेष योजना प्रारम्भ की गई तथा 'गाँव अंगीकृत योजना' प्रारम्भ की जिसके द्वारा किसानों को सीधे वित्त सुविधा प्रदान की जा सके। 30 जून को भारतीय स्टेट बैंक तथा सहयोगी बैंकों की 16294 शाखाएँ थी जिसमें से 34.49 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में स्थिति है।
5. **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक-** बैंकिंग आयोग द्वारा लघु एवं सीमान्त किसानों तथा भूमिहीन कृषि श्रमिकों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 1972 में ग्रामीण बैंको की स्थापना का सुझाव दिया गया। फलस्वरूप सरकार द्वारा नियुक्त ग्रामीण बैंक के कार्यदल की विशेष सिफारिश पर 2 अक्टूबर 1975 को 4 राज्यों उत्तरप्रदेश में मुरादाबाद और गोरखपुर, हरियाणा में भिवानी राजस्थान में जयपुर तथा पश्चिम बंगाल में माल्दा में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। इन्हें प्रायोज्य या प्रायोजित बैंक भी कहा जाता है क्योंकि इन बैंको की स्थापना, प्रबन्धन तथा वित्तीय व्यवस्था में व्यापारिक बैंको की महत्वपूर्ण

भूमिका होती है। 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या 6 तथा शाखाओं की संख्या 200 थी जो 2003 में बैंकों की संख्या 196 तथा शाखाओं की संख्या बढ़कर 14,507 हो गई है। इन बैंकों के ऋणों का 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों को दिया जाता है। देश के कुल कृषि ऋण प्रवाह में क्षेत्रीय बैंकों का हिस्सा लगभग 8 प्रतिशत है।

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूँजी 1 करोड़ रूपए निर्धारित की गई है। यह अधिकृत पूँजी केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक एवं प्रायोजित बैंक की सलाह से कम कर सकता है, किन्तु यह 25 लाख रूपए से कम नहीं होगी। जिसमें 50 प्रतिशत केन्द्रीय सरकार, 15 प्रतिशत राज्य सरकार एवं 35 प्रतिशत प्रायोजित बैंक द्वारा प्रदान की जायेगी। 12 जुलाई 1982 को इन बैंकों का नियन्त्रण रिजर्व बैंक ने नाबार्ड को सौंप दिया था।

यद्यपि इन बैंकों की स्थापना ग्रामीण साख के विस्तार के लिये की गई थी, परन्तु इन बैंकों के क्षेत्रीय वितरण में असमानता है। जिसमें से अधिकांश क्षेत्रीय बैंक घाटे में चल रहे हैं, जिस कारण उन्हें वित्तीय कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। इस लिए स्वीकृत ऋणों के प्रयोग का निरीक्षण किया जाना चाहिए जिससे ऋण उसी कार्य में लगे जिसके लिए स्वीकृत किया गया है और समय पर ऋण वापसी हो सके।

6. **राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)** - देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास कार्यों के लिये व्यवस्था करने, कृषि वित्त संस्थाओं की सहायता व समन्वय के लिये कृषि वित्त की सर्वोच्च संस्था के रूप में 12 जुलाई 1982 एक शीर्षस्थ बैंकों के रूप में नाबार्ड की स्थापना की गई। इसने 15 जुलाई 1982 से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसका मुख्यालय मुम्बई में तथा 4 मण्डलीय तथा प्रत्येक राज्य में क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की गई है। नाबार्ड को कृषि पुनर्वित्त व विकास निगम तथा राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष तथा राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) कोष के सभी कार्य हस्तान्तरित कर दिये गये हैं। नाबार्ड अपने कार्यों के द्वारा कृषि वित्त में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्ष 2003-04 के दौरान अल्पकालीन ऋण के रूप में 8,820 करोड़ रूपए के ऋणों की स्वीकृति दी। 1 अप्रैल 1995 से नाबार्ड के तहत एक नई ग्रामीण आधारित संरचनात्मक विकास निधि की स्थापना की गई। जिसके द्वारा सिंचाई सडके एवं पुल आदि के निर्माण हेतु सहायता दी जाती है। 2003-04 में इसके अन्तर्गत 5,440 करोड़ रूपए की राशी स्वीकृत की गई।

5.5 कृषि वित्त की चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ एवं रणनीतियाँ

भारत में ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या नई नहीं है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है, जितनी कृषि किसानों का ऋणग्रस्त होना एक सामान्य बात है। शाही कृषि आयोग के अनुसार **“भारतीय कृषक ऋण में जन्म लेता है, ऋण में पलता है और ऋण में ही मरता है।”** आज भारतीय ग्रामीण वित्त व्यवस्था के सामने मुख्य चुनौती यही है कि किस प्रकार किसानों की वित्तीय सहायता कर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाए। लेकिन संगठित व संस्थागत वित्तीय संस्थाओं की स्थापना के बावजूद आज भी ग्रामीण साख बाजार में असंगठित व गैर संस्थागत स्रोतों जैसे साहूकार व महाजनों का प्रभुत्व है। जिन्हें पंजाब में महाजन, उत्तर प्रदेश में

साहूकार, मारवाड में सेठ तथा चेन्नई में चेट्टी कहा जाता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में इन पर वित्तीय निर्भरता संस्थागत क्षेत्रों के लिए मुख्य चुनौती बनी हुई है।

2004 में हिन्दुस्तान टाईम्स और भारतीय आर्थिक निवेश फाउण्डेशन के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि आज भी ग्रामीण वित्त में साहूकारों की हिस्सेदारी 70 प्रतिशत है। जबकि सार्वजनिक बैंकों का मात्र 10 प्रतिशत सहकारी समितियों का 9 प्रतिशत, सरकारी स्रोत का 1 प्रतिशत, स्वयं सहायता समूहों का 1 प्रतिशत तथा अन्य का 9 प्रतिशत हिस्सा था।

अधिकांश साहूकार व महाजन ऐसे हैं जिनके घरों से सरकारी ऋण केन्द्र 1 किलोमीटर के अन्दर है। साहूकार अपने ऋणों पर औसतन 24 प्रतिशत ब्याज वसूलते हैं। तब भी आज किसान इन साहूकारों की जकड़ में फंसे हुए हैं। संस्थागत वित्त संस्थाओं को अपनी कार्यप्रणाली में इस प्रकार बदलाव करना होगा, जिससे किसान इनसे ऋण लेने के लिए आगे आये।

कृषि व ग्रामीण वित्त संस्थागत संस्थाओं के सामने दूसरी सबसे बड़ी चुनौती घाटे की है। क्योंकि क्षेत्रिय ग्रामीण बैंक, सहकारी समितियों तथा वाणिज्य बैंको द्वारा प्रदान ऋणों की समय पर वापसी नहीं हो पाती। पिछले दिनों किसानों द्वारा की गई आत्महत्या भी बैंकिंग प्रणाली के सामने एक चुनौती बनकर आई है।

स्वतंत्रता के इतने समय बाद भी आज छोटे भूमि तथा सीमान्त किसानों को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए साहूकारों की शरण में जाना पड़ता है क्योंकि संस्थागत संस्थाओं पर बड़े व प्रभावशाली किसानों का अधिक प्रभाव है। जिस कारण छोटे किसान ऋण जाल में फँसे हुए हैं। इन संस्थाओं के विस्तार में भी क्षेत्रीय असमानताएं हैं। जहाँ कुछ क्षेत्रों में तो बहुत से बैंको खोला गया है वहीं दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों में बैंकों का अभाव है। क्योंकि ग्रामीण बैंकों में शाखाएं विस्तार के नाम से अंधाधुंध ग्रामीण शाखाएं खोल दी गई हैं। जिससे इन बैंकों का प्रशासनिक घाटा भी बढ़ा जिसका प्रभाव कृषि वित्त पर पड़ा है। इन सब कारणों से संस्थागत कृषि वित्त संस्थाओं के सामने अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधाएं आ रही हैं। जो कृषि वित्त व्यवस्था के लिए चुनौती बनी हुई है।

कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र में कृषि वित्त की आपार सम्भावनाएं हैं। लेकिन वित्तीय संस्थाओं के असमान वितरण, भेद-भाव पूर्ण व्यवहार, वित्त अभाव व जटिल कार्यप्रणाली के कारण किसानों तक यह अपनी प्रभावपूर्ण पहुँच बनाने में धीमी गति से आगे बढ़ रहे हैं। इसलिये संस्थागत संस्थाओं को ऐसी रणनीति अपनानी होगी, जिससे किसान साहूकार की जकड़ से बच कर अन्य वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता प्राप्त करें।

व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको तथा सहकारी वित्त संस्थाओं को अपने ऋणों को राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के साथ समन्वित करना चाहिये, जिससे किसानों को मुसीबत के समय ऋण वापसी में कठिनाई का सामना न करना पड़े। साथ ही बैंकों को वर्षा बीमा योजना के साथ भी अपने ऋण को समन्वित करते हुए किसानों को इसकी जानकारी देनी चाहिए।

कृषि वित्त की नवीन रणनीति के तहत अगस्त 1998 में किसान क्रेडिट कार्ड की योजना प्रारंभ की गई अब किसान वाणिज्य बैंकों क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंको से आसानी से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। 1998 से नवम्बर 2009 तक 878.30 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके थे इनमें से 48.21 प्रतिशत सहकारी बैंको द्वारा 13.16 प्रतिशत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको तथा 38.63 प्रतिशत वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गए।

5.6 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. भारत एक..... प्रधान देश है जहाँ लगभगजनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं तथा जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है।
2. अल्पकालीन कृषि वित्त की अवधि तक होती है।
3. मध्यकालीन वित्त की अवधि..... से लेकर तक की होती है।
4. दीर्घावधि वित्त की अवधिया तक के लिए लेता है।
5. सहकारी समितियों, व्यापारिक बैंकों, भूमि विकास बैंक तथा नाबार्ड द्वारा अधिकांश कार्यों के लिए वित्त की व्यवस्था की जाती है।
6. 1951-52 में कुल कृषि वित्त में गैर संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी प्रतिशत थी दूसरी तरफ संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी 1951-52 में मात्र प्रतिशत थी।
7. 2001 में कुल कृषि वित्त में गैर संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी घटकर प्रतिशत दूसरी तरफ संस्थागत स्रोत की हिस्सेदारी 2001 बढ़कर प्रतिशत हो गई।
8. गैर संस्थागत वित्त स्रोत में मुख्य रूप से आते हैं।
9. संस्थागत वित्त संस्था..... सभी प्रकार के ऋण की व्यवस्था करते हैं।
10. केन्द्र तथा राज्य सरकारों दोनों ही किसानों को..... वित्त सहायता देती रही है। सरकार किसानों को रूप से प्रदान करती है।
11. भारत में सहकारी समितियाँ स्तरों पर कार्य करती हैं। राज्य में शीर्ष सहकारी संस्था होती है।
12. को सरकार ने 14 वाणिज्य बैंकों तथामें 6 वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया।
13. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना को राज्यों में की गई।
14. कृषि वित्त की सर्वोच्च संस्था के रूप में एक शीर्षस्थ बैंकों के रूप मेंकी स्थापना की गई।
15.में किसान क्रेडिट कार्ड की योजना प्रारंभ की गई।
16. 1998 से नवम्बर 2009 तक..... किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके थे।

17. जारी किए जा चुके किसान क्रेडिट कार्ड में सेप्रतिशत सहकारी बैंको द्वाराप्रतिशत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको तथाप्रतिशत वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गए।
18. पिछले दिनों किसानों द्वारा की गई भी बैंकिंग प्रणाली के सामने एक चुनौती बनकर आई है।

5.7 सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ के अधिकांश किसान छोटे व सीमान्त श्रेणी के हैं। जिन्हें कृषि वित्त की आवश्यकता खाद, बीज, कीटनाशक, कृषि यन्त्र तथा सिंचाई व्यवस्था के लिए पड़ती है। किसान उत्पादक, अनुत्पादक तथा उपभोग सभी उद्देश्यों के लिए अल्पकालीन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण लेते हैं। किसान इन ऋणों के लिये गैर संस्थागत स्रोतों जैसे- साहूकार व महाजन व्यापारियों व एजेन्ट, सम्बन्धी, मित्र तथा भूस्वामी तथा संस्थागत वित्तीय स्रोतों जैसे- सरकार, सहकारी वित्त समिति, वाणिज्य बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा नाबार्ड पर निर्भर करते हैं। लेकिन आज भी कृषि वित्त में साहूकारों का प्रभुत्व बना हुआ है। 2004 में हिन्दुस्तान टाईम्स और भारतीय आर्थिक निवेश फाउण्डेशन के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि आज भी ग्रामीण वित्त में साहूकारों की हिस्सेदारी 70 प्रतिशत है। जबकि सार्वजनिक बैंकों का मात्र 10 प्रतिशत सहकारी समितियों का 9 प्रतिशत, सरकारी स्रोत का 1 प्रतिशत स्वयं सहायता समूहों का 1 प्रतिशत तथा अन्य का 9 प्रतिशत हिस्सा था। जो कृषि वित्त व्यवस्था के लिये एक बड़ी चुनौती है।

अतः सरकार के अपनी रणनीति में इस प्रकार बदलाव लाना होगा कि किसान संस्थागत वित्त संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर, विकास की और अग्रसर हो। व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको तथा सहकारी वित्त संस्थाओं को अपने ऋणों को राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के साथ समन्वित करना चाहिये, जिससे किसानों को मुसीबत के समय ऋण वापसी में कठिनाई का सामना न करना पड़े।

5.8 शब्दावली

- **कृषि साख-** वह ऋण (साख) जो कृषि कार्य हेतु लिया जाता है।
- **उर्वरक-** रासायनिक खाद जैसे-यूरिया, पोटाश, फास्फेट आदि।
- **गैर संस्थागत स्रोत-** जिनकी निश्चित प्रणाली अनिश्चित होती है।
- **संस्थागत स्रोत-** जिनकी कार्यप्रणाली निश्चित नियमों पर आधारित होती है।
- **कृषि का व्यवसायीकरण -** लाभ प्राप्ति के उद्देश्यों से कृषि करना।
- **वाणिज्य बैंक-** व्यापारिक बैंक जो लाभ प्राप्ति के लिए धन का लेने-देन करते हैं।
- **काश्तकार-** जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- **अनुदान/रियायत -** सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **सहकारी-** वह व्यवस्था जिसमें कुछ लोग एक उद्देश्य के लिए साथ मिल कर कार्य करते हैं।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

- | | |
|---|---|
| 1. कृषि ; 67 प्रतिशत | 2.15 माह |
| 3. 15 माह से लेकर 5 वर्ष | 4. 5 से 10 या.20 वर्ष |
| 5. उत्पादक | 6. 92.7 प्रतिशत ; 7.3 प्रतिशत |
| 7. 26.6 प्रतिशत ; 73.4 प्रतिशत | |
| 8. साहूकार या महाजन, व्यापारी, मित्र व सम्बन्धी तथा भू-स्वामी | |
| 9. अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन | |
| 10. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ; प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष | |
| 11. तीन ;राज्य सहकारी बैंक | |
| 12.19 जुलाई 1969; 15 अप्रैल 1980 | 13. 2 अक्टूबर 1975 ; 4 राज्यों |
| 14. 12 जुलाई 1982 ;नाबार्ड | 15. अगस्त 1998 |
| 16. 878.30 लाख | 17. 48.21 प्रतिशत ;13.16 प्रतिशत ;38.63 प्रतिशत |
| 18. आत्महत्या | |

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह कुसुमलता, ग्रामीण ऋणव्यवस्था और सार्वजनिक बैंक (फरवरी 2010) योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- यादव सुबह सिंह, ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका (नवम्बर 2010), प्रतियोगिता दर्पण; आगरा।
- वर्मा सुभाष चन्द, क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंक: चुनौतियाँ एवं समाधान (फरवरी 2010) योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- पंत नवीन, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं (फरवरी 2010)योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- यादव सावित्री, किसान क्रेडिट कार्ड से खत्म हुई किसानों की ऋणग्रस्तता (जून 2011) कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- माथुर बी. एल.; (2011) कृषि अर्थशास्त्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ. शिव भूषण; (2010) कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन आगरा।
- दत्त रुद्र एवं सुन्दरम के.पी. एम.; (2007) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- मामेरिया डॉ. चतुर्भुज एवं जैन डॉ. एस.सी.; (1995) भारतीय अर्थशास्त्र, प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- सोनी आर. एन.; कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय, 2007; विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर।

- मिश्र एस.के. पुरी, वी.के.; (2008) *भारतीय अर्थशास्त्र*, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।

5.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949), '*Outlines of Agricultural Economic's*', MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), '*Agriculture and Economic Development*'; Select books, New Delhi.
- Sandh A. N., Singh, Amarjit (2009), '*Fundamentals Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), '*Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M.L. et al. (1991): '*Indian Agricultural Development since Independence*', Oxford & IBH, New Delhi.

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि वित्त से आप क्या समझते हैं? कृषि वित्त के स्रोत पर प्रकाश डालिये।
2. कृषि वित्त के गैर-संस्थागत तथा संस्थागत वित्तीय स्रोतों की विस्तृत व्याख्या करो।
3. संस्थागत वित्तीय स्रोत की चुनौतियों का वर्णन करो।

इकाई 6- सहकारी वित्त प्रणाली, नाबार्ड और वैद्यनाथ समिति

(Co-operative Finance System, NABARD and Vaidyanath Committee)

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 सहकारी वित्त प्रणाली
 - 6.3.1 प्राथमिक सहकारी वित्त समिति
 - 6.3.2 केन्द्रीय सहकारी बैंक
 - 6.3.3 राज्य सहकारी बैंक
- 6.4 नाबार्ड- राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक
 - 6.4.1 नाबार्ड की पूंजी
 - 6.4.2 नाबार्ड का प्रबन्ध
 - 6.4.3 नाबार्ड के कार्य
 - 6.4.4 नाबार्ड के कार्यों के प्रगति
 - 6.4.5 ग्रामीण विकास में नाबार्ड की भूमिका
- 6.5 वैद्यनाथ समिति
- 6.6 अभ्यास प्रश्न
- 6.7 सारांश
- 6.8 शब्दावली
- 6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सहकारी वित्त प्रणाली, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक कि विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। तथा इनके सम्बन्ध में वेद्यनाथ समिति की सिफारिशों पर चर्चा की जायेगी। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप सहकारी साख समितियों तथा नाबार्ड की कार्यप्रणाली व स्थिति को समझ जायेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ✓ कृषि वित्त में सहकारी समितियों की स्थिति को जान जायेंगे।
- ✓ राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेंगे
- ✓ सहकारी समितियों और नाबार्ड के कार्य के कार्य में सुधार हेतु वेद्यनाथ समिति की रिपोर्ट से अवगत हो जायेंगे।

6.3 सहकारी वित्त प्रणाली

भारत में सहकारी वित्त (साख) का इतिहास बहुत पुराना है। किसानों को महाजनों को व सहकारों के शोषण से बचाने के लिए सहकारी साख आन्दोलन का प्रारम्भ 1904 में हुआ था। स्वतंत्रता से पहले सहकारी समितियों का विकास बहुत धीमी गति से हुआ। परन्तु स्वतंत्रता के बाद सरकार के प्रयासों द्वारा सहकारी समितियों की स्थापना में तेजी आई। प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाकाल में प्राथमिक कृषि साख समितियों की संख्या 1.05 लाख से बढ़कर 2.10 लाख हो गई और सदस्यों की संख्या 44 लाख से 190 लाख हो गई। इसी दौरान ऋणों की राशि 23 करोड़ रूपए से बढ़कर लगभग 203 करोड़ रूपए हो गई। पिछले वर्षों में सहकारी साख समितियों का पुनर्गठन हुआ है और घाटे में चल रही कमजोर समितियाँ समाप्त कर दी गई है। सहकारी साख समितियाँ किसानों के लिए अल्पकालीन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सहकारी साख (वित्त) प्रणाली का आरम्भ मुख्य रूप से किसानों को कृषि कार्यों के लिए आवश्यक पूँजी कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराने के लिए हुआ था जिससे किसानों की साहूकारों पर निर्भरता कम हो। भारत में सहकारी साख समितियों का संगठन व स्वरूप संघीय है। जो निम्न प्रकार है-

6.3.1 प्राथमिक सहकारी वित्त समिति

सहकारी वित्त समिति, जिसे सामान्यतः प्राथमिक कृषि साख समिति भी कहते हैं दस या अधिक व्यक्तियों से आरम्भ की जा सकती है। ये व्यक्ति साधारणतया एक ही गाँव के होने चाहिए। गरीब से गरीब किसान भी समिति का सदस्य बन सकता है। सदस्यों का दायित्व असीमित होता है जिसका तात्पर्य यह है कि समिति को घाटा होने पर सम्पूर्ण हानि का प्रत्येक सदस्य पर पूर्ण दायित्व रहता है। समिति का प्रबन्ध एक निर्वाचित संस्था करती है, जिसके अध्यक्ष, सचिव और कोषाध्यक्ष रहते हैं। प्रबन्धमण्डल के सदस्य अवैतनिक होते हैं। केवल लेखाकार ही वैतनिक होता है। कृषि कार्यों के लिए अल्पकालिक ऋण सामान्यतः एक वर्ष के लिए दिये जाते हैं। जिनकी ब्याज दर लगभग 6 प्रतिशत निर्धारित की गई है। लाभ का प्रयोग कुँ बनाने, स्कूल की देखभाल तथा अन्य ग्रामीण कल्याणकारी कार्यों में किया जाता है।

प्राथमिक सहकारी वित्त समिति की स्थिति का अनुमान तालिका (6.1) से लगाया जा सकता है। 1950-51 इनकी संख्या 106 हजार थी, जो 1960-61 में 212 तथा 1970-71 में पुनर्गठन के बाद 161 तथा 1999-2000 में 92 हो गई। इस दौरान साचा वितरण की स्थिति में प्रगति देखी गई। 1950-51 में इन्होंने 23 करोड़ रूपए की साख वितरित की, जो 1960-61 में 202 करोड़ रूपए 1970-71 में 578 करोड़ रूपए और 1999-2000 में 13,600 करोड़ रूपए हो गई। यह प्रगति चाहे अत्यन्त महत्वपूर्ण है, परन्तु किसानों की वित्त सम्बन्धी माँग को दृष्टि में रखते हुए पर्याप्त नहीं कही जा सकती।

तालिका (6.1) प्राथमिक सहकारी वित्त समिति की स्थिति

वर्ष	सहकारी समितियों की संख्या (हजार में)	साख वितरित (करोड़ रूपए में)
1950-51	106	23
1960-61	212	202
1970-71	161	578
1999-00	92	13,600

भारत सरकार और रिजर्व बैंक द्वारा प्राथमिक सहकारी समितियों के पुनर्गठन तथा पुनरुद्धार का कार्यक्रम चलाया गया। इसे राजस्थान, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, केरल, तमिलनाडू तथा गुजरात में पूरा किया जा चुका है। अन्य राज्यों में इसमें विशेष प्रगति नहीं हुई। अधिकांश प्राथमिक कृषि साख समितियां वित्त के लिए केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर निर्भर करती हैं। यदि केन्द्रीय बैंक की वित्तीय स्थिति सही नहीं है तो इसका प्रभाव प्राथमिक समितियों पर भी पड़ता है। मार्च 1999 के अंत तक, प्राथमिक समितियों की बकाया ऋण राशि 21,100 करोड़ रूपए से अधिक थी।

भारतीय रिजर्व बैंक, राज्य सरकारों के सहयोग के साथ, कमजोर सहकारी बैंकों को मजबूत बनाने और सहकारी विकास में क्षेत्रीय असंतुलन कम करने के लिए बहुत से कदम उठाता रहा है। 1975-76 में इन प्रयासों को और तीव्र किया गया, ताकि कमजोर समितियां अपनी हानि, अशुद्ध ऋणों और बकाया ऋणों को समाप्त कर सकें। इसलिए कृषि पर राष्ट्रीय आयोग ने कृषक सेवा समितियों के गठन की सिफारिश की। ताकि ये केवल उधार ही नहीं, बल्कि सदस्यों को कृषि आदान और तकनीकी मार्गदर्शन दे सकें, जिससे वे बड़ी बहु-उद्देश्यीय समितियां बना सकें।

6.3.2 केन्द्रीय सहकारी बैंक

प्राथमिक साख समितियों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए जिला स्तर पर केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक का संचालन किया जाता है। भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना 1912 के सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत हुई है। इन बैंकों के हिस्सेदार कुछ निजी व्यक्ति होते हैं जो वित्त और प्रबन्ध दोनों की ही व्यवस्था करते हैं। सहकारी केन्द्रीय बैंकों की निधि (वित्तीय कोष) के तीन स्रोत हैं- उनकी अपनी हिस्सा पूंजी और आरक्षित कोषद्वारा जनता की जमा राशि और राज्य सहकारी बैंक से मिले ऋण) अधिकांश केन्द्रीय सहकारी बैंक राज्य सहकारी बैंक और प्राथमिक साख समितियों के मध्य मध्यस्त का कार्य करते हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंकों की स्थिति का तालिका (6.2) में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तालिका (6.2) केन्द्रीय सहकारी वित्त समिति की स्थिति

वर्ष	सहकारी समितियों की संख्या (हजार में)	साख वितरित (करोड़ रूपए में)
1950-51	505	83
1960-61	390	350
1970-71	341	894
1999-00	367	47,630

1950-51 में इनकी संख्या 505 थी जो 1960-61 में 390, 1970-71 में 341 तथा 1999-2000 में 367 हो गई और इनके द्वारा प्रदान की गई ऋण की मात्रा भी 1950-51 में 83 करोड़ रूपये, 1960-61 में 350 करोड़ रूपये, 1970-71 में 894 करोड़ रूपए तथा 1999-2000 में बढ़कर 47,630 करोड़ रूपए हो गई।

6.3.3 राज्य सहकारी बैंक

यह बैंक प्रत्येक राज्य में सहकारी साख संरचना का शीर्ष होता है। इसलिए इसे शीर्ष बैंक भी कहा जाता है। यह राज्य के केन्द्रीय सहाकारी बैंकों को वित्त प्रदान करता है और उनके कार्यों का निरीक्षण व नियन्त्रण करता है। यह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से उधार लेकर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक सहकारी समितियों की वित्तीय सहायता करता है।

राज्य सहकारी बैंकों की स्थिति को तालिका (6.3) से समझा जा सकता है। 1950-51 में इनकी संख्या 15 थी जो 1960-61 में बढ़कर 21, 1970-71 में 25 तथा 1999-2000 में 29 हो गई थी। इस दौरान राज्य सहकारी बैंक द्वारा प्रदान किए गए ऋणों में वृद्धि देखी गई जो 1950-51 में 42 करोड़ रूपए थी वह 1960-61 में 258 करोड़ रूपये, 1970-71 में 748 करोड़ रूपए तथा 1999-2000 में बढ़कर 38,250 करोड़ रूपए हो गई।

तालिका (6.3) राज्य सहकारी वित्त समिति की स्थिति

वर्ष	सहकारी समितियों की संख्या (हजार में)	साख वितरित (करोड़ रूपए में)
1950-51	15	42
1960-61	21	258
1970-71	25	748
1999-00	29	38,250

सहकारी साख की सबसे गम्भीर समस्या भरी बकाया ऋण है जिसके सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त अध्ययन दल (1974) ने अपनी रिपोर्ट में साफ कहा- "सहकारी समितियों में बकाया ऋणों के विद्यमान होने का मुख्य कारण मनोबल का अभाव और काश्ताकारों में अनुशासन की कमी है। सहकारी समितियों द्वारा दोषपूर्ण उधार नीति अपनाना, गैर जिम्मेदार सदस्यों के विरुद्ध तेजी से कार्यवाही करने में प्रबन्धकों का ढील व्यवहार तथा उचित वातावरण का अभाव इस परिस्थिति को बढ़ाने वाले अन्य कारण हैं।" कुल बकाया ऋणों में विलम्बित ऋणों की मात्रा 42 प्रतिशत है। यह अनुपात तमिलनाडू में 23 प्रतिशत से लेकर बिहार में 77 प्रतिशत तक है।

सहकारी साख समितियों को दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि काश्तकार, फसल-सहभाजक, भूमिहीन कृषि मजदूर और देहातों में काम करने वाले दस्तकार जो बहुत गरीब हैं और जिन्हें वित्त की अत्यन्त

आवश्यकता है। उन्हें कुल साख का मात्र 3 से 5 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। जिससे विभिन्न राज्यों में सहकारिता के लाभों के असमान वितरण की समस्या बनी रहेगी। उदाहरण के लिए 1976-77 में प्रति सदस्य दिए गए ऋणों की अखिल भारतीय औसत 278 रूपए थी जबकि गुजरात में यह राशि 278 रूपए, हरियाणा में 777 रूपए तथा पंजाब में 479 रूपए तक ऊँची थी परन्तु पश्चिम बंगाल में यह 178 रूपए, उत्तर प्रदेश में 169 रूपए और उड़ीसा में 114 रूपए तक नीची थी।

सहकारी समितियों की आन्तरिक समस्याएँ बहुत हैं। सरकार का इनके दैनिक कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप बहुत है। सदस्यों के आपसी झगड़े, समितियों के असन्तोषजनक प्रबन्धन, प्रबन्धकों का अपर्याप्त प्रशिक्षण, सदस्यों में लगन तथा समर्पण की भावना का अभाव, जिम्मेदारी की कमी, समितियों के वित्तीय साधनों में कमी तथा समितियों की केवल उत्पादनकारी उद्देश्यों के लिए ऋण देने की प्रथा आदि कुछ ऐसे कारण हैं जिन्होंने सहकारी साख के संतोषजनक विकास में कई प्रकार की बाधाएँ खड़ी की हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सहकारी साख समितियों ने प्रगति की है। किन्तु यह प्रगति अत्यन्त मन्द गति से हुई है। इसलिए सहकारी साख समितियों के संगठन में सुधार के साथ समय-समय पर प्रभावी अंकेक्षण तथा जांच की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिससे लोगों का विश्वास इन समितियों पर बढ़े और वह अपनी साख आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साहूकार व महाजनों के पास न जायें। इन समितियों की कार्यप्रणाली को सरल बनाया जायें। कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायें। बकाया ऋण वसूली की समुचित व्यवस्था की जायें। राजनैतिक हस्तक्षेप व गुटबन्दी को हतोत्साहित किया जाये। जिससे छोटे, मध्यम तथा भूमिहीन किसानों का विश्वास इन समितियों पर बढ़े और वह अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति इन समितियों के माध्यम से पूरी करें।

6.4 नाबार्ड- राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक

भारतीय रिजर्व बैंक ने स्थापना के प्रारम्भ से ही भारतीय कृषि विकास में विशेष रूचि प्रदर्शित की। इसलिए रिजर्व बैंक ने अपनी स्थापना के साथ ही एक पृथक कृषि विकास विभाग की स्थापना अपने संगठन में सम्मिलित की। रिजर्व बैंक राज्यीय स्तर के सहकारी बैंकों तथा भूमि विकास बैंकों के माध्यम से कृषि को अल्पकालीन मौसमी उधार के साथ मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन उधार की व्यवस्था करता रहा है। साथ ही रिजर्व बैंक ने कृषि पुनर्वित्त निगम की स्थापना की ताकि कृषि-विकास कार्यक्रमों, विशेषकर सावधि उधार सुविधाओं को विकसित दिया जा सके। इस हेतु एक ऐसे शिखर स्तर के बैंक की जरूरत हुई जो 'कृषि उधार' से 'ग्राम विकास' तक के सभी कार्यक्रमों का प्रतिपादन और कार्यान्वयन कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिसम्बर 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चौ. चरण सिंह के मंत्रिमण्डल द्वारा एक राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापित करने का निर्णय लिया गया। जिसको श्रीमति इन्दिरा गांधी की सरकार द्वारा साकार रूप दिया गया।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना के सम्बन्ध में 1981 में संसद में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसे 30 दिसम्बर, 1981 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई। 12 जुलाई, 1982 को एक शीर्षस्थ बैंक के रूप में नाबार्ड की विधिवत् स्थापना कर दी गई और 15 जुलाई 1982 से नाबार्ड ने अपना

कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसका मुख्यालय मुम्बई में है। इसके 4 जानेल कार्यालय तथा प्रत्येक राज्य में 28 क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की गई है। नाबार्ड 391 जिला विकास कार्यालय सहित, श्रीनगर में एक विशेष सेल है।

6.4.1 नाबार्ड की पूंजी

नाबार्ड की अधिकृत पूंजी 500 करोड़ रूपए है। और चुकता पूंजी 100 करोड़ रूपए है। जिसे समान रूप से केन्द्र सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जुटाया गया है। नाबार्ड अपने कोषों की पूर्ति सरकार द्वारा, विश्व बैंक द्वारा तथा अन्य संस्थाओं द्वारा प्राप्त कोषों से करता है। नाबार्ड की चुकता पूंजी 100 करोड़ रूपए से बढ़कर 1999-2000 में 2,000 करोड़ रूपए कर दी गई है।

6.4.2 नाबार्ड का प्रबन्ध

नाबार्ड का प्रबन्ध एक संचालन मण्डल द्वारा सम्पन्न होता है। जिसका गठन केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श पर किया जाता है। नाबार्ड के संचालन मण्डल में अध्यक्ष तथा प्रबन्ध संचालक होते हैं साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था व विकास के विशेषज्ञ रिजर्व बैंक के निदेशक, भारत सरकार तथा राज्य सरकार के अधिकारी होते हैं।

6.4.3 नाबार्ड के कार्य

नाबार्ड कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं में सर्वोच्च स्तर की संस्था है। निसन्देह सरकार एवं कृषि क्षेत्र को इस बैंक की सफलता पूर्वक भूमिका निर्वाह से अत्यधिक अपेक्षाएँ हैं। नाबार्ड को सफलतापूर्वक अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए निम्न कार्य सौंपे गये हैं-

1. ग्रामीण साख के क्षेत्र में नाबार्ड शीर्ष संस्था के रूप में कार्य करता है।
2. नाबार्ड अपने कृषि साख विभाग के माध्यम से सहकारी क्षेत्र की गतिविधियों पर नजर रखता है।
3. मौसमी कृषि कार्यों (फसल ऋणों) के लिए कृषि उत्पादन की बिक्री के लिए, उर्वरकों की खरीद व वितरण के लिए तथा सहकारी चीनी मिलों की कार्यशील पूंजी के लिए सहकारी बैंकों को अल्पकालीन ऋण (18 माह के लिए) प्रदान करता है।
4. निर्धारित कृषि उद्देश्यों, प्रसंस्करण समितियों के शेयरों की खरीद तथा प्राकृतिक विपदाओं से ग्रस्त इलाकों में अल्पकालीन ऋणों को मध्यमकालीन ऋणों में परिवर्तित करने के लिए यह राज्य सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण को मध्यमकालीन ऋण (18 माह से 7वर्ष तक के लिए) प्रदान करता है।
5. कृषि में बड़े निवेश कार्यों के लिए यह राज्य सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा व्यापारिक बैंकों को मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण (अधिक से अधिक 25 वर्ष के लिए) प्रदान करता है।
6. नाबार्ड सहकारी वित्त संस्थाओं की शेयर पूंजी में योगदान देने के लिए राज्य सरकारों को ऋणों के रूप में दीर्घकालीन सहायता (अधिकतम अवधि 20 वर्ष) प्रदान करता है।
7. केन्द्रीय एवं राज्य सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निरीक्षण की जिम्मेदारी नाबार्ड को सौंपी गई है।

8. नाबार्ड कृषि और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में अनुशासन को प्रोत्साहित करने के लिए अनुसंधान व विकास फण्ड रखता है। जिससे विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं के अनुसार परियोजना को बनाया जा सके

9. कृषि पुनर्वित्त विकास बैंकों के सभी कार्यों को नाबार्ड द्वारा किया जाता है।

6.4.4 नाबार्ड के कार्यों के प्रगति

नाबार्ड की स्थापना पर, वे सब ऋण जो रिजर्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा राज्य सहकारी बैंकों को दिये हुए थे। नाबार्ड को हस्तान्तरित कर दिये गये। इन ऋणों की मात्रा 750 करोड़ रूपए थी। नाबार्ड ने अपनी स्थापना के प्रथम वर्ष में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को 222 करोड़ रूपए तथा राज्य सहकारी बैंकों को 1574 करोड़ रूपए के ऋण दिये।

नाबार्ड विभिन्न परियोजनाओं (भूमि सुधार, कृषि यन्त्रीकरण, लघु सिंचाई योजनाओं, मुर्गीपालन, डेयरी, भेड़-बकरियों के पालन, कॉफी प्रसंस्करण, डिब्बाबंद, प्रदूषण नियंत्रण उपकरण, कृषि यंत्र मरम्मत केन्द्र, बागवानी, मछली पालन, भण्डारण तथा विपणन, ग्रामीण आवास तथा स्वयं सहायता समूह आदि को स्वीकृति प्रदान करता है। तथा इनके लिए वित्तीय सहायता देता है।

तालिका (6.4) में विभिन्न वर्षों में नाबार्ड द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के लिए प्रदत्त वित्तीय सहायता का विवरण दिया गया। नाबार्ड द्वारा 1970-71 में 458 परियोजनाओं की स्वीकृति दी गई जबकि यह संख्या 2003-04 में बढ़कर 130181 हो गई जबकि इसी दौरान कुल वित्तीय सहायता क्रमशः 293 करोड़ रूपए और 95299 करोड़ रूपए थी।

तालिका (6.4) नाबार्ड द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता

वर्ष	स्वीकृत परियोजनाओं की संख्या	कुल प्रदत्त वित्तीय सहायता (करोड़ रूपये)
1970-71	458	293
1975-76	2905	1333
1980-81	16574	4629
1985-86	42557	11423
1990-91	89513	23164
1995-96	118029	42236
2000-01	121097	71241
2001-02	122058	78775
2002-03	122555	86950
2003-04	130181	95299

Source- www.nabard.org

नाबार्ड द्वारा सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एव वाणिज्य बैंकों तथा अन्य एजेन्सियों को विभिन्न कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों के लिए दिये गये ऋणों का विवरण तालिका (6.5) में दिया गया है कि सहकारी बैंकों तथा वाणिज्य बैंकों को दी गई सहायता की प्रमुखता रही है जबकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को प्राप्त ऋण का हिस्सा काफी कम रहा। 1997-98 में नाबार्ड ने कुल 31,956 करोड़ रूपए ऋणों के रूप में दिये, जो 2002-03 में

बढ़कर 69,560 करोड़ रूपए हो गया जिसमें से सहकारी बैंकों को 23,636 करोड़ रूपए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को 6070 करोड़ रूपए, वाणिज्य बैंक को 39,774 करोड़ रूपए तथा शेष 80 करोड़ रूपए अन्य एजेन्सियों को दिये गये।

तालिका (6.5) विभिन्न एजेन्सियों को नाबार्ड द्वारा दिया गया पुनर्वित्त

(करोड़ रूपए)

एजेन्सी/वर्ष	1997-98	1998-99	1999-00	2001-02	2002-03
सहकारी बैंक	14,085	15,957	18,260	23,524	23,636
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	2,040	2,460	3,172	4,854	6,070
वाणिज्य बैंक	15,831	18,443	24,733	33,587	39,774
अन्य एजेन्सियां	-	-	103	80	80
कुल	31,956	36,860	44,612	53,504	69,560

Source- www.nabard.org

नाबार्ड जिन प्रयोजनों के लिए पुनर्वित्त सहायता देता है उनका विवरण तालिका (6.6) में दर्शाया गया है जिसके विश्लेषण से पता चलता है कि लघु सिंचाई, भूमि विकास, कृषि यंत्रीकरण, बागवानी, ग्रामीण आवास आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

तालिका (6.6) नाबार्ड के पुनर्वित्त का प्रयोजनवार विवरण

क्र.सं.	प्रयोजन	वर्ष (करोड़ रूपए)		
		2001-02	2002-03	2003-04
1	लघु सिंचाई	691.06	854.97	651.45
2	भूमि विकास	134.62	250.69	185.56
3	कृषि यंत्रीकरण	1358.89	992.60	827.51
4	बागवानी	280.34	292.03	250.75
5	डेरी विकास	821.18	909.19	669.15
6	मुर्गीपालन	69.81	76.21	87.51
7	भेड़ बकरी पालन	105.85	109.60	90.95
8	मत्स्य पालन	36.35	34.73	23.24
9	वानिकी	16.09	12.40	10.94
10	भण्डार व विपणन	227.14	48.47	25.38
11	एस जी एस वाई	558.98	401.29	229.45
12	गैर कृषि क्षेत्र	1115.65	1237.87	1332.98
13	ग्रामीण/आवास	500.25	769.53	1030.24
14	अजा/अजजा कार्य योजना	130.54	112.08	73.61
15	स्वयं सहायता समूह	395.26	622.47	705.44
16.	अन्य	240.90	694.64	1411.13
	कुल	6682.91	7418.77	7605.29

Source- www.nabard.org

6.4.5 ग्रामीण विकास में नाबार्ड की भूमिका-

नाबार्ड कृषि वित्त की शीर्ष संस्था है। इसलिए यह किसानों एवं अन्य ग्रामीण जनता को सीधे सहायता प्रदान नहीं करता अपितु सहकारी साख संस्थाओं, व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों आदि के माध्यम से सहायता प्रदान करता है। नाबार्ड के कार्यों के मुख्य रूप से 4 श्रेणियों में रखा जा सकता है। साख योजना, वित्तीय सेवायें, संवर्धन और विकास तथा निरक्षण व पर्यवेक्षण। जिन्हें नाबार्ड ने 28 क्षेत्रीय कार्यालयों तथा पोर्ट ब्लेयर में एक उपकार्यालय सहित 391 जिला विकास कार्यालयों द्वारा लागू करने का प्रयास किया है। नाबार्ड अपने कार्यों को निम्न कार्यक्रमों, परियोजनाओं तथा समूहों द्वारा करता है।

1. स्वयं सहायता समूह (SHGs)- नाबार्ड की प्रमुख सफलता की कहानियों में से एक स्वयं सहायता समूह है। जिसे 1992 में 500 स्वयं सहायता समूह है। जिसे 1992 में 500 स्वयं सहायता समूहों के रूप में बैंक से जोड़ने के उद्देश्य से प्रायोगिक आधार पर शुरू किया गया था। स्वयं सहायता समूहों गरीब लोगों का एक समूह है जिसमें सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े लोग अपनी आम समस्याओं पर काबू पाने के विचार से शामिल होते हैं। इन समूहों के सदस्यों को उनके द्वारा नियमित रूप से की गई बचत के आधार पर बैंक उन्हें अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण देता है। नाबार्ड के इस प्रयास में सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं ने भी भाग लिया।

नाबार्ड के स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम में 2010-11 तक 75 लाख स्वयं सहायता समूह इसमें से 47.8 लाख को बैंकों से सीधे ऋण प्रदान किया जा रहा है। 2010-11 के दौरान लगभग 12 लाख स्वयं सहायता समूहों को सभी वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये गये ऋण की राशि 14548 करोड़ रूपए थी। भारत सरकार के ग्रामीण गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत तकरीबन 27 प्रतिशत स्वयं सहायता समूहों को जोड़ दिया गया है।

2. किसान क्लब कार्यक्रम- किसानों को संगठित कर नवीनतम कृषि तकनीकों से परिचय कराकर बाजार तक पहुंच बढ़ाकर तथा उनकी तकनीकी जरूरतों का पूरा कर, उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाने में किसान क्लब कार्यक्रम महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। किसान क्लब उन्हें ऐसा मंच प्रदान करता है जहां किसान सामूहिक रूप से कृषि क्षेत्र की चुनौतियों का सामना करने के लिए संगठित प्रयास कर सकें। किसान क्लब कोई भी कम से कम 10 किसान मिलकर बना सकते हैं। जिसके एक गांव को ही प्राथमिकता देना चाहिए। इनका कार्य बैंक तथा ऋण प्राप्तकर्ता के बीच बेहतर तालमेल रखना, ऋण वसूली में बैंक की मदद करना, कृषि की आधारभूत सुविधाओं, कृषि आगतों, विपणन तथा अनुदान सम्बन्धी समस्याओं को हल करना, तथा खाद बीज, कीटनाशक की सामूहिक खरीद व फसल को क्लब के माध्यम से विक्रय को प्रोत्साहित करना है। 31 मार्च, 2007 तक किसान क्लब का विस्तार 534 जिलों के 48763 गांवों तक हो गया था।

3. ग्रामीण आधारसंरचना विकास निधि-1995-96 में 2000 करोड़ रूपए से पहला ग्रामीण आधार संरचना विकास निधि (RIDF-I) स्थापित किया गया। जिसका उद्देश्य राज्य सरकारों तथा कार्यरत निगमों को ग्रामीण आधारित परियोजनाओं के लिए वित्तीय साधन उपलब्ध कराया था। RIDF के

अन्तर्गत कई उद्देश्यों के लिए ऋण दिये जाते हैं जैसे सिंचाई परियोजनाएं, जलसंभर प्रबंध, ग्रामीण सड़कों व पुलों का निर्माण आदि। नाबार्ड द्वारा ग्रामीण आधार संरचना विकास निधि के अधीन दी गयी सहायता का विवरण तालिका (6.7) में दर्शाया गया है।

तालिका (6.7)

नाबार्ड द्वारा ग्रामीण आधार संरचना विकास निधि के अधीन दी गयी सहायता का विवरण

(करोड़ रूपए में)

RIDF	वर्ष	कोष राशि	स्वीकृति	वितरण	वितरण स्वीकृति के प्रतिशत
I से III	1995-97	7000	7290	6600	90-92
IV से VIII	1998-02	21500	21950	13470	78-40
IX	2003-04	5500	5440	990	18

परियोजनाओं अनुसार RIDF की 82 प्रतिशत राशि सिंचाई ग्रामीण सड़कों एवं पुलों के लिए इस्तेमाल की गयी। जिसका विवरण तालिका (6.8) में दिया गया है। एक अलग विण्डो के तहत 500 से कम आबादी वाले गांवों में ग्रामीण क्षेत्रों को जोड़ने के लिए 4000 करोड़ रूपए के कोष से भारत निर्माण परियोजना का समर्थन किया गया है।

तालिका (6.8)

उद्देश्यानुसार RIDF का प्रयोग

क्र. सं.	उद्देश्य	प्रतिशत भाग
1.	सिंचाई	35
2.	सड़कें एवं पुल निर्माण	47
3.	अन्य	18
	कुल	100

Source- www.nabard.org

- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना हेतु पुनर्वित्त-** नाबार्ड ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों को स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक दिशा निर्देश जारी किए हैं। स्वर्ण जयन्ती योजना के अधीन पुनर्वित्त सहायता के लिए भी आवश्यक दिशा निर्देश जारी किये हैं। स्वर्णजयन्ती योजना के अधीन पुनर्वित्त सहायता के लिए भी आवश्यक दिशा निर्देश जारी किए गए हैं। बैंकों को सलाह दी गई है कि वे स्वर्ण जयन्ती योजना समूहों की वर्गीकृत करने के लिए आवश्यक मापदण्ड तैयार करने के लिए नाबार्ड द्वारा जारी मापदण्डों की निदर्शी सूची को ध्यान में रखें।
- सहकारी विकास कोष-** नाबार्ड ने 1993 में सहकारी विकास कोष की स्थापना की। इस कोष का उद्देश्य सहकारी साख संस्थाओं की संगठनात्मक संरचना, मानव संसाधन विकास, संसाधन एकत्रण, ऋणों की वसूली इत्यादि गतिविधियों में सुधार व मजबूती लाना है। इस उद्देश्य के लिए राज्य सहकारी बैंकों, राज्य

- सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंकों, केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा प्राथमिक सहकारी बैंकों को अनुदान या आसान शर्तों पर ऋण के रूप में सहायता दी जाती है।
- 6. वाटरशेड विकास कार्यक्रम-** एक व्यापक भूमि संरक्षण सिंचाई तथा वर्षा जल के संरक्षण के द्वारा शुष्क क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास के तहत नाबार्ड ने ग्रामीण क्षेत्रों में जल संचयन तकनीक के निर्माण पर जोर दिया है। जिसके लिए नाबार्ड 200 करोड़ रूपए से वाटरशेड विकास कोष की स्थापना की है। जो 1999-2000 में 602.76 करोड़ रूपए हो गया जिसके द्वारा 14 राज्यों के 124 जिलों में वाटरशेड कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।
- 7. आदिवासी विकास और वाडी (WADI) दृष्टिकोण-** देश की आदिवासी आबादी का 8 प्रतिशत से अधिक बड़े पैमाने पर जंगलों, पशुधन और कृषि पर निर्भर करता है। इस लिए नाबार्ड ने वाडी के साथ मिलकर इन्हें इनके पैतृक निवास स्थान पर उत्पादन प्रसंस्करण तथा विपणन की सुविधाओं की व्यवस्था की। वाडी मॉडल भारतीय एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन के सहयोग से विकसित किया गया है। यह पर्यावरण विकास स्वास्थ्य सेवाओं व महिलाओं के विकास पर भी जोर देता है। इसने गुजरात में 10 वर्ष तथा महाराष्ट्र में 5 वर्ष पूरे करने के दौरान 410 गांवों के 27511 परिवारों को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित किया है।
- 8. जिला ग्रामीण उद्योग परियोजना (DRIP) -** बैंकों तथा जिले विशेष की विकास एजेन्सियों को ध्यान में रखते हुए जिला ग्रामीण उद्योग का शुभारम्भ किया। यह एक एकीकृत क्षेत्र के लिए साख गहनता कार्यक्रम है। जिसको 1993-94 में देश के 106 जिलों में स्थायी रोजगार के अवसर पैदा करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था।
- 9. ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम -** ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार उत्पन्न करने के लिए ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता कौशल विकास की आवश्यकता महसूस की गई। इसलिए नाबार्ड के समर्थन से ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम का प्रचार किया गया जिससे ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वयं का उद्यम स्थापित करने के लिए प्रेरित व प्रशिक्षित किया जा सके। अब तक 7793 ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम द्वारा 2.32 लाख युवाओं को प्रशिक्षित किया गया है।
- 10. ग्रामीण विपणन-** ग्रामीण हाट, मेलों, प्रदर्शनियों तथा विपणन मेलों में भागीदारी से नाबार्ड अपने प्रचार कार्यक्रमों के तहत वित्तीय सहायता देता है। जिससे ग्रामीण कारीगरों व उद्यमियों को अपने उत्पादन के बाजार मिलता है और वह अपने उत्पादन का शहरी व देहाती बाजार में प्रदर्शन कर सकते हैं जिससे उनके उत्पाद प्रतिभा का प्रचार होता है।
- 11. ग्रामीण अभिनव कोष-** नाबार्ड ने स्विस विकास व सहकारी एजेन्सी के सहयोग से नाबार्ड एसडीसी ग्रामीण अभिनव कोष की स्थापना की है जो कृषि, गैर कृषि तथा लघु वित्त के क्षेत्र में आजीविका सृजन के अभिनव व नवीन परियोजनाओं का समर्थन करता है। सरकारी, गैर सरकारी संस्थान, निगमित निकायों, वित्तीय संस्थानों और व्यक्तियों को नये उत्पादों, प्रक्रियाओं, प्रौद्योगिकी आदि गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। जो गरीबों के विकास में शामिल हो।

- 12. नाबार्ड परामर्श सेवाएं (NABCONS)** - यह नाबार्ड की एक पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कम्पनी है जो कृषि और सम्बन्धित गतिविधियों के लिए व्यावसायिक परामर्श सेवाएँ प्रदान करती है। 31 मार्च 2007 के इसने संचयी रूप से 467 राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय कार्य अनुबन्धित किया यह परियोजना तैयार करने, मूल्यांकन वित्तीय व्यवस्था, परियोजना प्रबन्धन व निरीक्षण, कृषि व्यापार इकाईयो का पुनर्गठन, ग्रामीण विकास विषयों पर सम्मिनार का आयोजन, प्रशिक्षण आदि को बढ़ावा देती है।
- 13. सहवित्त पोषण** - यह अनुभव किया गया कि बैंका उच्च तकनीकी व बड़े पैमाने के निर्यात आधारित परियोजनाओं में ऋण जोखिम के कारण वित्त प्रदान करने में सावधानी बरत रहें है। इसलिए नाबार्ड ने बैंकों में विश्वास पैदा करने और ऐसी परियोजनाओं के लिए ऋण सुविधा सुनिश्चित करने के लिए 14 वाणिज्य बैंकों के साथ सहवित्त पोषण समझौता किया है। वर्ष 2006-07 इसके तहत सात परियोजनाओं का 145.42 करोड रूपए था। फूलों की खेती, जैविक खेती, दुग्ध, प्रसंस्करण, इथेनाल उत्पाद और कृषि प्रसंस्करण परियोजना को अभितिक स्वीकृति दी गई।
- 14. किसान क्रेडिट कार्ड योजना** - किसानों को अल्पकालीन ऋण सहायता प्रदान करने के लिए 1998-99 से किसान क्रेडिट कार्ड योजना शुरू की गई। नाबार्ड ने इस प्रक्रिया में तेजी लाने के प्रयास किए है। इसके परिणामस्वरूप यह लोकप्रिय हो रही है। तथा इसका कार्यान्वयन 27 बैंकों, 378 केंद्रिय सहकारी बैंकों तथा 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से किया जा रहा है। इस कार्ड की राशि की सीमा का निर्धारण किसान की सम्पूर्ण वर्ष की साख आवश्यकता, तथा कृषि, उत्पादन क्रियाओं को ध्यान में रख कर किया जाता है। यह कार्ड तीन वर्ष के लिए मान्य होगा, जिसका प्रत्येक वर्ष पुर्ननिरीक्षण करवाना आवश्यक होगा। कार्ड से प्राप्त राशि को 12 माह में वापस चुकाना होगा। कार्ड से किसान 5000रू और इससे अधिक उत्पादन साख और इससे अधिक राशि की उत्पादन साख प्राप्त करने हुतु योग्य है। किसान क्रेडिट कार्ड धारकों को वैयक्तित दुर्घटना बीमा की सुविधा प्रदान की गई है मृत्यु या स्थायी अपंगता और आशिक अपंगता के लिए क्रमशः 50,000 और 24,000 रूपए का प्रावधान किया गया है। 1998-99 में कुल 607 किसान क्रेडिट कार्ड द्वारा 2084 करोड रूपए राशि स्वीकृत की गई। 1998 से 2009 तक 878.30 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके थे। इनमें से 48 प्रतिशत सहकारी बैंकों ने, 13 प्रतिशत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने तथा 39 प्रतिशत वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गए।

नाबार्ड कृषि वित्त की शीर्ष सस्था है। जिनके मुख्य तीन कार्य है- पुनर्वित्त, संस्थात्मक विकास तथा अन्य बैंकों की कार्यविधि का निरीक्षण। परन्तु इस बैंक ने पुनरोर्वित पर ही ज्यादा जोर दिया है। और अन्य दो कार्यो पर कम ध्यान दिया है। इसके अतिरिक्त नाबार्ड के अधिकांश कर्मचारी मुख्य कार्यालय अथवा क्षेत्रीय कार्यालयों में ही काम कर रहें है। जिस कारण नाबार्ड स्थानिय वास्तविकताओं से पूरी तरह अपरिचित है। और बहुत बडी संख्या में निर्धन परिवार ऐसे है जो नाबार्ड की योजनाओं के लाभ से वंचित है नाबार्ड अभी तक सहकारी संस्थाओं संस्थओं की प्रबन्ध व्यवस्थओं को सुधार पाया है क्योंकि इन संस्थओं में राज्य सरकारों का हस्तक्षेप अभी भी जारी है।

6.5 वैद्यनाथ समिति

ग्रामीण सहकारी साख संरचना के पुनरूद्धार पर टास्क फोर्स - देश में ग्रामीण सहकारी साख संस्थाओं को मजबूत बनाने के सुझाव देने के लिए वित्त मंत्रालय ने अगस्त 2004 में **अर्थशास्त्री ए. वैद्यनाथ** की अध्यक्षता में ग्रामीण सहकारी साख संरचना के पुररूद्धार पर कार्यदल का गठन किया था, कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट वित्त मंत्री **पी. चिदम्बरम** को 5 जनवरी 2005 में प्रस्तुत की। कार्यदल का मसौदा जनवरी 2006 को सार्वजनिक टिप्पणी के लिए रखा गया, उसके बाद कार्यदल ने अगस्त 2006 को अपनी अन्तिम रिपोर्ट सरकार को पेश की।

कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारत में सहकारी साख संरचना प्रशासनिक, प्रबन्धकीय तथा वित्तीय सभी आधार पर कमजोर व निष्क्रिय हो चुकी है। तथा इसे पुनः संरचना तभी सम्भव हो सकेगी जब राज्य सरकारें वैधानिक और संस्थात्मक सुधार लागू करें। कार्यदल के अनुसार वित्तीय सहायता निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए दी जानी चाहिए-

1. संचित हानि को आमूल समाप्त करने के लिए,
2. राज्य सरकारों द्वारा दी गई ऐसी गारंटियों को पूरा करने के लिए जिनका भुगतान नहीं किया गया है।
3. एक निर्धारण स्तर तक पूंजी का स्तर बढ़ाने के लिए,
4. सरकार की हिस्सा पूंजी के भुगतान के लिए,
5. तकनीकी सहायता के लिए।

कार्यदल ने सहकारी समितियों को मजबूत बनाने के लिए बहुत से सुझाव दिये हैं जैसे इन समितियों के प्रशासनिक व वित्तीय कामकाज में सहकारी हस्तक्षेप कम करना, सहकारी समितियों को यह स्वतन्त्रता देना, कि वे अपने से ऊपर की इकाई के अलावा किसी भी अन्य वित्तीय संस्था से ऋण ले सकती है। समय पर सहकारी समितियों में चुनाव की व्यवस्था करना आदि।

कार्यदल के सुझावों पर काम करते हुए भारत सरकार ने जनवरी 2006 में अल्पकालीन ग्रामीण सहकारी संरचना के पुनरूत्थान के लिए एक पैकेज की घोषणा की, जिसमें 13496 करोड़ रूपए की वित्तीय सहायता का प्रावधान है। इस उद्देश्य के लिए नाबार्ड को कार्यान्वयन संस्था चुना गया है। प्रत्येक राज्य में एक राज्य स्तरीय कार्यदल की स्थापना की जाये जो समय-समय पर सहकारी साख बैंक तथा राज्य सहकारी बैंक की समीक्षा व पर्यवेक्षण करें। किसी भी राज्य में पुररूद्धार पैकेज को लागू करने की प्रक्रिया भारत सरकार, राज्य सरकार और नाबार्ड के बीच समझौता ज्ञापन (MOU) पर हस्ताक्षर के साथ शुरू होगी। राष्ट्रीय क्रियान्वन एवं निरीक्षण समिति द्वारा MOU को अन्तिम रूप दिया जाएगा। अभी तक 25 राज्यों में कार्यदल की रिपोर्ट का कार्यान्वयन शुरू हो गया है जहाँ भारत सरकार और नाबार्ड ने डब्लू पर हस्ताक्षर किये हैं।

6.6 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. भारत में सहकारी साख आन्दोलन का प्रारम्भ में हुआ था।
2. प्राथमिक कृषि साख समिति की ब्याज दर लगभग प्रतिशत निर्धारित की गई है।

3. मार्च 1999 के अंत तक, प्राथमिक समितियों की बकाया ऋण राशि..... करोड़ रूपए से अधिक थी।
4. राज्य में शीर्ष सहकारी संस्था होती है।
5. कृषि वित्त की सर्वोच्च संस्था के रूप में एक शीर्षस्थ बैंकों के रूप में की स्थापना की गई।
6. नाबार्ड मुख्यालय में है। इसके जनेल कार्यालय तथा प्रत्येक राज्य में क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की गई है।
7. नाबार्ड की चुकता पूंजी 100 करोड़ रूपए से बढ़कर 1999-2000 में..... करोड़ रूपए कर दी गई है।
8. वर्तमान समय में नाबार्ड के अध्यक्ष है।
9. परियोजनाओं अनुसार RIDF की प्रतिशत राशि सिंचाई ग्रामीण सड़कों एवं पुलों के लिए इस्तेमाल की गयी।
10. किसानों को अल्पकालीन ऋण सहायता प्रदान करने के लिए से किसान क्रेडिट कार्ड योजना शुरू की गई।
11. में अर्थशास्त्री ए. वैद्यनाथ की अध्यक्षता में ग्रामीण सहकारी साख संरचना के पुररूद्धार पर कार्यदल का गठन किया था।

एक वाक्य में उत्तर दो -

1. प्राथमिक सहकारी वित्त समिति, किसे कहते हैं?
2. 1999-2000 में प्राथमिक सहकारी वित्त समिति कितनी थी?
3. भारत में केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना किस अधिनियम के अन्तर्गत हुई?
4. सहकारी केन्द्रीय बैंकों की निधि (वित्तीय कोष) के कितने स्रोत हैं?
5. जारी किए जा चुके किसान क्रेडिट कार्ड में से कितने प्रतिशत कार्ड सहकारी बैंको द्वारा जारी किये गए?
6. 2000 करोड़ रूपए से कब पहला ग्रामीण आधार संरचना विकास निधि (RIDF-I) स्थापित किया गया?
7. नाबार्ड ने कब सहकारी विकास कोष की स्थापना की?
8. 1998 से 2009 तक कितने किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके थे?

6.7 सारांश

कृषि वित्त व्यवस्था में सहकारी साख समितियों का महत्वपूर्ण स्थान है और भारत में सहकारी साख का इतिहास बहुत पुराना है। वस्तुतः सहकारी समितियों की शुरुआत 1904 में की गई थी। स्वतन्त्रता के बाद इनका विकास तेजी से हुआ। भारत में सहकारी साख संगठन का स्वरूप संघीय है। सबसे नीचे ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक सारव समितियां हैं। इसके ऊपर जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं। सबसे ऊपर राज्य सहकारी बैंक होते हैं। दीर्घकालीन सहकारी साख के लिए कृषि और ग्रामीण विकास बैंक है।

संस्थागत कृषि वित्त व्यवस्था में नाबार्ड का महत्वपूर्ण स्थान है। यह कृषि हेतु पुनर्वित्त की व्यवस्था करता है। इसकी स्थापना 12 जुलाई 1982 को की गई। इसका मुख्यालय मुम्बई में है तथा 4 जोनल कार्यालयों सहित 28 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। इसका प्रबन्ध एक संचालन मण्डल द्वारा होता है। नाबार्ड के मुख्य तीन कार्य हैं- कृषि पुनर्वित्त, संस्थात्मक विकास तथा अन्य बैंको की कार्यविधि का निरीक्षण। इस हेतु नाबार्ड ने अनेक कार्यक्रम कोष तथा परियोजनाओं की व्यवस्था की जैसे- स्वयंसहायता समूह, किसान क्लब कार्यक्रम, ग्रामीण आधार संरचना विकास कोष, सहकारी विकास कोष, वाटशेड कार्यक्रम, ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम, ग्रामीण विपणन, ग्रामीण अभिनव कोष, तारबाड परामर्श सेवायें तथा किसान क्रेडिट कार्ड आदि।

यद्यपि नाबार्ड ने कृषि वित्त के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं परन्तु सहकारी बैंको ही व्यवस्था का अभी भी सुधार नहीं हो पाया है। इसलिए वैद्यनाथ समिति की सिफारिशों के मद्देनजर नाबार्ड ने 25 राज्यों में भारत सरकार के साथ सहकारी बैंको में संरचनात्मक सुधार हेतु समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये हैं।

6.8 शब्दावली

- **कृषि साख-** वह ऋण (साख) जो कृषि कार्य हेतु लिया जाता है।
- **अनुदान/रियायत** - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **काश्तकार-** ऐसे किसान/व्यक्ति जो दूसरे की भूमि पर फसल उगायें।
- **फसल सहभाजक-** फसल उत्पादन में समय हिस्सेदार।
- **कृषि विपणन-** कृषि उत्पादन की विक्रय/बिक्री व्यवस्था।
- **वाडी (WADI)** - गुजराती शब्द जिसका अर्थ “छोटा सा बाग” है।
- **अभिनव-** नये प्रयोग व अविष्कार।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

- | | |
|---------------------------|--|
| 1. 1904 में | 2. 6 प्रतिशत |
| 3. 21,100 करोड़ रूपए | 4. राज्य सहकारी बैंक |
| 5. 12 जुलाई 1982 ;नाबार्ड | 6. मुम्बई ; 4 जोनल कार्यालय ;28 क्षेत्रीय कार्यालयों |
| 7. 2,000 करोड़ रूपए | 8. डॉ. प्रकाश बख्शी |
| 9. 82 प्रतिशत | 10. 1998-99 |
| 11. अगस्त 2004 | |

एक वाक्य में उत्तर दो –

1. प्राथमिक कृषि साख समिति दस या अधिक व्यक्तियों से आरम्भ की जा सकती है। ये व्यक्ति साधारणतया एक ही गाँव के होने चाहिए। गरीब से गरीब किसान भी समिति का सदस्य बन सकता है।

2. 92
3. 1912 के सहकारी अधिनियम
4. तीन स्रोत है- उनकी अपनी हिस्सा पूंजी और आरक्षित कोषद्व जनता की जमा राशि और राज्य सहकारी बैंक से मिले ऋण
5. 48.21 प्रतिशत
6. 1995-96 में
7. 1993 में
8. 878.30 लाख ।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यादव सुबह सिंह, *ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका* (नवम्बर 2010), प्रतियोगिता दर्पण; आगरा।
- पंत नवीन, *ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं* (फरवरी 2010), योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- यादव सावित्री, *किसान क्रेडिट कार्ड से खत्म हुई किसानों की ऋणग्रस्तता* (जून 2011), कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ. शिव भूषण, (2010) *कृषि अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन आगरा।
- माथुर बी. एल., (2011) *कृषि अर्थशास्त्र*, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- सोनी आर. एन., (2007) *कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय*, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा
- मिश्र एस. के. पुरी, वी. के., (2008) *भारतीय अर्थशास्त्र*, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
- मामेरिया डॉ. चतुर्भुज एवं जैन डॉ. एस. सी (1995) *भारतीय अर्थशास्त्र*, प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- दत्त रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम., (2007) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

6.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949), *Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), *Agriculture and Economic Development*, Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), *Fundamentals Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), *Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): *Indian Agricultural Development since Independence*, Oxford & IBH, New Delhi.

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि वित्त में सहकारी साख समितियों की भूमिका की विवेचना करो।
2. “नाबार्ड में कृषि वित्त व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है” कथन का मूल्यांकन करो।
3. सहकारी साख समितियों के संगठन पर प्रकाश डालते हुए वैद्यनाथ समिति की सिफारिशों की चर्चा करो।

इकाई 7- वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका, कृषि ग्रामीण वित्त संस्थान (Role of Commercial Banks, Non-Agricultural Rural Finance Institute)

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 वाणिज्य बैंक तथा कृषि वित्त
- 7.4 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा वाणिज्य बैंकों के लिए कृषि वित्त के मार्गदर्शी सिद्धान्त
- 7.5 कृषि वित्त हेतु वाणिज्य बैंकों द्वारा उठाये गये कदम
- 7.6 कृषि वित्त उपलब्धता में वाणिज्य बैंकों की भूमिका की समीक्षा
- 7.7 गैर कृषि ग्रामीण वित्त संस्थान
- 7.8 अभ्यास प्रश्न
- 7.9 सारांश
- 7.10 शब्दावली
- 7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में वाणिज्य बैंकों की कृषि वित्त व्यवस्था पर प्रकाश डाला जायेगा तथा कृषि वित्त में वाणिज्य बैंकों की भूमिका की समीक्षा की जायेगी तथा गैर कृषि ग्रामीण वित्त संस्थानों की चर्चा की जायेगी। इसके अध्ययन से आप कृषि वित्त में वाणिज्य बैंक के योगदान को समझ सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ वाणिज्य बैंकों द्वारा की गई कृषि वित्त व्यवस्था को समझ जायेंगे।
- ✓ रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्य बैंकों के लिए कृषि वित्त के मार्गदर्शी सिद्धान्तों को समझ जायेंगे।
- ✓ वाणिज्य बैंकों द्वारा कृषि वित्त हेतु उठाये गये कदमों को जान जायेंगे।
- ✓ गैर कृषि ग्रामीण वित्त संस्थानों को जान जायेंगे।

7.3 वाणिज्य बैंक तथा कृषि वित्त

कृषि वित्त में वाणिज्य बैंकों की दिलचस्पी पहली बार तब शुरू हुई जब 1955 में स्टेट बैंक की सहायता के पश्चात् सहकारी प्रसंस्करण और विपणन समितियों को ऋण सुविधाओं की व्यवस्था की गई। स्टेट बैंक और उसके सहायक बैंकों ने अर्द्धनगरीय और ग्राम क्षेत्रों में शाखाओं का एक जाल बिछा दिया। लेकिन काफी लम्बे समय तक वाणिज्य बैंकों का कृषि वित्त में हिस्सा बहुत कम था। कुल ऋण में वाणिज्य बैंकों का हिस्सा 1950-51 में 0.9 प्रतिशत तथा 1961-62 में 0.7 प्रतिशत था। कृषि व ग्रामीण साख की बढ़ती हुई आवश्यकताओं और वाणिज्य बैंकों की अत्यन्त सीमित भूमिका के कारण सरकार ने जुलाई 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। राष्ट्रीयकरण के समय जून 1969 में भारत में वाणिज्य बैंकों की कुल 8262 शाखाएं थी जिनमें से केवल 1833 शाखाएं अर्थात् 22.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में थी और वाणिज्य बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्र में कुल संस्थागत साख का 1.6 प्रतिशत भाग उपलब्ध कराया। सरकार ने 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सी शाखाएं खोली और ग्रामीण वित्त में अपने योगदान में काफी वृद्धि की। जून 2006 के अन्त तक वाणिज्य बैंकों की कुल संख्या 69,616 थी जिसमें से 30,754 अर्थात् 44 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में थी। 30 जून 2009 तक व्यापारिक बैंको की संख्या 80514 थी जिसमें से 39.53 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत थी। कृषि वित्त में वाणिज्य बैंकों की हिस्सेदारी 1950-51 में मात्र 0.9 प्रतिशत थी जो 1971 में 2.6 प्रतिशत, 1981 में 29.4 प्रतिशत, 1991 में 33.7 प्रतिशत तथा 2001 में बढ़कर 33.4 प्रतिशत हो गई। 2005-06 में वाणिज्य बैंकों ने 1,25,859 करोड़ रूपए का कृषि वित्त प्रदान किया जो इस वर्ष दिए गए कुल संस्थागत ऋण का 70 प्रतिशत था।

प्राथमिकता वाले क्षेत्रों (कृषि, लघु उद्योग, लघु व्यवसाय आदि) को ऋण देने के लिए रिजर्व बैंक ने वाणिज्य बैंकों के सामने कुछ लक्ष्य रखे गये हैं। जैसे वाणिज्य बैंक अपने कुल ऋण का 40 प्रतिशत भाग प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को प्रदान करेंगे। जिसमें से कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का कुल बैंक ऋण का 18 प्रतिशत दिया जाएगा। मार्च 1994 के अन्त तक बैंकों ने 37.8 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को दिया। जहां तक कृषि

क्षेत्र की साख का हिस्सा 13.7 प्रतिशत था। मार्च 2006 के अन्त तक बैंकों ने 40.2 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को प्रदान किया। कृषि क्षेत्र को 15.3 प्रतिशत ऋण प्रदान किया।

7.4 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा वाणिज्य बैंकों के लिए कृषि वित्त के मार्गदर्शी सिद्धांत

सन् 1970 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने वाणिज्य बैंकों को एक परिपत्र द्वारा कृषि सम्बन्धी ऋण उपलब्ध कराने के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत प्रस्तावित किये, जिसमें वाणिज्य बैंकों को कृषि ऋण देने का औचित्य, नीतियां एवं कार्य विधि स्पष्ट हो जाए-

1. **ऋण के मानदण्ड एवं सीमा-** वाणिज्य बैंक न केवल पहले से सक्षम किसानों को ऋण उपलब्ध कराये परंतु इन्हें सीमान्त, माध्यम तथा लघु किसानों को ऋण उपलब्ध कराते हुए उनकी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करना होगा।
2. **प्रतिभूति का मार्जिन-** वाणिज्य बैंकों को किसानों के प्रति उदार रूख अपनाना चाहिए और उन्हें कम मार्जिन पर ऋण उपलब्ध कराने चाहिए। अधिकतर वाणिज्य बैंक 25 प्रतिशत मार्जिन रखते हुए किसानों को उधार उपलब्ध कराते हैं और इसे यथा सम्भव कम करना चाहिए।
3. **किसानों के लिए ऋणों के विरूद्ध प्रतिभूति-** जहां तक उत्पादक ऋणों का सम्बन्ध है। अल्पकालीन वित्त के लिए केवल फसलों को जमानत की तरह रखना काफी होगा। इसके अतिरिक्त बैंक मशीनरी, भूमि बन्धक रखकर, सोने के आभूषणों को गिरवी रखकर या किसी एक या दो व्यक्तियों की गारंटी के आधार पर भी ऋण दे सकते हैं। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य किसानों को आवश्यक प्रतिभूति के बिना कठिनाई के ऋण प्राप्त कराना है।
4. **बकाया ऋण की वसूली-** वाणिज्य बैंकों को उचित नियम एवं कार्यविधि का निर्माण करना होगा, ताकि उन परिस्थितियों को निर्धारित किया जाये। जिनमें फसल के दुर्घटनावश नष्ट होने पर ब्याज की माफी दी जा सके और किसानों को ऋण लौटाने में राहत दी जा सके अर्थात् अल्पकालीन ऋण को मध्यकालीन या दीर्घकालीन ऋण में परिवर्तित किया जा सके।
5. **समन्वय की आवश्यकता-** प्रारम्भिक अवस्थाओं में जब वाणिज्य बैंकों ने ग्राम-वित्त में प्रवेश किया, तब अपरिहार्य दोहरापन हुआ और यह पाया गया कि एक से अधिक वाणिज्य बैंक और सहकारी समितियों ने एक ही ऋण प्राप्तकर्ता को उसी उद्देश्य और उसी प्रतिभूति के विरूद्ध ऋण दे दिया। इस प्रकार के दोहरापन को दूर करना होगा।

इसके अतिरिक्त बैंकों के प्रबन्धकों और सहकारी समितियों के अधिकारियों को मिलकर वित्त का रूप एवं मात्रा तय करनी होगी। इसके साथ-साथ राज्य सरकारों और वाणिज्य बैंकों के बीच लगातार परामर्श और विचार-विनिमय होना चाहिए और वाणिज्य बैंकों द्वारा किसानों को उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं की जानकारी राज्य सरकारों को देनी चाहिए।

कृषि वित्त (फार्म उधार) पर रिजर्व बैंक के नए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के लिए श्री आर. पी. गुप्त की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की जिसने अप्रैल 1998 को अपनी निम्न सिफारिशें दी-

1. 2 लाख रूपए से अधिक के ऋणों पर सहकारी समितियों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तरह वाणिज्य बैंकों को भी ब्याज दर निश्चित करने की स्वतंत्रता दी जाये।
2. कृषि वित्त के लिए 18 प्रतिशत के लक्ष्य को समाप्त करना ताकि कृषि वित्त हेतु आवश्यकता के समय अधिक वित्त की व्यवस्था की जा सकें।
3. वाणिज्य बैंकों को अपने सेवा क्षेत्रों के बाहर जाने की इजाजत देनी चाहिए और ऋण प्राप्तकर्ताओं को किसी भी बैंक के पास जाने की छूट होनी चाहिए।
4. वाणिज्य बैंकों को किसानों की सभी अल्पकालीन ऋण आवश्यकताओं के लिए एक संयुक्त ऋण पैकेज का निर्माण करना चाहिए।
5. किसानों की प्रवृत्ति सोने ओर जमीन पर निवेश करने के लिए एक तरल बचत पैकेज तैयार करना चाहिए। मई 1998 में भारतीय रिजर्व बैंक ने गुप्त समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और वाणिज्य बैंकों को इन्हें लागू करने के लिए कार्यवाही करने का निर्देश दिया।

7.5 कृषि वित्त हेतु वाणिज्य बैंकों द्वारा उठाये गये कदम

राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्य बैंकों ने कृषि तथा ग्रामीण वित्त प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे किसानों को कृषि आगत खरीदने के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है। नई कृषि व्यवस्था में बढ़ते पैमाने के लाभ कों प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र हेतु बढ़ी मात्रा में वित्त की आवश्यकता है।

एक अध्ययन के अनुसार भारत में बैंकों की शाखाओं के विस्तार से उर्वरकों की माँग में लगभग 23 प्रतिशत, ट्रैक्टरों के निवेशस्तर में 13 प्रतिशत, सिंचाई पम्पों में 41 प्रतिशत, दुधारू पशुओं में 46 प्रतिशत तथा भारवाही पशुओं में लगभग 38 प्रतिशत वृद्धि हुई है। वाणिज्य बैंकों की शाखाओं में 10 प्रतिशत वृद्धि होने से पशुओं तथा सिंचाई पम्पसेटों में निवेश में 4 से 8 प्रतिशत के बीच वृद्धि होती है।

इससे स्पष्ट होता है कि वाणिज्य बैंकों के शाखा विस्तार से हाल के वर्षों में भारत के कृषि विकास व आधुनिकीकरण में सहायता मिली है। इसके अलावा बहुत से ग्रामीणों को महाजनों के चगुल से छुटकारा मिला है। कृषि वित्त की व्यवस्था हेतु वाणिज्य बैंकों ने मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न कार्यक्रम, योजनाओं व व्यवस्था के विस्तार पर जोर दिया। जिससे ग्रामीण वित्तीय व्यवस्था का विस्तार किया जा सके।

1. वाणिज्य बैंकों द्वारा प्रायोजित बैंक (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक) - 1970 के दशक के मध्य में रिजर्व बैंक ने

एक कार्यदल गठित किया था। जिसने ग्रामीण साख में वाणिज्य बैंकों की भूमिका पर संतोष व्यक्त किया, लेकिन फिर भी 1974 में इन बैंको के कुल ऋण में हिस्सा मात्र 16 प्रतिशत ही था। इसलिए कार्यदल की रिपोर्ट की समीक्षा के पश्चात् क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना करने का निर्णय किया गया। 2 अक्टूबर, 1975 को 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद और गोरखपुर में, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में जयपुर और पश्चिम बंगाल में माल्डा में) की स्थापना की गई। ये बैंक देश के उन पिछड़े तथा जनजातीय क्षेत्रों में स्थापित किए गए थे। जहां पर वाणिज्य बैंकों तथा सहकारी बैंकों की सेवायें, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं थीं। 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या 6 तथा शाखाओं की संख्या 200 थी जो 2003 में बैंकों की संख्या 196 तथा शाखाओं की संख्या बढ़कर 14,507 हो गई है। इन बैंको के

ऋणों का 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों को दिया जाता है। देश के कुल कृषि ऋण प्रवाह में क्षेत्रीय बैंकों का हिस्सा लगभग 8 प्रतिशत है।

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूंजी 1 करोड़ रूपए निर्धारित की गई है। यह अधिकृत पूंजी केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक एवं प्रायोजित बैंक की सलाह से कम कर सकता है, किन्तु यह 25 लाख रूपए से कम नहीं होगी। जिसमें 50 प्रतिशत केन्द्रीय सरकार, 15 प्रतिशत राज्य सरकार एवं 35 प्रतिशत प्रायोजित बैंक द्वारा प्रदान की जायेगी। 12 जुलाई 1982 को इन बैंकों का नियन्त्रण रिजर्व बैंक ने नाबार्ड को सौंप दिया था।

यद्यपि इन बैंकों की स्थापना ग्रामीण साख के विस्तार के लिये की गई थी, परन्तु इन बैंकों के क्षेत्रीय वितरण में असमानता है। जिसमें से अधिकांश क्षेत्रीय बैंक घाटे में चल रहे हैं, जिस कारण उन्हें वित्तीय कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। इस लिए स्वीकृत ऋणों के प्रयोग का निरीक्षण किया जाना चाहिए जिससे ऋण उसी कार्य में लगे जिसके लिए स्वीकृत किया गया है और समय पर ऋण वापसी हो सके।

2. अग्रणी बैंक परियोजना- 1969 में रिजर्व बैंक के अनुरोध पर अग्रणी बैंक परियोजना का प्रारम्भ किया

गया। यह परियोजना उन क्षेत्रों के लिए थी जहां बैंकों की सुविधायें बहुत कम थीं। ऐसे क्षेत्र के प्रत्येक जिले में, एक वाणिज्य बैंक को एक प्रमुख बैंक (अग्रणी बैंक) के रूप में चुना गया। उस जिले के लिए, विशेषकर कृषि क्षेत्र तथा अन्य प्राथमिक क्षेत्रों के लिए, बैंकों की सेवाओं को उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी, अग्रणी बैंक के लिए एक सलाहकार कमेटी होती है। जिसमें राज्य सरकार, अनुसूचित बैंकों तथा उस जिले में काम कर रही अन्य वित्तीय संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित किए गए हैं। यह सलाहकार कमेटी कृषि तथा दूसरे प्राथमिक क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न वित्तीय परियोजनाओं के बारे में निर्णय लेती है।

3. ग्राम अंगीकरण परियोजना- यह योजना अग्रणी बैंक योजना के पश्चात् शुरू की गई थी। क्योंकि अग्रणी बैंकों के कार्यों की समीक्षा से ज्ञात हुआ कि ये बैंक छोटे तथा सीमान्त किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सके। इसलिए अग्रणी बैंकों को सुझाव दिया गया कि वह अपने जिले के कुछ जरूरतमंद गांवों का चयन कर वहां के सभी किसानों को पर्याप्त मात्रा में वित्तीय सुविधायें उपलब्ध करायें।

4. सेवा क्षेत्र परियोजना- इस परियोजना का उद्देश्य देश के वाणिज्य बैंकों तथा सहकारी समितियों के आपसी समन्वय द्वारा, देश के लगभग 6 लाख गांवों में साख सुविधाओं को उपलब्ध कराता है। प्रत्येक वाणिज्य बैंक को 15 से 20 गांवों की साख की आवश्यकताओं की समीक्षा करने तथा उनको पूरा करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। प्रत्येक बैंक अपने सौंपे हुए क्षेत्र में सहकारी समितियों से मिलकर साख सुविधायें उपलब्ध करवाने का प्रयास करता है।

5. गहन केन्द्र परियोजना- ग्राम अंगीकरण परियोजना के अतिरिक्त स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया ने गहन केन्द्र परियोजना आरम्भ की। इस परियोजना के अधीन, यह बैंक, देश के पिछड़े उपखण्डों में, एक सघन क्षेत्र का चयन करता है। तथा उसकी प्रत्येक प्रकार की वित्तीय आवश्यकताओं को साख उपलब्ध करवा कर पूरा करने की चेष्टा करता है।

6. **कृषि वित्त निगम-** वर्ष 1968 में कुछ वाणिज्य बैंकों ने मिलकर, कृषि विकास के लिए किसानों को साख-सुविधाओं उपलब्ध करवाने की योजना बनाई। यह निगम कृषि के विकास के लिए भिन्न-भिन्न परियोजनाओं को आरम्भ करने की स्वीकृति देता है तथा इसको स्थापित करने वाले बैंकों की सहायता से इनके लिए ऋण उपलब्ध करवाता है।

7.6 कृषि वित्त उपलब्धता में वाणिज्य बैंकों की भूमिका की समीक्षा

वाणिज्य बैंकों के शाखा विस्तार से हाल के वर्षों में भारत के कृषि विकास व आधुनिकीकरण में सहायता मिली है। इसके अलावा, बहुत से किसानों को साहूकार महाजनों के चंगुल से छुटकारा मिला है और ग्रामीण जनता को बचत की आदत पड़ने लगी। कृषि क्षेत्र के लिए प्रत्यक्ष ऋण देने के साथ-साथ बैंकों ने कई ऐसे उद्योगों को भी ऋण सुविधाएं दी जिनका कृषि विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

किसानों को समय पर और पर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना हमारे वाणिज्य बैंकों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा अन्य बैंकों के परामर्श के पश्चात् 1998-99 में तैयार की गई किसान क्रेडिटकार्ड की मॉडल योजना को सभी बैंकों के माध्यम से देश के सभी राज्यों में कार्यान्वित कर रहे हैं। नवम्बर 2009 तक देश में कुल 878.30 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके थे। इसमें से 39 प्रतिशत वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गए। यद्यपि 31 मार्च, 2004 तक सभी पात्र किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।

लघु सिंचाई व्यवस्था बूंद-बूंद सिंचाई व्यवस्था तथा फव्वारा सिंचाई व्यवस्था के लिए तथा फार्म पौण्ड तथा वाटरशेट जैसी योजनाओं के लिए बैंक तकनीकी और आर्थिक व्यवहारिकता के आधार पर ऋण उपलब्ध कराता है। प्राकृतिक आपदाओं के प्रबन्धन में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सूखों के समय बैंकों द्वारा अल्पकालीन ऋणों में मध्यकालीन ऋणों में परिवर्तित कर दिया जाता है तथा नए अल्पकालीन ऋण प्रदान किये जाते हैं बाढ़ व सूखे के बाद की स्थिति में गांवों को गोद लेकर क्षेत्र के विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु वित्त की व्यवस्था की जाती है।

वाणिज्य बैंकों द्वारा औषधीय पौधों के लिए वित्त व्यवस्था करना एक नया क्षेत्र है। अधिक माँग वाली औषधियां का कृषिकरण किया जाता है। ताकि दवा उद्योग, फूड प्रसंस्करण आदि उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। वाणिज्य बैंक ग्रामीण क्षेत्र में गोदामों के निर्माण के लिए साख सम्बद्ध अनुदान में वाणिज्य बैंकों की शाखा विस्तार से विपणन क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों भी सीधे किसानों से कृषि उत्पाद खरीदने ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंच रही है।

यद्यपि वाणिज्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों का विस्तार हुआ है परन्तु इससे कुछ समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। क्योंकि बिना व्यावसायिक सम्भावनाओं को ध्यान दिये अंधाधुंध ग्रामीण शाखाएं खोलते जाने से एक और शाखाओं का प्रशासनिक खर्च बढ़ गया जिससे बैंकों को हानि हुई साथ ही बहुत से ऐसे ऋण प्रदान किये गये जिनकी वापसी की सम्भावनाएं बहुत कम हैं। वाणिज्य बैंकों ने अपनी विस्तार उन्हीं क्षेत्रों में किया जहां पहले से सहकारी साख समितियां कार्यरत थीं। पिछड़ी पर्वतीय तथा ऐसे क्षेत्र जहाँ संस्थागत साख व्यवस्था का अभाव था वहां वाणिज्य बैंक अपनी पहुंच बनाने में असमर्थ रहें।

सरकार ने वाणिज्य बैंकों को यह सुविधा दी है कि वो प्राथमिकता क्षेत्र के लिए निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए ग्रामीण आधारीक विकास कोष तथा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक में निवेश कर सकते हैं। इसके अन्तर्गत बैंकों ने इसमें निवेश बढ़ाया, परन्तु इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि छोटे व सीमान्त किसानों को दिये जाने वाले ऋणों की वृद्धि दर में गिरावट आई। 1980 के दशक में छोटे किसानों के दिये गये ऋण की वृद्धि दर 15.1 प्रतिशत थी जो 1990 के दशक में कम होकर 11.0 प्रतिशत रह गई तथा इस दौरान सीमान्त किसानों की ऋण वृद्धि दर 18.1 प्रतिशत से घटकर 13 प्रतिशत रह गई।

एक ही क्षेत्र में कार्य कर रहे विभिन्न वाणिज्य बैंकों की शाखाओं के बीच तथा अन्य सहकारी व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सरकारी विभागों के बीच उचित सहयोग व तालमेल का अभाव है। यद्यपि अग्रणी बैंक योजना लागू है तब भी 10-15 बैंकों की 50 या अधिक शाखाओं में तालमेल बैठाने में अनेक व्यवहारिक समस्याएँ आती हैं। वाणिज्य बैंकों की योजनाओं का लाभ अधिकतर बड़े व मध्यम किसानों को ही हुआ है। क्योंकि जमानत व जटिल कागजी कार्यवाही के कारण छोटे व सीमान्त किसान अभी भी साहूकारों के पास ही जा रहे हैं।

इन सबसे गम्भीर समस्या ऋण वसूली की धीमी गति है। जिस कारण वाणिज्य बैंक कृषि वित्त में अधिक रूचि नहीं ले रहे, यद्यपि रिजर्व बैंक तथा सरकारी दिशा निर्देशों के अनुसार वाणिज्य बैंक कृषि क्षेत्र को वित्तीय सहायता दे रहे हैं परन्तु समय-समय पर ऋण माफी की योजना ने वाणिज्य बैंकों को वित्तीय संकट में डाल दिया है। हाल में किसानों द्वारा ऋण वापस न करने के रवैये को विभिन्न राजनीतिक दलों की वोटों की राजनीति से काफी प्रोत्साहन मिला है किसान अब जानबूझ कर ऋणों की वापसी नहीं करता और सरकार पर दबाव डालता है कि ऋण माफ कर दिये जाये। इससे कृषि को ऋण देने वाली संस्थाओं व बैंको का अस्तित्व ही खतरे में आने की आशंका है।

7.7 गैर कृषि ग्रामीण वित्त संस्थान

हाल के वर्षों में ग्रामीण भारत में आर्थिक गतिविधियों के विकेन्द्रीकरण में गैर कृषि क्रियाओं को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। भारत की आर्थिक जनगणना का अनुमान है कि 41.89 लाख ग्रामीण लोग गैर कृषि क्रियाओं में कार्यरत हैं। जिनकी 1998-2005 के दौरान 4.56 प्रतिशत वृद्धि दर रही। इस क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि की संभावनाएं हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में सड़कों, आवासों, बिजली व संचार सुविधाओं आदि का अभाव है। गैर कृषि गतिविधियों में मुख्य रूप से आवास निर्माण, सड़क निर्माण, हस्तशिल्प, प्रसंस्करण खनन, व्यापार, सामुदायिक सेवाएँ आदि आती हैं। जिससे छोटे सीमान्त व भूमिहीन किसानों को रोजगार उपलब्ध हो। इस प्रकार गैर कृषि क्षेत्र देश के तीव्र आर्थिक विकास की कुंजी है। इसके महत्व को देखते हुए नाबार्ड, राष्ट्रीय आवास बैंक तथा अन्य बैंक अनेक योजनाएं चला रहे हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

1. **नाबार्ड द्वारा प्रदान की जा रही गैर कृषि सहायता-** नाबार्ड ग्रामीण क्षेत्रों की आय में वृद्धि हेतु गैर कृषि क्षेत्र को पुनर्वित्त सहायता प्रदान करता है। जिससे छोटे कुटीर तथा हस्तशिल्प उद्योगों की स्थापना व विकास हो। नाबार्ड निवेश ऋण द्वारा खाद्य प्रसंस्करण, सूक्ष्म उद्योग, ग्रामीण कारीगरों व शिल्पियों को पुनर्वित्त सहायता उपलब्ध कराता है। नाबार्ड की स्वतः पुनर्वित्त सुविधा के अंतर्गत उद्यमिता ऋण योजना, लघु सड़क और जल परिवहन संचालन योजना तथा मार्जिन धन हेतु आसान ऋण सहायता योजना के

तहत नाबार्ड पुनर्वित्त सुविधा देता है। वाणिज्य बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक आदि द्वारा नाबार्ड की योजना का क्रियान्वयन किया जाता है। नाबार्ड की स्वतः पुनर्वित्त सुविधा का विवरण तालिका (7.4) में दर्शाया गया है।

तालिका (7.4)

गैर कृषि क्षेत्र के लिए नाबार्ड का पुनर्वित्त (विशेष ऋण) प्रवाह

क्र. सं.	वर्ष	विशेष ऋण (करोड़ रूपए में)
1	1986-87	16.00
2	1990-91	80.00
3	1996-97	644.68
4	2000-01	1022.02
5	2005-06	2285.98
6	2006-07	2265.16

Source- www.nabard.org

2. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक- भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की अप्रैल 1990 में संसद द्वारा पारित अधिनियम के तहत स्थापना की गई थी। बैंक की अधिकृत पूंजी 250 करोड़ रूपए है। जिसे 1000 करोड़ रूपए तक बढ़ाया जा सकता है। देश में फैली लघु इकाईयों को वित्तीय सहायता देने के लिए बैंक वाणिज्य बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय बैंकों सहित अन्य वित्तीय निगमों को सहायता देता है। देश के आर्थिक विकास तथा संतुलित विकास के लिए यह बैंक ग्रामीण क्षेत्र के लिए विशेष रूप से ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम चलाता है। जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में उद्यमियों को प्रोत्साहन देकर आत्मनिर्भरता हेतु सूक्ष्म तथा लघु उद्योग लगाने हेतु सहायता देना जिससे ग्रामीण बेकारी, पलायन तथा संसाधनों के अल्प उपयोग की समस्या का समाधान हो सके।

ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम के तहत उद्योग की जानकारी, प्रशिक्षण, प्रौद्योगिकी तथा विपणन व्यवस्था आदि के रूप में एक एकीकृत पैकेज इकाई के प्रदर्शन के आधार पर दिया जाता है। इकाई का मूल्यांकन राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद द्वारा आयोजित किया जाता है। दिसम्बर, 2009 को भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने संशोधित ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम शुरू किया है। जिसमें बैंकों के साथ स्वयं वित्त पोषण के माध्यम से नये लघु उद्योगों की स्थापना पर ध्यान केन्द्रित करने का निर्णय लिया गया।

3 राष्ट्रीय आवास बैंक- 1988 को आवास के लिए शीर्ष स्तरीय संस्थान के रूप में राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गई। इस पर रिजर्व बैंक का पूर्ण स्वामित्व है। इसका मुख्य कार्यालय नई दिल्ली में है। राष्ट्रीय आवास बैंक निम्न योजनाओं के द्वारा ग्रामीण आवासीय व्यवस्था के लिए वित्तीय सहायता देता है-

1. स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त योजना- वर्ष 1997-98 के बजट में राष्ट्रीय आवास बैंक से एक योजना तैयार करने का अनुरोध किया गया है। जिसका शुभारम्भ 15 अगस्त, 1997 को

प्रधानमंत्री जी ने किया। इस योजना का उद्देश्य ऐसे गांव जहां की जनसंख्या 50,000 से अधिक नहीं है। ग्रामीण आवास उपलब्ध कराना है। इसमें इस कार्य हेतु वाणिज्य बैंकों, सहकारी समितियों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सहित नाबार्ड को शामिल किया गया। वित्तीय सहायता के अतिरिक्त राष्ट्रीय आवास बैंक डिजाइन व तकनीक सहायता भी देगा। 1997-2006 तक इसके अंतर्गत 22,80,000 इकाइयों का लक्ष्य रखा गया जिसमें में 2,213,189 इकाइयों का निर्माण कर लिया गया।

2. भारत निर्माण- यह योजना ग्रामीण क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए 2005-09 तक चलाने का लक्ष्य रखा गया। इसमें प्रत्येक गांव को बिजली उपलब्ध करना, पक्की सड़कें बनाना, पीने के पानी की व्यवस्था, निर्धन लोगों हेतु मकान निर्माण तथा गांवों को टेलीफोन सेवा से जोड़े जैसे कार्य करने निर्धारित किये गए।

3. इन्दिरा आवास योजना- 1980 में इस योजना का आरम्भ किया गया। इसके अंतर्गत गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को आवास निर्माण हेतु आर्थिक सहायता दी जाती है। जिसमें 60 प्रतिशत अनुसूचित जातियों व जन जातियों के लिए निर्धारित है। मैदानी क्षेत्र में 35,000 रूपए प्रति आवास पहाड़ी/ दुर्गम क्षेत्रों में 37,500 रूपए प्रति आवास सहायता दी जाती है। इस योजना के राष्ट्रीय आवास बैंक ने वाणिज्य बैंक को शामिल किया है।

4. ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक आवास- इस राष्ट्रीय आवास बैंक की नई योजना है। इस योजना का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबी की रेखा से कुछ ऊपर के लोगों को होगा। जिससे ये लोग छोटा कारोबार, कुटीर उद्योग तथा अन्य उत्पादक कार्य हेतु थोड़े बड़े आवास का निर्माण कर सके। जिसके लिए 70,000 रूपए का समिश्रण ऋण दिया जाएगा। जिसमें 52,500 रूपए मकान निर्माण हेतु तथा शेष 17,500 रूपए आय अर्जन हेतु होंगे। ऋण की अधिकतम अवधि 15 वर्ष तक की होगी। योजना का क्रियान्वयन बैंकों, आवास वित्त निगम तथा सूक्ष्म वित्तीय संस्थान के द्वारा सीधे लाभार्थियों को या स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से किया जाएगा।

4. खादी और ग्रामोद्योग आयोग- खादी और ग्रामोद्योग की स्थापना संसद के 'खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम 1956' के तहत भारत सरकार द्वारा की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य-ग्रामीण क्षेत्र में खादी एवं ग्रामोद्योगों की स्थापना और विकास करने की योजना बनाना, प्रचार करना तथा इस हेतु सुविधाओं व सहायता देना है। अप्रैल 1957 में पूर्व के अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड का सम्पूर्ण कार्यभार इसने संभाल लिया। इसका मुख्यालय मुम्बई में 6 संभागीय कार्यालय सहित 29 राज्यों में इसके कार्यालय है। आयोग के तीन मुख्य उद्देश्य हैं- सामाजिक उद्देश्य- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराना ,आर्थिक उद्देश्य- बिक्री योग्य सामग्री प्रदान करना तथा व्यापक उद्देश्य- लोगों को आत्मनिर्भर बनाना और एक सुदृढ़ ग्रामीण सामाजिक भावना का निर्माण करना।

वर्तमान समय में आयोग के विकासात्मक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन 5600 पंजीकृत संस्थाओं, 30138 सहकारी संस्थाओं, और लगभग 94.85 लाख लोगों के माध्यम से किया जा रहा है। आयोग द्वारा मधुमक्खी पालन, मिट्टी के बने बर्तन निर्माण, दलहन व अनाज प्रसंस्करण उद्योग, फूल व सब्जी प्रसंस्करण उद्योग, चमड़ा उद्योग, खाद्य तेल उद्योग, कुटीर उद्योग, औषधि उद्योग, कागज उद्योग, बड़ई तथा इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग आदि के

विकास व स्थापना हेतु सहायता दी जाती है। इसके अतिरिक्त आयोग द्वारा प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के तहत ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु सहायता देता है। आयोग ब्याज अनुवृत्ति पात्रता प्रमाण पत्र योजना के तहत खादी कार्यक्रम के लिए धन उपलब्ध कराता है। इसके अतिरिक्त आयोग परम्परागत उद्योग पुनः स्थापना हेतु फण्ड की योजना का परिचालन करता है। जिससे भारत के नष्ट होते जा रहे परम्परागत उद्योगों की स्थापना व विकास किया जाये इस हेतु 100 करोड़ रूपए के कोष की स्थापना की घोषणा की गई।

7.8 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. को सरकार ने 14 वाणिज्य बैंकों तथामें 6 वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया।
2.में किसान क्रेडिट कार्ड की योजना प्रारंभ की गई।
3. 1998 से नवम्बर 2009 तक..... किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके थे।
4. जारी किए जा चुके किसान क्रेडिट कार्ड में से प्रतिशत वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गए।
5. 30 जून 2009 तक व्यापारिक बैंको की संख्या थी, जिसमें सेप्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत थी।
6. रिजर्व बैंक ने वाणिज्य बैंकों के सामने लक्ष्य रखा की, बैंक अपने कुल ऋण का..... प्रतिशत भाग प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को प्रदान करेंगे।
7. वाणिज्य बैंक कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों को कुल बैंक ऋण का प्रतिशत दिया जाएगा।
8. सन् में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने वाणिज्य बैंकों को एक परिपत्र द्वारा कृषि सम्बन्धी ऋण उपलब्ध कराने के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रस्तावित किये।
9. कृषि वित्त (फार्म उधार) पर रिजर्व बैंक के नए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के लिए की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की।
10. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना को राज्यों में की गई।
11. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की प्रदत्त पूंजी में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा प्रायोजित वाणिज्य बैंक की हिस्सेदारी..... निर्धारित की गई।
12. में अग्रणी बैंक परियोजना का प्रारम्भ किया गया।
13. भारत की आर्थिक जनगणना का अनुमान है कि..... लाख ग्रामीण लोग गैर कृषि क्षेत्र में कार्यरत है।

14. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की मे संसद द्वारा पारित अधिनियम के तहत स्थापना की गई थी।
15. दिसम्बर, को भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने संशोधित ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम शुरू किया है।
16.को आवास के लिए शीर्ष स्तरीय संस्थान के रूप में राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गई।
17.में इन्दिरा आवास योजना का आरम्भ किया गया।
18. स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त योजना का शुभारम्भको प्रधानमंत्री जी ने किया।
19. इन्दिरा आवास योजना में आवास निर्माण हेतु आर्थिक सहायता दी जाती है। जिसमें प्रतिशत अनुसूचित जातियों व जन जातियों के लिए निर्धारित है।
20. इन्दिरा आवास योजना में मैदानी क्षेत्र मेंरूपे प्रति आवास पहाड़ी/ दुर्गम क्षेत्रों मेंरूपे प्रति आवास सहायता दी जाती है।
21. खादी और ग्रामोद्योग की स्थापना संसद केके तहत भारत सरकार द्वारा की गई थी।
22. खादी और ग्रामोद्योग का मुख्यालय में 6 संभागीय कार्यालय सहितराज्यों में इसके कार्यालय है।

7.9 सारांश

राष्ट्रीयकरण से पूर्व कृषि साख में वाणिज्य बैंकों की हिस्सेदारी 1 प्रतिशत से भी कम थी। जुलाई 1969 में 14 बैंकों तथा 1980 में 6 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् कृषि साख में वाणिज्य बैंकों की हिस्सेदारी में लगातार वृद्धि हुई है। तथा राष्ट्रीयकरण के बाद ग्रामीण क्षेत्र में बैंकों की शाखाओं का जाल बिछ गया है। जून 2006 के अंत तक बैंकों के कुल शाखायें 69616 थी जिसमें से 30754 अर्थात् 44 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में थी।

2005-06 में वाणिज्य बैंकों ने 1,25,859 करोड़ रूपए का कृषि वित्त प्रदान किया। जो इस वर्ष दिए गए कुल संस्थागत ऋण का 70 प्रतिशत था। रिजर्व बैंक ने वाणिज्य बैंकों के कृषि वित्त व्यवस्था हेतु अनेक मार्गदर्शी सिद्धान्त बताये हैं जिससे वाणिज्य बैंक कृषि वित्त व्यवस्था मे सक्रिय भूमिका निभा सकें। कृषि क्षेत्र की वित्त व्यवस्था हेतु वाणिज्य बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, ग्राम अंकीकरण योजना, अग्रणी बैंक योजना, किसान क्रेडिट कार्ड आदि योजना संचालित करता है। जिससे कृषि विकास के साथ किसानों को महाजनों व साहूकारों के चंगुल से छुटकारा मिला है।

यद्यपि पिछले वर्षों में कृषि वित्त में वाणिज्य बैंकों की हिस्सेदारी बढ़ी है। फिर भी कुछ नयी समस्यायें सामने आयी है। जैसे अंधाधुंध ग्रामीण शाखायें, अन्य बैंकों व वित्तीय संस्थानों से समन्वय का अभाव, बड़े व मध्यम किसानों को प्राथमिकता, राजनैतिक का अभाव, बड़े व मध्यम किसानों को प्राथमिकता, राजनैतिक खास,

ऋण वसूली की धीमी गति तथा समय-समय पर सरकार की ऋण माफी योजना जिस कारण बैंकों का अस्तित्व खतरे में आने की आशंका है।

हाल के वर्षों में ग्रामीण भारत में आर्थिक गतिविधियों के विकेन्द्रीकरण में गैर कृषि क्रियाओं को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। गैर कृषि गतिविधियों में मुख्य रूप से आवास निर्माण, सड़क निर्माण, हस्तशिल्प, प्रसंस्करण खनन, व्यापार, सामुदायिक सेवायें आदि आती है। जिससे छोटे सीमान्त व भूमिहीन किसानों को रोजगार उपलब्ध हो। इस प्रकार गैर कृषि क्षेत्र देश के तीव्र आर्थिक विकास की कुंजी है। इसके महत्व को देखते हुए नाबार्ड, राष्ट्रीय आवास बैंक तथा अन्य बैंक अनेक योजनाएं चला रहे हैं।

7.10 शब्दावली

- **कृषि साख-** वह ऋण (साख) जो कृषि कार्य हेतु लिया जाता है।
- **उर्वरक-** रासायनिक खाद जैसे-यूरिया, पोटाश, फास्फेट आदि।
- **कृषि का व्यवसायीकरण-** लाभ प्राप्ति के उद्देश्यों से कृषि करना।
- **काश्तकार-** जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- **अनुदान/रियायत -** सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **वाणिज्य बैंक-** व्यापारिक बैंक, जो लाभ प्राप्ति हेतु मुद्रा का व्यापार अर्थात् लेन-देन करते हैं।
- **नाबार्ड-** राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD)
- **विकेन्द्रीकरण-** उद्योगों व कृषि क्रियाओं का बिखराव या फैलाव
- **उद्यमिता-** जोखिम उठाने की क्षमता
- **उत्पादक आवास-** ऐसे आवास जो आय अर्जन अर्थात् आय प्राप्ति के माध्यम बनें।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

- | | |
|----------------------------------|-------------------------------|
| 1. 19 जुलाई 1969; 15 अप्रैल 1980 | 2. अगस्त 1998-99 |
| 3. 878.30 लाख | 4. 38.63 प्रतिशत |
| 5. 80514 ; 39.53 प्रतिशत | 6. 40 प्रतिशत |
| 7. 18 प्रतिशत | 8. सन् 1970 |
| 9. श्री आर. पी. गुप्त | 10. 2 अक्टूबर 1975; 4 राज्यों |
| 11. 50:15:35 | 12. 1969 |
| 13. 41.89 लाख | 14. अप्रैल 1990 |
| 15. दिसम्बर, 2009 | 16. 1988 |
| 17. 1980 | 18. 15 अगस्त, 1997 |
| 19. 60 प्रतिशत | |

20. 35,000 रूपए प्रति आवास, 37,500 रूपए प्रति आवास

21. 'खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम 1956'

22. मुम्बई, 29 राज्यों।

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यादव सुबह सिंह, *ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका* (नवम्बर 2010), प्रतियोगिता दर्पण; आगरा।
- पंत नवीन, *ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं* (फरवरी 2010), योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- यादव सावित्री, *किसान क्रेडिट कार्ड से खत्म हुई किसानों की ऋणग्रस्तता* (जून 2011), कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ. शिव भूषण, (2010) *कृषि अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन आगरा।
- माथुर बी. एल., (2011) *कृषि अर्थशास्त्र*, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- सोनी आर. एन., (2007) *कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय*, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा
- मिश्र एस. के. पुरी, वी. के., (2008) *भारतीय अर्थशास्त्र*, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
- मामेरिया डॉ. चतुर्भुज एवं जैन डॉ. एस. सी (1995) *भारतीय अर्थशास्त्र*, प्रकाशक साहित्य भवन आगरा।
- दत्त रुद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम., (2007) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

7.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949), *Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), *Agriculture and Economic Development*, Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), *Fundamentals Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), *Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): *Indian Agricultural Development since Independence*, Oxford & IBH, New Delhi.

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि वित्त में वाणिज्य बैंक की भूमिका की समीक्षा करें।
2. गैर कृषि ग्रामीण वित्तीय सहायता पर प्रकाश डालें।
3. क्या वाणिज्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण से कृषि वित्त की समस्याओं का समाधान हो गया? व्याख्या करो।

इकाई 8- कृषि प्रबन्धन: अवधारणा, क्षेत्र और सिद्धान्त (Agricultural Management: Concepts, Areas and Theories)

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 कृषि प्रबन्धन
 - 8.3.1 फार्म का अर्थ
 - 8.3.2 प्रबन्ध का अभिप्राय
 - 8.3.3 कृषि (फार्म) प्रबन्ध की परिभाषा
 - 8.3.4 कृषि (फार्म) प्रबन्ध के उद्देश्य
- 8.4 कृषि (फार्म) प्रबन्ध का क्षेत्र
 - 8.4.1 फार्म प्रबन्ध का क्षेत्र
 - 8.4.2 कृषि (फार्म) प्रबन्ध की विषय सामग्री
- 8.5 कृषि प्रबन्धन के सिद्धान्त
 - 8.5.1 प्रतिफल के नियम
 - 8.5.2 तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त
 - 8.5.3 साधनों के प्रतिस्थापन का सिद्धान्त
 - 8.5.4 लागत का सिद्धान्त
 - 8.5.5 तुलनात्मक समय का सिद्धान्त
 - 8.5.6 कृषि प्रबन्धन के आधुनिक सिद्धान्त
- 8.6 अभ्यास प्रश्न
- 8.7 सारांश
- 8.8 शब्दावली
- 8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में कृषि प्रबन्धन की अवधारणा, क्षेत्र तथा सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप कृषि प्रबन्धन के क्षेत्र और सिद्धान्तों से परिचित हो जायेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ कृषि प्रबन्धन की अवधारणा को समझेंगे।
- ✓ कृषि प्रबन्धन के क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- ✓ कृषि प्रबन्धन के सिद्धान्तों से परिचित हो जायेंगे।

8.3 कृषि प्रबन्धन

कृषि अर्थशास्त्र में कृषि (फार्म) प्रबन्ध का विशेष महत्व है। फार्म प्रबन्ध दो शब्दों फार्म प्रबंध का विशेष महत्व है। फार्म का अभिप्राय उस क्षेत्र से है जो कि एक किसान अथवा किसानों के समूह द्वारा खेती के काम में लाया जाता है तथा प्रबन्ध का अर्थ उत्पादन सम्बन्धी योजना को कार्य रूप में परिणित करना तथा उसमें प्रयुक्त वस्तुओं के समायोजना के लिए आता है। जिससे उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकें।

8.3.1 फार्म का अर्थ

फार्म वह क्षेत्र है जिस पर किसान या किसानों के समूह द्वारा सम्मिलित रूप से कृषि की जाती है फार्म वह क्षेत्र अथवा भूखण्ड है जिसका उपयोग फसल उत्पादन अर्थात् कृषि कार्य के लिये किया जाता है। जिस पर एक कृषक अथवा कई कृषकों का सम्मिलित रूप से स्वामित्व होता है तथा जिसकी सीमा निश्चित होती है।

एडम के अनुसार *“वैधानिक रूप से फार्म से तात्पर्य उस भूमि के क्षेत्र से है जिसका स्वामित्व एक व्यक्ति के पास होता है तथा भूमि का वह क्षेत्र, फसलें उगाने अथवा चरागाह के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत कई एकड़ क्षेत्र के एक अथवा अनेक खेत हो सकते हैं।”*

जॉनसन के अनुसार- *“फार्म से तात्पर्य उस स्थान से है जहां पर या तो कुछ एकड़ क्षेत्र में फसल उगाई जाती है या कुछ में पशु पाले जाते हैं यह आवश्यक नहीं कि उस भूमि पर फसल उत्पादन करने वाला अथवा पशु पालने वाला कृषक की श्रेणी में आता है।”*

चौहान के अनुसार- *“भूमि के एक अथवा अनेक खण्ड जो कृषि उद्यम की एक इकाई के रूप में एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित किये जाते हैं, फार्म कहलाते हैं।”*

8.3.2 प्रबन्ध का अभिप्राय

प्रबन्ध से अभिप्राय किसी कार्य को योजनाबद्ध, व्यवस्थित तथा उत्तम ढंग से करने की कला से है। कृषि हो या कोई अन्य व्यवसाय प्रबन्ध की आवश्यकता समान रूप से पड़ती है। सामान्यता प्रबन्धन की निम्न विशेषतायें होती हैं-

1. प्रबन्धन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जिसमें प्रबन्धन कार्यों का समूह होता है। जैसे- योजना बनाना, व्यवस्थित करना, नियन्त्रित करना, कर्मचारियों की व्यवस्था, निरीक्षण आदि।
2. सफल प्रबन्धन में संसाधन का प्रभावशाली उपयोग तथा लक्ष्यों की उपलब्धि महत्वपूर्ण है।
3. संगठन का प्रत्यक्ष, पर्यवेक्षण, संगठन की सीमा की स्थिति पर निर्भर करता है।
4. अच्छा प्रबन्धन, तकनीकी कौशल, संगठन तथा विशेष कार्य प्रदर्शन पर निर्भर करता है।
5. सफल प्रबन्धन के तीन आवश्यक तत्व हैं- क्षमता, प्रबन्धन की प्रेरणा तथा अवसर।
6. प्रबन्धन विज्ञान, कला तथा व्यावहारिकता का मिश्रण है।

कृषि में उत्पादन के लिए कृषिगत उपादानों जैसे- भूमि, श्रम पूंजी, प्रबन्ध आदि की आवश्यकता पड़ती है। भूमि, श्रम तथा पूंजी मूर्त उपादानों के अन्तर्गत तथा प्रबन्ध अमूर्त उपादान के अन्तर्गत आता है। कृषि उत्पादन में भले ही मूर्त उपादानों - भूमि, श्रम और पूंजी की प्रचुर उपलब्धता हो, किन्तु उपयुक्त प्रबन्ध के अभाव से उत्पादन प्रायः कम ही होता है। विभिन्न फर्मों से प्राप्त कृषि उत्पादनों की मात्रा उत्पादन के अन्य उपादानों के समान रहने पर भी प्रबन्ध क्षमता की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती है। वास्तव में, सभी प्रबन्धकर्ता समान रूप से योग्य एवं कुशल नहीं होते। प्रबन्धकर्ता में पायी जाने वाली प्रबन्ध कला वास्तव में नैसर्गिक होती है, फिर भी इसमें प्रशिक्षण आदि के द्वारा वृद्धि की जा सकती है।

8.3.3 कृषि (फार्म) प्रबन्ध की परिभाषा

फार्म प्रबन्ध एक कला है जिसके द्वारा कृषि उत्पादन के सीमित साधनों की सहायता से भी उत्पादन को अधिकतम बनाया जा सकता है। कृषि के व्यवसायिक सिद्धान्तों एवं कृषि नीतियों द्वारा फार्म इकाई से अधिकतम सम्भावित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से फार्म प्रबन्ध का अध्ययन किया जाता है। फार्म प्रबन्ध को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है-

वारेन के अनुसार, -**“फार्म प्रबन्ध कृषि के व्यवसायिक सिद्धान्तों का अध्ययन है। इसका सम्बन्ध फार्म के संगठन सम्बन्धी विज्ञान और फार्म की इकाइयों सम्बन्धी उस प्रबन्ध से है जो निरन्तर अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है।”**

ग्रे के अनुसार- **“फार्म प्रबन्ध से तात्पर्य सुव्यवस्थित ढंग से फार्म का प्रबन्ध करने से है जिसे लाभकारिता के मापदण्ड से मापा जा सकता है।”**

एफरसन के अनुसार- **“फार्म प्रबन्धन वह विज्ञान है जो प्रक्षेत्र (फार्म) संगठन एवं संचालन को ध्यान में रखकर फर्म की दक्षता और निरन्तर लाभ के दृष्टिकोण से सम्बन्धित हो।”**

ब्लैक के अनुसार- **“फार्म प्रबन्ध में संगठन, संचालन, क्रय-विक्रय तथा वित्तीय व्यवस्था इन चारों का समावेश रहता है।”**

बैकफोर्ड एवं जॉनसन के अनुसार, **“फार्म प्रबन्ध निम्नलिखित पांच कार्यों को करने का विज्ञान है: 1. अवलोकन, 2. विश्लेषण, 3. निर्णय लेना, 4. लिये गये निर्णयों को कार्यान्वित करना तथा 5. निर्णयों के परिणामों का दायित्व वहन करना।”**

फार्म प्रबन्ध की उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सभी परिभाषाओं में निहित तत्वों में पर्याप्त समानता है। सभी विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं में फार्म पर उपलब्ध सीमित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करके फार्म से निरन्तर अधिकतम लाभ प्राप्ति पर बल दिया है।

8.3.4 कृषि (फार्म) प्रबन्ध के उद्देश्य

फार्म प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य फार्म की विभिन्न व्यवसायिक इकायों एवं उद्यमों जैसे-फसलोत्पादन, दुग्ध उत्पादन द्वारा किसानों को अधिकतम शुद्ध लाभ प्राप्त कराना है। फार्म पर दो या दो से अधिक उद्यमों का संयोजन होता है। फार्म प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण उद्यमों से अधिकतम लाभ प्राप्त करना है।

फार्म प्रबन्ध के अध्ययन के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्देश्य आते हैं-

1. कृषि क्षेत्र में उत्पादन के विभिन्न साधनों एवं उनकी सहायता से उत्पादित उत्पादों के मध्य व्याप्त फलनात्मक सम्बन्धों का अध्ययन करना।
2. कृषि में आय-व्यय के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. फार्म संसाधनों एवं भूमि उपयोग का मूल्यांकन करना।
4. अधिकतम लाभदायक फसल उत्पादन एवं पशुपालन विधियों को ज्ञात करना।
5. प्रति हेक्टेयर तथा प्रति क्विंटल उत्पादन व्यय का अध्ययन करना।
6. फार्म की विभिन्न व्यवसायिक इकायों का तुलनात्मक आर्थिक अध्ययन करना।
7. जोत आकार का भूमि उपयोग, फसलोत्पादन प्रणाली, पूंजी नियोजन तथा श्रम का उपयोग से सम्बन्ध ज्ञात करना।
8. व्यय तथा आय में अनुकूल सम्बन्ध और संसाधनों के उचित विभाजन द्वारा कृषि व्यवसाय की क्षमता में वृद्धि करने वाले उपायों को ज्ञात करना।
9. कृषि व्यवसाय पर प्राविधिक परिवर्तनों का अध्ययन करना।
10. कृषि उत्पादों के लिए उपलब्ध सर्वोत्तम तकनीक का चुनाव करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अध्ययन के आधार पर कृषक निम्नलिखित निर्णय सहजता से ले सकते हैं-

1. फार्म पर अधिकतम उत्पादन किस तरह प्राप्त किया जाये?
2. प्राप्त उत्पादन की अधिकतम कीमत किस तरह प्राप्त की जाये?
3. उत्पादन की लागत को न्यूनतम कैसे बनाया जाये?
4. सम्पूर्ण फार्म व्यवसाय से अधिकतम शुद्ध लाभ कैसे प्राप्त किया जाये?

यद्यपि कृषि व्यवसाय से अधिकतम लाभ प्राप्त करना किसानों का प्रधान उद्देश्य होता है, फिर भी यह उनका अन्तिम उद्देश्य नहीं होता। किसान का अन्तिम उद्देश्य रहन-सहन के स्तर तथा पारिवारिक सुख एवं समृद्धि में वृद्धि कर उन्हें अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना होता है। विवेकशील कृषि के सफल सम्पादन हेतु फार्म प्रबन्ध का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है।

8.4 कृषि (फार्म) प्रबन्ध का क्षेत्र

फार्म प्रबन्ध के अन्तर्गत अनुसंधान, शिक्षण एवं प्रसार तीनों क्रियाओं का समावेश रहता है। अतः इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। फार्म प्रबन्ध के अध्ययन क्षेत्र को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. **फार्म प्रबन्ध सम्बन्धी अनुसंधान-** फार्म प्रबन्ध में कृषकों की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए समस्या से सम्बन्धित आंकड़ें एकत्रित किये जाते हैं, फिर उनका विश्लेषण करके उन कारणों को ज्ञात किया जाता है जो कि प्रक्षेत्र की आर्थिक क्षमता को बढ़ाने में बाधक होते हैं। प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कृषकों को सुझाव दिये जाते हैं।
2. **फार्म प्रबन्ध शिक्षण तथा प्रशिक्षण-** वर्तमान समय में सभी विश्वविद्यालयों में बी. एस. सी. (कृषि) स्तर पर फार्म प्रबन्ध का विषय पढ़ाया जाता है। फार्म मैनेजमेन्ट का विशेष कोर्स एम.एस.सी. (कृषि) तथा पी-एच.डी. स्तर पर पढ़ाया जाता है। फार्म प्रबन्ध के ज्ञान से किसान कृषि से सम्बन्धित सही निर्णय लेने में सहायक होता है। जैसे कि किसान कौन-सी फसल बोए, कितनी मात्रा में विभिन्न फसलों का उत्पादन करे, किस प्रकार उत्पादन करे तथा कब और कैसे उत्पादन को बेचे आदि।
3. **फार्म प्रबन्ध प्रसार-** अध्ययन के ज्ञात निष्कर्षों एवं समाधानों को प्रसार कार्यकर्ताओं द्वारा किसानों को उपलब्ध कराया जाता है तथा उन्हें इससे सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता है। चूंकि अधिकांश किसान इतने शिक्षित नहीं है कि अध्ययन के निष्कर्षों तथा समाधान को आसानी से समझ सके तथा उनको ग्रहण कर सकें। इसलिए अनुसंधान के निष्कर्षों के प्रसार माध्यम द्वारा प्रदर्शन करके दिखाना आवश्यक हो जाता है। यह फार्म प्रबन्ध प्रसार के अन्तर्गत आता है।
4. **फार्म योजना का निर्माण-** फार्म योजना का निर्माण भी फार्म प्रबन्ध के अन्तर्गत आता है। फार्म पर विभिन्न कृषि कार्यों के समुचित सम्पादन हेतु फार्म योजना का निर्माण किया जाता है। फार्म योजना के अन्तर्गत विभिन्न कृषि कार्यों की सूची वरीयता के आधार पर तैयार की जाती है, ताकि फार्म से सम्बन्धित समस्त कार्यों को समय से बिना किसी कठिनाई के पूरा किया जा सके। इस प्रकार फार्म योजना का निर्माण भी फार्म प्रबन्ध का ही एक अंग है।
5. **फार्म प्रबन्ध का क्षेत्र -** फार्म प्रबन्ध का क्षेत्र व्यष्टि विश्लेषण से सम्बन्धित है। इसमें प्रत्येक फार्म को एक पृथक् इकाई मानकर निर्णय लिया जाता है। अतः फार्म के सम्बन्ध में लिये जाने वाले विभिन्न निर्णय यथा- फसल का चुनाव, सिंचाई की व्यवस्था, उर्वरकों एवं कृषि यन्त्रों का उपयोग आदि से सम्बन्धित क्रियाएं फार्म प्रबन्ध के क्षेत्र में सम्मिलित होती है।

8.4.1 फार्म प्रबन्ध का क्षेत्र

कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण की क्रियाओं तथा कृषि उद्योग से सम्बन्धित संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है। कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किसानों के धन प्राप्ति एवं धन के व्यय से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह कृषि अर्थशास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक फार्म में किए जाने वाले सभी कृषि कार्यों के सम्बन्ध

में अधिकतम लाभ प्राप्ति के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिये जाते हैं। यद्यपि फार्म प्रबन्ध कृषि अर्थशास्त्र का ही अंग है, फिर भी अध्ययन की दृष्टि से फार्म प्रबन्ध एवं कृषि अर्थशास्त्र में निम्नलिखित अन्तर विद्यमान हैं-

1. कृषि अर्थशास्त्र कृषि विज्ञान की एक शाखा है जबकि फार्म प्रबन्ध कृषि अर्थशास्त्र की उसी तरह की एक शाखा है, जैसे- कृषि उत्पादन, कृषि विपणन, कृषि वित्त आदि कृषि अर्थशास्त्र की शाखाएं हैं।
2. अध्ययन की दृष्टि से कृषि अर्थशास्त्र एक समष्टिपरक विषय है, जबकि फार्म प्रबन्ध एक व्यक्तिपरक विश्लेषण होता है।
3. फार्म प्रबन्ध के अध्ययन की इकाई एक फार्म होती है जबकि कृषि अर्थशास्त्र के अध्ययन की इकाई किसान समूह अथवा किसान समाज होता है। कृषि अर्थशास्त्र फसल उत्पादन, पशुपालन, कृषि की उन्नति, तकनीकों के ज्ञान के आधार पर देश अथवा क्षेत्र के हितों की सामूहिक रूप में व्याख्या करता है। फार्म प्रबन्ध एक ही फार्म अथवा किसान के लिए उपयुक्त उद्देश्यों के प्राप्ति की व्याख्या करता है।
4. फार्म प्रबन्ध का उद्देश्य, किसान को उसके फार्म से निरन्तर अधिकतम लाभ की राशि प्राप्त कराना होता है, जबकि कृषि अर्थशास्त्र का उद्देश्य, क्षेत्र के किसानों को अधिकतम लाभ अर्जित कराते हुए उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार एवं कल्याण में वृद्धि करना होता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि कृषि अर्थशास्त्र एवं फार्म प्रबन्ध दोनों आपस में अन्तर्सम्बन्धित हैं। कृषि अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की एक शाखा है। इस प्रकार फार्म प्रबन्ध भी अर्थशास्त्र की एक शाखा है, जो कृषि व्यवसाय में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

फार्म प्रबन्ध कृषि अर्थशास्त्र की ही एक शाखा है। यह एक व्यक्तिगत इकाई के प्रबन्ध एवं क्रिया-कलापों से सम्बन्धित है। दूसरी तरफ कृषि अर्थशास्त्र कृषि की समग्रता के आधार पर तथा किसानों के एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इस प्रकार फार्म एक सूक्ष्म इकाई तथा कृषि एक वृहद इकाई समझा जाता है।

इस तरह फार्म प्रबन्ध मुख्य रूप से एक किसान परिवार की समृद्धि से सम्बन्धित है, जबकि कृषि अर्थशास्त्र, पूरे किसान समाज को सम्भागीय या राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण में सहयोग प्रदान करता है। अतः मूल्य नीति, जोत की अधिकतम सीमा, भूमि सुधार, कृषि आयकर आदि कृषि अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री है।

कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें अनिश्चिता का तत्व विद्यमान रहता है। कृषि उत्पादों के उत्पादन एवं कीमतों में प्रायः उतार-चढ़ाव आते रहते हैं ऐसे में फार्म प्रबन्ध का ज्ञान सकारात्मक भूमिका निभाता है। अनिश्चित कृषि वातावरण की अवस्था में सतत् लाभ की प्राप्ति हेतु फार्म प्रबन्ध का ज्ञान किसानों को फार्म पर कार्यों के करने में सहायक हो सकता है:

1. **निर्मित फार्म योजना को फार्म पर क्रियान्वित करना-** फार्म योजना के समुचित क्रियान्वयन में फार्म प्रबन्ध का ज्ञान सहायक होता है। फार्म योजना से प्राप्त होने वाले लाभ की धनराशि योजना के समुचित क्रियान्वयन पर निर्भर करती है।
2. **उत्पादन, उत्पादकता व कीमतों का भावी अनुमान लगाना-** किसान अपने कृषि फार्म के क्षेत्र का विभिन्न उद्यमों के बीच वितरण किस प्रकार करेगा, यह तत्कालीन कीमतों पर निर्भर करता है। परन्तु उत्पादन से प्राप्त होने वाली उसकी आय फसल की कटाई के समय प्रचलित कीमतों पर निर्भर करती है।

फसल की कटाई के समय प्राप्त होने वाली कीमतों की सदैव अनिश्चिता बनी रहती है। अतः उत्पादन, उत्पादकता एवं कीमतों का सही आकलन करना आवश्यक हो जाता है। फार्म प्रबन्ध का ज्ञान इसके आंकलन में सहायक होता है।

3. **कृषि उत्पादों के अनुमानित उत्पादन, उत्पादकता व कीमतों को प्राप्त करने के लिए फार्म योजना बनाना-** फार्म प्रबन्ध का ज्ञान होने से किसान इस तरह फार्म योजना तैयार करता है कि उत्पादन एवं उत्पादकता के लक्ष्य की प्राप्ति के साथ-साथ वह अपने उत्पादों की उचित कीमत भी प्राप्त कर सके।
4. **फार्म योजना के संचालन से प्राप्त लाभ अथवा हानि को वहन करना-** सामान्यता फार्म योजना के समुचित क्रियान्वयन के फलस्वरूप निर्धारित लक्ष्यों की सकारात्मक प्राप्ति की अधिक सम्भावना रहती है और उसके अनुसार प्रत्याशित लाभ भी प्राप्त होता है। कभी-कभी मौसम एवं कीमतों की प्रतिकूलता की दशा में फार्म योजना से हानि भी हो सकती है। इस प्रकार फार्म योजना को कार्यान्वित करने से उत्पन्न हुए लाभ अथवा हानि को फार्म प्रबन्धक को ही वहन करना पड़ता है।

8.4.2 कृषि (फार्म) प्रबन्ध की विषय सामग्री

फार्म प्रबन्ध की मुख्य भूमिका फार्म संगठन एवं क्रिया-कलाप के बारे में इस प्रकार निर्णय लेना है। जिससे कि फार्म से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए फार्म प्रबन्ध के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों का अध्ययन किया जाता है-

1. फार्म का चुनाव, क्षेत्रफल एवं मूल्यांकन।
2. फार्म संसाधनों का मूल्यांकन।
3. व्यवसायिक इकाइयों के सम्बन्ध का अध्ययन।
4. व्यय सम्बन्धी निर्णय का अध्ययन।
5. आय एवं व्यय के अनुपात के चुनाव का अध्ययन।
6. फार्म योजना एवं पक्षेत्रीय आय- व्यय
7. फार्म मूल्य लाभ एवं साख
8. प्रत्येक व्यवसायिक इकाई एवं सम्पूर्ण फार्म पर आय एवं व्यय का अध्ययन।
9. फार्म उत्पादन का विपणन।
10. जोखिम एवं अनिश्चितता।

उपर्युक्त विषय आपस में इस प्रकार सम्बन्धित है कि उन्हें अलग करना सम्भव नहीं। इसलिए व्यवसाय की न्यूनता एवं विकल्प की परिधि में समझने हेतु सभी विषयों का समुचित अध्ययन आवश्यक है।

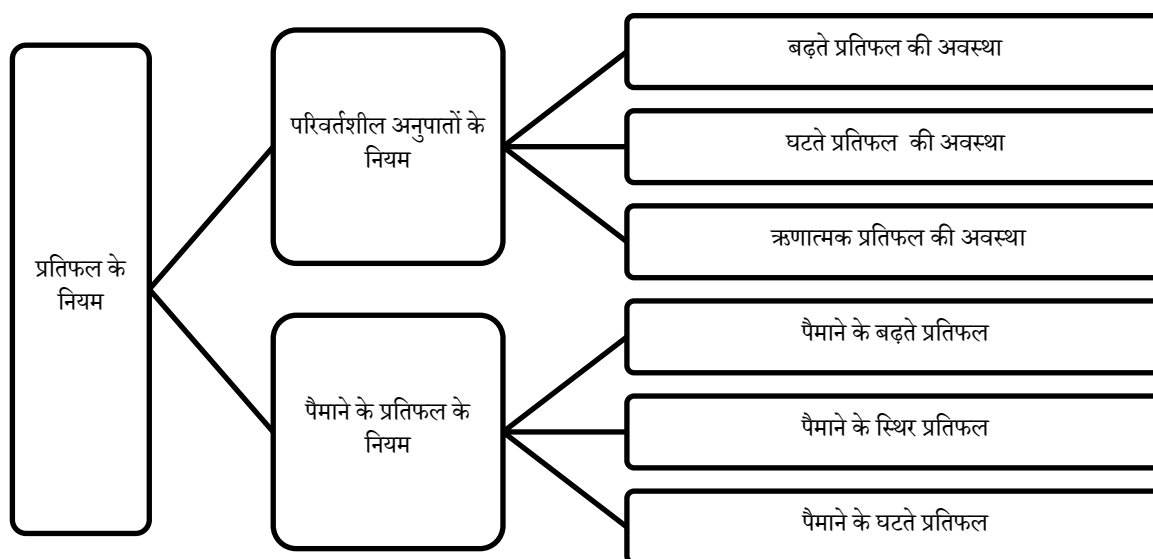
8.5 कृषि प्रबन्धन के सिद्धान्त

कृषि व्यवसाय की सफलता के लिए व्यासायिक सिद्धान्त किसानों को कृषि फार्म पर विभिन्न प्रकार के कृषि कार्यों को सम्पादित करने के लिए निर्णय लेने में सहायक होते हैं। किसान किस अनुपात में कौन सी फसल बोये, कौन सी फसल लाभदायक होगी। अधिकतम उत्पादन हेतु कौन सी फसल लाभदायक होगी, उत्पादन के विभिन्न साधनों को किस अनुपात में प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। इन बातों के सम्बन्ध में उचित निर्णय हेतु

फार्म प्रबन्ध का ज्ञान जरूरी है। फार्म प्रबन्ध की सहायता से उत्पादन लागत को कम करके पैदावार को बढ़ाया जा सकता है। फार्म पर एक ही निर्णय लेने के लिए एक से अधिक फार्म प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है।

8.5.1 प्रतिफल के नियम

कृषि उत्पादन के साधनों को अल्पकाल तथा दीर्घकाल में विभिन्न प्रकार से समायोजित किया जा सकता है, अल्पकाल में कुछ साधन ही परिवर्तनशील होते हैं, जबकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील हो सकते हैं इसलिए अल्पकाल तथा दीर्घकाल में प्रतिफल के नियम भिन्न-भिन्न होते हैं- अल्पकाल में परिवर्तशील अनुपातों के नियम तथा दीर्घकाल में पैमाने के प्रतिफल के नियम।



A. परिवर्तनशील अनुपात के नियम या उत्पत्ति हास नियम-

यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है। इस नियम के अनुसार अन्य कृषि उत्पादन के साधनों के मात्रा को स्थिर रखते हुए, जब एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो कुल उत्पादन तो बढ़ता है परन्तु औसत और सीमान्त उत्पादन घटता है और अन्त में कुल उत्पादन भी घटता जाता है।

स्टिगलर के अनुसार - “जब किसी साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है, तो एक सीमा के पश्चात् पहले उस साधन का सीमान्त उत्पादन और फिर औसत उत्पादन घट जायेंगे।”

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने कृषि के सम्बन्ध में घटते प्रतिफल का विवेचन इस प्रकार किया - भूमि की खेती में पूँजी और श्रम की मात्रा बढ़ने से उत्पादन मात्रा में सामान्यतः आनुपातिक वृद्धि से कम वृद्धि होता है। बशर्ते कृषि तकनीक में कोई सुधार न हुआ हो।

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ -

जब कुछ साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उससे उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे तालिका (8.1) में प्रदर्शित किया गया है। अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब श्रम की मात्रा बढ़ायी जाती है तो उसका कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है।

उसके तालिका 8.1 में प्रदर्शित किया गया है। तालिका (8.1) से स्पष्ट है कि श्रम की इकाई में वृद्धि करने से प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते हैं। क्योंकि इस अवस्था में AP लगातार बढ़ता है।

इसीलिए इस अवस्था को **बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था** कहते हैं। इसके बाद AP गिरना शुरू हो जाते हैं जबकि MP पहले ही गिरने लगता है। ऐसी स्थिति में TP भी घटती दर से बढ़ता है। यह अवस्था **घटते औसत उत्पादन की अवस्था** कहलाती है। जबकि श्रम की और इकाईयों के प्रयोग से अन्त में TP भी गिरने लगता है जब कि MP ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था **घटते कुल उत्पादन की अवस्था** कहलाती है।

तालिका (8.1)

एक परिवर्तनशील साधन में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन

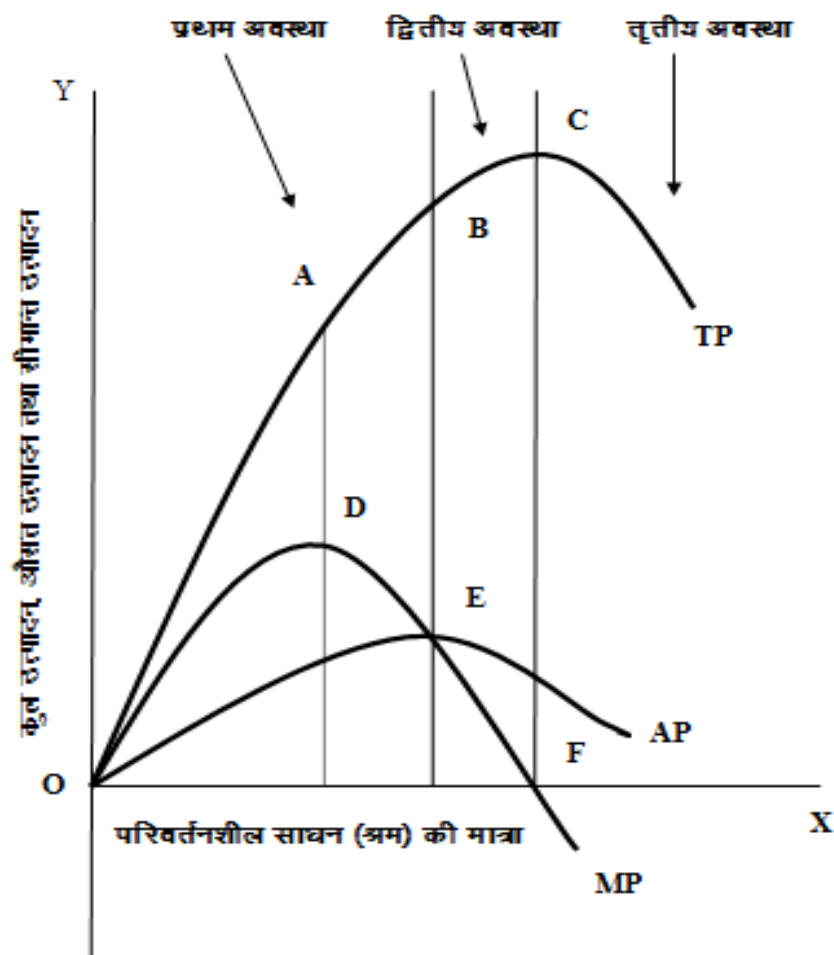
श्रम की इकाईयाँ	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पाद (AP)	सीमान्त उत्पाद (MP)	अवस्थाएँ
1	21	21	21	प्रथम अवस्था
2	50	25	29	
3	81	27	31	
4	108	27	27	द्वितीय अवस्था
5	125	25	17	
6	138	23	13	
7	138	19.7	0	तृतीय अवस्था
8	128	16	- 10	

इस कारण उत्पादन को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। एक परिवर्तनशील साधन के उत्पादन फलन की तीन अवस्थाओं को चित्र (8.1) द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। जिसमें X अक्ष पर परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा तथा Y अक्ष पर कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन को दर्शाया गया है। TP वक्र को देखने पर पता चलता है कि वह A बिन्दु तक तेजी से बढ़ता है। क्योंकि इस स्थिति में MP भी बढ़ता है। A बिन्दु मोड़ बिन्दु है क्योंकि यहाँ तक TP बढ़ती दर से बढ़ता है MP तथा AP भी बढ़ते हैं।

इसके बाद MP घटने लगता है और E बिन्दु के बाद AP भी घटने लगता है। इसलिए B बिन्दु के बाद TP घटती दर से बढ़ता है और कुल उत्पादन C बिन्दु पर अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करता है जबकि F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है और जब TP घटने लगता है तो MP ऋणात्मक हो जाता है। वास्तव में TP, AP तथा MP का बढ़ना, घटना तथा MP का ऋणात्मक हो जाना ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएँ हैं।

- 1. प्रथम अवस्था (बढ़ते प्रतिफल की अवस्था):-** प्रारम्भ में जब श्रम की इकाईयों को बढ़ाया जाता है तो स्थिर साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है। क्योंकि परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जिससे परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाने से स्थिर साधनों का गहन तथा पूर्व प्रयोग होता है। जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाईयाँ जोड़ी जाती हैं स्थिर साधन की कार्यक्षमता भी बढ़ती जाती है और MP बढ़ता है जिससे TP बढ़ती दर से बढ़ता है अतः प्रारम्भ में

TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते हैं। प्रथम अवस्था तब समाप्त होती है जब AP वक्र उच्चतम बिन्दु पर होता है और जहाँ पर $MP = AP$ होता है। रेखाचित्र में इस स्थिति को E बिन्दु द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस अवस्था को 'बढ़ते हुए औसत उत्पादन अवस्था' या 'बढ़ते प्रतिफल का नियम' कहा जाता है।



चित्र (8.1) परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

2. **द्वितीय अवस्था (घटते प्रतिफल की अवस्था):-** प्रथम अवस्था के बाद भी जब स्थिर साधन की तुलना में परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो स्थिर साधन की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम होती जाती है और परिवर्तनशील साधन में जैसे-जैसे वृद्धि की जाती है। वैसे-वैसे ही स्थिर साधन अपेक्षाकृत न्यून होते जाते हैं। जिससे MP तथा AP घटने लगते हैं लेकिन धनात्मक रहते हैं। जिस कारण TP घटती दर से बढ़ता है। चित्र में TP के C बिन्दु तथा MP के F बिन्दु तक यही स्थिति है। जब C बिन्दु पर TP अधिकतम तथा F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है। एक उत्पादक के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में रह कर ही उत्पादक को उत्पादन करना होता है। इस अवस्था को 'घटते प्रतिफल की अवस्था' या 'घटती सीमान्त व औसत उत्पादन की अवस्था' कहा जाता है।

3. **तृतीय अवस्था (ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था):-** जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा को बढ़ाते जाते हैं तो एक ऐसी अवस्था आती है। जब TP घटने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की इकाईयां स्थिर साधन की तुलना में अधिक हो जाती है जिससे वह एक-दूसरे के काम में बाधा डालने लगती है। जिसके फलस्वरूप TP बढ़ने के बजाये घटने लगता है। इस अवस्था को **‘ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था’** कहा जाता है। क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। इसलिए एक विवेकशील उत्पादक इस अवस्था में उत्पादन करना पसन्द नहीं करेगा।

B. पैमाने के प्रतिफल के नियम-

पैमाने के प्रतिफल का विचार इस बात का अध्ययन करता है कि यदि सभी साधनों में अनुपातिक परिवर्तन कर दिया जाये तो उत्पादन में किस प्रकार से परिवर्तन होगा। इसमें साधनों की निरपेक्ष मात्राओं में ही परिवर्तन होता है परन्तु उनके आपसी अनुपात में परिवर्तन नहीं होता, इसे पैमाना रेखा द्वारा दर्शाया जाता है। जब एक विशिष्ट पैमाना रेखा पर साधनों की मात्राओं को परिवर्तित किया जाता है तो उत्पादन में जो परिवर्तन होगा। उसे पैमाने के प्रतिफल द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या समोत्पादन वक्रों द्वारा की जा सकती है कि साधनों में आनुपातिक वृद्धि करने अर्थात् पैमाना रेखा पर साधनों की वृद्धि करने पर उत्पादन में क्या परिवर्तन होगा। जब सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया जाता है तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल की तीन अवस्था प्राप्त हो सकती है -

1. **पैमाने के बढ़ते प्रतिफल** - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे **पैमाने के बढ़ते प्रतिफल** कहते हैं। दूसरे शब्दों में पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः कम और कम वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। जैसे-सभी साधनों को 10 प्रतिशत बढ़ाया जाये तो उत्पादन 20 प्रतिशत बढ़ जाये तो इसे **‘पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था’** कहा जाएगा।
2. **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** - जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात् पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** कहते हैं अर्थात् पैमाने के स्थिर प्रतिफल में उत्पादन में समान वृद्धि के लिए साधनों की मात्राओं में समान अर्थात् उसी अनुपात में वृद्धि करनी पड़ती है। जैसे सभी साधनों में 10 प्रतिशत वृद्धि करने पर उत्पादन में भी 10 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है तो इसे **‘पैमाने के स्थिर प्रतिफल की अवस्था’** कहा जाएगा।
3. **पैमाने के घटते प्रतिफल** - जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे **पैमाने के घटते प्रतिफल** कहते हैं। अर्थात् पैमाने के घटते प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि करने के लिए साधनों की मात्राओं में क्रमशः अधिक वृद्धि करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ - सभी साधनों में 10 प्रतिशत वृद्धि करने पर उत्पादन में मात्र 8 प्रतिशत ही बढ़े तो इसे **‘पैमाने के घटते प्रतिफल की अवस्था’** कहा जाएगा।

8.5.2 तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त

भौगोलिक, भौतिक तथा आर्थिक तत्वों की भिन्नता के कारण अलग अलग फसलें पैदा की जाती हैं और ये उत्पादित फसलें एक क्षेत्र में दूसरे क्षेत्र की अपेक्षा अधिक लाभदायक साबित होती हैं। तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त विभिन्न क्षेत्र के किसानों के अधिकतम लाभ की प्राप्ति के लिए फसलों के चयन में सहायक होता है। किसान द्वारा उत्पादित फसलों के लाभ दो प्रकार के होते हैं-

1- निरपेक्ष लाभ 2- सापेक्ष लाभ निरपेक्ष लाभ की तुलना में सापेक्ष लाभ का किसानों के लिए अधिक महत्व है। सापेक्ष लाभ या तुलनात्मक लाभ में श्रम के भौगोलिक विभाजन तथा उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन लागतें भिन्न भिन्न होती हैं। जलवायु, प्राकृतिक साधनों, भौगोलिक स्थिति एवं श्रम की कुशलता में अन्तर होने के कारण एक क्षेत्र किसी वस्तु को किसी दूसरे क्षेत्र की अपेक्षा कम लागत में उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है, जिसमें उसकी उत्पादन की तुलनात्मक लागत सबसे कम हो। इसलिए जब कोई किसान किसी दूसरे क्षेत्र के किसान के साथ व्यापार करता है, तो वह उन वस्तुओं का विक्रय करेगा, जिनमें उसकी उत्पादन लागत तुलनात्मक रूप से कम है।

इस प्रकार तुलनात्मक उत्पादन लागत वाली वस्तु में विशिष्टीकरण प्राप्त कर उस क्षेत्र के किसान उस वस्तु का निर्यात प्रारम्भ कर देंगे और अपनी अन्य आवश्यकताओं या तुलनात्मक रूप से अधिक लागत वाली वस्तुओं का आयात करेंगे जिससे देश की राष्ट्रीय आय पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

8.5.3 साधनों के प्रतिस्थापन का सिद्धान्त

फसलों के उत्पादन की प्रक्रिया में किसानों के सामने सबसे कठिन समस्या यह होती है, कि वह किस प्रकार उत्पादन लागत को कम करें तथा अपने उत्पादन को अधिक करें। चाहे यह कार्य फसलों के बोने से सम्बन्धित हो, सिंचाई, खरपतवार या उर्वरकों के प्रयोग आदि अनेकों कार्यों से जिन्हें किसानों को अपने उत्पादन कार्य में प्रयोग में लाना होता है। प्रत्येक साधन की लागत अलग-अलग होती है, जिससे उत्पादन लागत भी अलग-अलग हो जाती है। इसलिए किसान उत्पादन के साधनों के संयोग के स्तर को ज्ञात करना चाहता है, जहाँ उस कार्य को करने की न्यूनतम उत्पादन लागत लाने के लिए अधिक लागत वाले साधन या उत्पाद क्रिया के स्थान पर कम लागत वाले साधन या उत्पादन क्रिया का चुनाव करता है।

किसानों के पास उत्पादन के साधन सीमित मात्रा में होते हैं। जिस कारण उसे साधनों को विभिन्न प्रयोगों में इस प्रकार आंबटित करना पड़ता है कि उसका लाभ अधिकतम हों और लागत न्यूनतम रहें। इसके लिए किसान महंगे उत्पादन साधनों को सस्ते उत्पादन साधनों से प्रतिस्थापित करता है। इस प्रतिस्थापन क्रिया में उत्पादन के साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा कीमत को ध्यान में रखा जाता है। जहाँ एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा मूल्य का अनुपात अन्य साधन की उत्पादकता तथा मूल्यानुपात के बराबर होता है वहाँ किसान अधिकतम उत्पादन, न्यूनतम लागत में प्राप्त कर सकता है।

8.5.4 लागत का सिद्धान्त

लागत का सिद्धान्त किसानों को फार्म पर होने वाली विभिन्न प्रकार की लागतों के आधार पर निर्णय लेने में सहायक होता है। किसान किसी वस्तु का कितना उत्पादन करेगा, यह वस्तु की लागत और उसके बाजार मूल्य पर निर्भर करता है। किसान बाजार में जिस वस्तु की पूर्ति करता है उस पर लागत का प्रभाव पड़ता है। किसी वस्तु के उत्पादन में किसान जितनी भी लागत लगाता है। उसे मुख्य रूप से दो भागों में बाटा जा सकता है। **प्रथम** कुल स्थिर लागत तथा **द्वितीय** कुल परिवर्तनशील लागत। कुल स्थिर लागत वे लागतें होती हैं, जो उत्पादन प्रक्रिया के प्रारम्भ में प्रमुख होती हैं। जैसे- भूमि, भवन, यन्त्र, ट्यूबवैल आदि। इन लागतों को किसान को अवश्य वहन करना पड़ता है। कुछ उत्पादन न होने की भी दशा में ये लागतें बनी रहती हैं। जबकि कुल परिवर्तनशील लागत को प्रमुख लागत भी कहते हैं। यह उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित होती रहती है। उत्पादन न होने की स्थिति में यह लागत शून्य होती है। जैसे- उत्पादन कार्य में उपयोग होने वाले बीज, खाद, कीटनाशक, क्षम, कृषि यन्त्र हेतु ईंधन आदि। किसान जब उत्पादन कार्य सम्पादित करता है, तो उसे दोनों प्रकार की लागतों को वहन करना पड़ता है। इसलिए उत्पादक उस वस्तु के उत्पादन को चुनता है। जिसका मूल्य उनकी उत्पादन लागत के अतिरिक्त उसे कुल लाभ भी प्रदान करता है।

8.5.5 तुलनात्मक समय का सिद्धान्त

जब फार्म पर प्रयोग में लाये गये विभिन्न प्रकार के साधनों से प्राप्त लाभ एक साथ न प्राप्त होकर अलग-अलग समयों पर प्राप्त होते हैं अथवा विभिन्न उद्यमों में पूंजी निवेश एक साथ न होकर अलग-अलग समयों में एवं अलग-अलग मात्राओं में होता है, तो ऐसी परिस्थितियों में कृषकों को यह निर्णय लेना होता है कि कौन-सी उत्पादन प्रक्रिया उसके लिए लाभप्रद होती है। अलग-अलग समय पर लाभ प्राप्त होने अथवा भिन्न-भिन्न लागत होने की दशा में तुलनात्मक समय के सिद्धान्त द्वारा उद्यमों का चयन आर्थिक रूप से सरलता से किया जाता है।

तुलनात्मक समय का सिद्धान्त किसानों को सीमित पूंजी सम्बन्धी, लागत सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायक होता है। समय सम्बन्धी अन्य निर्णय जिसमें विभिन्न विकल्पों से विभिन्न समयों में भिन्न लाभ प्राप्त होता है अथवा लागत व्यय भिन्न होते हैं। तुलनात्मक समय के सिद्धान्त द्वारा निर्णय सरलता से लिये जा सकते हैं।

सीमित पूंजी वाले कृषक अपनी बचत को बैंकों में न जमा करके विभिन्न उद्यमों में लगाते हैं। जहां उन्हें बैंकों से अधिक आमदनी प्राप्त होती है। अतः सीमित पूंजी वाले किसानों के लिए ब्याज दर उद्यमों से प्राप्त होने वाली आय की दर होती है। अधिक पूंजी वाले किसान अपनी पूंजी बैंकों में जमा करते हैं। जहां उन्हें एक निश्चित दर ब्याज मिलती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सीमित एवं असीमित पूंजी वाले किसानों को एक ही प्रकार के निर्णय लेना लाभप्रद नहीं होता। इस प्रकार समय सम्बन्धी अन्य समस्याएं भी तुलनात्मक समय सिद्धान्त द्वारा हल की जा सकती हैं।

8.5.6 कृषि प्रबन्धन के आधुनिक सिद्धान्त

छोटे खेतों के सन्दर्भ में कृषि प्रबन्धन के दो पूरक सिद्धान्त हैं। पहला **कृषि प्रणाली सिद्धान्त** तथा दूसरा **उद्देश्यानुसार प्रबन्धन के सिद्धान्त**। इसमें नियोजन, संगठन, नियन्त्रण जैसे प्रबन्धकीय कार्यों को शामिल किया जाता है। इन प्रक्रियाओं के उपयोग के माध्यम से समय पर कृषि प्रणाली के संचालन को नियन्त्रित किया जाता है।

व्यावसायिक फार्म प्रबन्ध में अधिकतम वित्तीय लाभ के उद्देश्य से, परम्परागत व्यावसायिक फार्म के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। इसके विपरीत हाल के दशकों में कृषि प्रणाली सिद्धान्त को केवल औपचारिक प्रमुखता के लिए किया जाता है। दोनों सिद्धान्तों का प्रयोग एक खेत के प्रबन्धन के वर्णनात्मक या सकारात्मक विश्लेषण के लिए किया जाता है। जिससे किसान अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

1. कृषि (फार्म) प्रणाली सिद्धान्त- फार्म प्रणाली सिद्धान्त का प्रमुख उद्देश्य किसानों के हित के लिए लक्ष्य निर्धारण, गतिशील कृत्रिम प्रणाली द्वारा कृषि उत्पादन के माध्यम से आय सृजन करना है। सामान्यतया फार्म प्रणाली सरल के बजाए जटिल प्रणाली है। किसी विशेष कृषि प्रणाली की विशिष्टता इसके स्थान, इतिहास, संसाधनों व मानव तत्वों का परिणाम है। कृषि प्रणाली सिद्धान्त में कृषि आगतों की पूर्ति, साख संस्थाओं स्थानीय सामुदायिक संस्थाओं और सरकारी एजेंसियों को सम्मिलित किया जाता है। कृषि प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों को भौतिक तथा गैर भौतिक रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है। भौतिक संसाधनों जैसे- भूमि, पानी, भवन, मशीनरी आदि को सम्मिलित किया जाता है, जबकि गैर भौतिक संसाधनों की सूची बनाना कठिन है। इसमें प्रबन्धन का ज्ञान व कौशल श्रम और खेत प्रणाली के सामाजिक संगठन ऋण पात्रता, संसाधनों का गठन, कृषि साख अनुपात आदि को शामिल किया जाता है।

कृषि प्रणाली सिद्धान्त में किसी खेत (फार्म) प्रणाली के नजरिए से पांच प्रमुख उपखण्ड को शामिल किया जाता है-

1. तकनीकी उपखण्ड जिसमें संसाधनों, प्रौद्योगिकी ज्ञान और अवसरों का उपयोग कृषि उत्पादों का उत्पादन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। तकनीकी उपखण्ड में अपने आप में अनेक उपखण्ड सम्मिलित है, जैसे- फसल प्रणाली, सिंचाई प्रणाली। किसी विशेष कृषि प्रणाली में सटीक प्रकृति भौगोलिक, सामाजिक आर्थिक और तकनीकी बाधाओं के द्वारा उत्पादन का निर्धारण किया जाता है।
2. संगठनात्मक तथा संरचनात्मक उपखण्ड हैं, जैसे- प्राधिकार, संचार, कार्य विवरण, दायित्व निर्धारण तथा कार्य आंबटन जो कृषि प्रणाली में आते है। लेकिन छोटे फार्मों में ये उपखण्ड विस्तृत नहीं होते।
3. अनौपचारिक संरचनात्मक उपखण्ड जो दो या अधिक व्यक्तियों के शामिल होने पर मौजूद होता है फार्म सामाजिक संगठन में अधिक से अधिक लोग सम्मिलित होते हैं जैसे - कृषक परिवार, श्रमिक, पड़ोसी आदि।
4. लक्ष्यों और मूल्यों का उपखण्ड जो कृषि प्रणाली उद्देश्य पूर्ण संगठन से संबधित है।
5. प्रबन्धकीय उपखण्ड इसमें माध्यम से पूरी कृषि प्रणाली के लिए लम्बी व छोटी अवधि की योजना का विकास उद्यमों पर निर्णय, तकनीकी चयन, संसाधनों का आंबटन, अवसरों का अधिकार, नियन्त्रण की स्थापना प्रक्रिया तथा सभी उपखण्डों के बीच सम्बन्ध तथा समन्वय करना है। प्रबन्धकीय उपखण्ड इसमें शामिल व्यक्तियों के ज्ञान, अनुभव, निर्णय तथा सूचना प्रणालियों के प्रयोग पर निर्भर करती है।

बड़े खेत (फार्म) में ये पांचों उपखण्ड आवश्यक है। जबकि छोटे खेत पर संगठनात्मक संरचना और अनौपचारिक सामाजिक उपखण्ड का बहुत महत्व नहीं है। तकनीकी, संरचनात्मक अनौपचारिक, लक्ष्य तथा मूल्य एवं प्रबन्धकीय पांचों उपखण्ड कृषि प्रणाली को समग्र प्रणाली बनाने में सहायक है। ये इमारत की ईंट है जिन्हें प्रक्रिया, नेतृत्व, निर्णय क्षमता, सूचना प्रवाह तथा नियंत्रण तन्त्र के सीमेन्ट से जोड़ा जाता है।

2. उद्देश्यानुसार प्रबन्धन के सिद्धान्त- कृषि प्रणाली के उद्देश्यानुसार प्रबन्धन सिद्धान्त सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक रूप में अवसरों से भरा है। इसमें प्रबन्धन कार्यों का नियोजन किया जाता है। प्रबन्धन क्षेत्र में संगठन के द्वारा उत्पादन, विपणन, वित्त और कर्मचारियों की संख्या को नियन्त्रित के लिए नियोजन, संगठन तथा नियन्त्रण मानक है। कृषि प्रणाली के लक्ष्य फार्म के हित धारकों तथा मालिकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। वास्तविक लक्ष्यों का चुनाव जीविका, लाभ, विकास और संसाधन संरक्षण के ऊपर निर्भर करते हैं।

उद्देश्यानुसार प्रबन्धन में लघु, मध्यम और लम्बी अवधि के लक्ष्यों के लिए, दीर्घकालीन अनिश्चिता के बीच प्रबन्धन के उद्देश्यों का सफल क्रियान्वयन एक कठिन कार्य है। उद्देश्यानुसार प्रबन्ध प्रणाली के मुख्य सोपान निम्न हैं-

(अ) नियोजन- समय के साथ साल दर साल के कृषि प्रणाली प्रबन्धन के लिए तीन बुनियादी सवालों के जबाब का फैसला किया जाता है- 1. क्या उत्पादन करें? 2. कैसे उत्पादन करें? 3. कितना उत्पादन करें? इन सवालों के जबाब द्वारा वार्षिक उत्पादन की योजना बनाई जाती है। योजना में क्या, कैसे, और कितना पर विचार-विमर्श तथा निर्णय लिया जाता है। जो उत्पादन अर्थशास्त्र के बुनियादी नियम पर आधारित है। योजना वार्षिक आधार पर बनाई जाती है, जिसमें समय-समय पर संशोधित किया जाता है।

(ब) संगठन- योजना की तुलना में संगठन विश्लेषणात्मक के बजाए प्रशासनिक प्रक्रिया है। संगठन का उद्देश्य कृषि प्रणाली की योजना का सुनिश्चित कार्यान्वयन है। योजना में क्या, कैसे और कितना उत्पादन करना है कि जानकारी प्राप्त की जाती है। वहीं संगठन में आवश्यक कार्य आबंटन, समन्वय, आवश्यक जानकारी तथा व्यवस्था का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना है। यह संगठन की क्षमता द्वारा प्रभावित होती है।

(स) नियन्त्रण- उद्देश्यानुसार प्रबन्धन सिद्धान्त में नियन्त्रण योजना के कार्यान्वयन में निगरानी एवं निरीक्षण की प्रक्रिया है। नियन्त्रण का कम या विस्तृत तरीके से प्रयोग किया जाता है। यह विश्लेषण की प्रक्रिया पर निर्भर करता है। नियन्त्रण में फार्म के आंकड़े, खेत के आंकड़े, कृषि विशेषज्ञों तथा सलाहकार की राय को सम्मिलित किया जाता है। साथ ही वित्तीय व भौतिक जानकारी को भी शामिल किया जाता है। जिसके तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा आगे की योजना बनाई जाती है।

8.6 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. वारेन के अनुसार फार्म प्रबन्ध कृषि के सिद्धान्तों का अध्ययन है।
2. कृषि अर्थशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है।
3. प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल ने कृषि के सम्बन्ध में प्रतिफल का विवेचन की है।
4. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे कहते हैं।
5. जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात् पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे कहते हैं।
6. जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे कहते हैं।
7. में श्रम के भौगोलिक विभाजन तथा उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन लागतें भिन्न भिन्न होती हैं।
8. जहाँ एक साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा मूल्य का अनुपात अन्य साधनों की उत्पादकता तथा मूल्यानुपात के बराबर होता है तो किसान उत्पादन, लागत में प्राप्त कर सकता है।
9. किसी वस्तु के उत्पादन में किसान मुख्य रूप से दो लागत लगाता है।
10. बड़े खेत (फार्म) में ये पांचों उपखण्ड आवश्यक हैं। जबकि छोटे खेत पर और उपखण्ड का बहुत महत्व नहीं है।

सही उत्तर का चुनाव करो:-

1. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहलाता है -

(क) दीर्घकालीन उत्पादन करना	(ख) अल्पकालीन उत्पादन फलन
(ग) पैमाने के प्रतिफल	(घ) कोई नहीं।
2. जब औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो -

(क) सीमान्त उत्पादन बढ़ता है।	(ख) कुल उत्पादन गिरता है।
(ग) सीमान्त उत्पादन के बराबर होता है।	(घ) सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होता है।
3. प्रो. मार्शल के अनुसार उत्पादन हास नियम लागू होता है -

(क) विनिर्माण उद्योग में	(ख) कृषि में
(ग) कारखानों में	(घ) सभी उद्योगों में

4. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम अवस्था वहाँ समाप्त होती है जहाँ -
 (क) MP अधिकतम होता है (ख) TP अधिकतम होता है
 (ग) AP अधिकतम होता है (घ) उपर्युक्त सभी
5. ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में -
 (क) स्थिर साधन की MP ऋणात्मक होती है (ग) क और ख
 (ख) परिवर्तनशील साधन की MP ऋणात्मक होती है (घ) कोई नहीं
6. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में -
 (क) AP ऋणात्मक होता है (ख) MP ऋणात्मक होता है
 (ग) TP गिरता है (घ) ख और ग
7. प्रथम अवस्था में मोड बिन्दु के बाद TP वक X अक्ष के प्रति -
 (क) उन्नतोदर (उन्तत) (ख) अवनतोदर (अवतल)
 (ग) क और ख (घ) कोई नहीं
8. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम प्रदर्शित करता है:-
 (क) बढ़ते प्रतिफल (ख) स्थिर प्रतिफल
 (ग) घटते प्रतिफल (घ) उपर्युक्त सभी
9. कृषि प्रणाली प्रबन्धन के लिए बुनियादी सवालों के जबाव का फैसला किया जाता है:-
 (क) क्या उत्पादन करें? (ख) कैसे उत्पादन करें?
 (ग) कितना उत्पादन करें? (घ) उपर्युक्त सभी

8.7 सारांश

कृषि प्रबन्धन का कृषि अर्थशास्त्र में विशेष महत्व है। कृषि प्रबन्धन में कृषि कार्यो को सुव्यवस्थित ढंग इस प्रकार सम्पादित किया जाता है कि किसान को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसमें फार्म संगठन, संचालन, क्रय विक्रय तथा वित्तीय व्यवस्था आदि क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। कृषि प्रबन्धन में फार्म सम्बन्धी सम्पूर्ण आंकड़ें एकत्र कर फार्म हेतु योजना बनाई जाती है और कृषि आगतों को इस प्रकार आंशिकित किया जाता है कि कृषि कार्य सुचारू ढंग से सम्पन्न हो। किसान किस अनुपात में कौन सी फसल बोये, कौन सी फसल लाभदायक होगी।

उत्पादन के विभिन्न साधनों का किस प्रकार प्रतिस्थापन करें आदि बातों का निर्णय लेने के लिए कृषि प्रबन्धन के सिद्धान्तों जैसे- प्रतिफल के नियम, तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त, साधनों के प्रतिस्थापन का सिद्धान्त,

लागत का सिद्धान्त, तुलनात्मक समय का सिद्धान्त, कृषि प्रणाली सिद्धान्त तथा उद्देश्यानुसार प्रबन्धन के सिद्धान्त, की सहायता ली जाती है। जो किसान को क्या उत्पादन करें? कैसे उत्पादन करें? तथा कितना उत्पादन करें? आदि समस्याओं के समाधान में सहायक है।

8.8 शब्दावली

- **कृषि उपादानों** - कृषि उत्पादन के साधनों (आगातों)
- **हासमान प्रतिफल** - गिरता हुआ उत्पादन
- **कुल उत्पाद (TP)** - किसी परिवर्तनशील साधन के एक निश्चित इकाईयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है। उसे कुल उत्पादन कहते हैं।
- **सीमान्त उत्पाद (MP)** - साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।
- **औसत उत्पाद (AP)** - कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।
- **प्रतिस्थापन** - स्थानापन्नता अर्थात् एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
- **वैधानिक** - कानूनी
- **सार्वभौमिक** - सब जगह होना
- **पर्यवेक्षण** - निरीक्षण
- **दक्षता** - निपुणता, कुशलता
- **वरीयता** - प्रमुखता
- **समष्टिपरक** - वृहद् इकाई से सम्बन्धित बड़ी
- **व्यष्टिपरक** - सूक्ष्म इकाई से सम्बन्धित छोटी
- **लक्षित** - लक्ष्य के अनुसार या निश्चित लक्ष्य पर आधारित।
- **सहकारी** - वह व्यवस्था जिसमें कुछ लोग एक उद्देश्य के लिए साथ मिल कर कार्य करते हैं।
- **अनुदान/रियायत** - सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

1. व्यवसायिक सिद्धान्तों
2. अर्थशास्त्र
3. घटते प्रतिफल
4. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल
5. पैमाने के स्थिर प्रतिफल
6. पैमाने के घटते प्रतिफल
7. तुलनात्मक लाभ
8. अधिकतम उत्पादन, न्यूनतम लागत
9. प्रथम कुल स्थिर लागत तथा द्वितीय कुल परिवर्तन शील लागत
10. संगठनात्मक संरचना, अनौपचारिक सामाजिक।

सही उत्तर का चुनाव करो:-

1. (ख) 2. (ग) 3. (ख) 4. (ग) 5. (ख) 6. (घ) 7. (ख) 8. (घ) 9. (घ)

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सोनी, आर. एन. (2007) कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धरा
- माथुर, बी. एल. (2011) कृषि अर्थशास्त्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त, डॉ. शिव भूषण (2010) कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन आगरा।
- www.fao.org
- Bilgrami, S.A.R. 'An Introduction to Agricultural Economics' (2006) Himalaya Publishing House Delhi
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh 'Fundamentals of Agricultural Economics', (2006) Himalaya Publishing House Delhi

8.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949), *Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), *Agriculture and Economic Development*, Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), *Fundamentals Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), *Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): *Indian Agricultural Development since Independence*, Oxford & IBH, New Delhi.

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि (फार्म) प्रबन्धन से आपका क्या अभिप्राय है? कृषि प्रबन्धन के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. कृषि (फार्म) प्रबन्धन के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए कृषि अर्थशास्त्र तथा कृषि प्रबन्धन के सम्बन्ध की व्याख्या करें।
3. कृषि (फार्म) प्रबन्धन के विभिन्न सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

इकाई 9- कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियाँ एवं कृषि प्रबन्धन की समस्याएँ (Current Trends and Problems of Agricultural Management)

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियाँ
 - 9.3.1 भू-प्रबन्धन
 - 9.3.2 क्षरित भूमि प्रबन्धन
 - 9.3.3 उत्तम/उच्च उत्पादकता वाले बीज का प्रबन्धन
 - 9.3.4 जल प्रबन्धन
 - 9.3.5 उर्वरक प्रबन्धन (जैविक उर्वरक)
 - 9.3.6 मृदा संरक्षण
 - 9.3.7 कृषि बीमा प्रबन्धन
 - 9.3.8 बागवानी व्यवस्था प्रबन्धन
 - 9.3.9 कृषि वित्त प्रबन्धन - किसान क्रेडिट कार्ड
 - 9.3.10 कृषि सम्बन्धी जानकारी का प्रबन्धन
 - 9.3.11 खाद्य प्रबन्धन एवं प्रसंस्करण
 - 9.3.12 ई खेती (कृषि)
 - 9.3.13 अनुबन्ध खेती
- 9.4 कृषि प्रबन्धन की समस्याएँ
- 9.5 अभ्यास प्रश्न
- 9.6 सारांश
- 9.7 शब्दावली
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.10 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियों तथा कृषि प्रबन्धन की समस्याओं पर प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई के अध्ययन से आप कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियों सहित उसकी समस्याओं को जान जाएंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- ✓ कृषि प्रबन्धन हेतु सरकार की नई पहल को जान जायेंगे।
- ✓ कृषि प्रबन्धन की समस्याओं से अवगत हो जायेंगे।

9.3 कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियाँ

आधुनिक युग कृषि व्यवसायिकरण का युग है, क्योंकि वर्तमान समय में कृषि केवल जीवन निर्वाह का साधन ही नहीं है। बल्कि उद्योग की तरह व्यवसायिक रूप लेती जा रही है। इसलिए कृषि प्रबन्धन समय की आवश्यकता है। बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनों दिन घटता जा रहा है, तो दूसरी तरफ किसानों की मानसून पर निर्भरता और जलवायु परिवर्तन के चलते कृषि उत्पादन में जोखिम और अनिश्चितता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में बेहतर कृषि प्रबन्धन पर जोर देना बेहद जरूरी हो गया है। कृषि उत्पादन में अनिश्चितता के कारण जोखिम प्रबन्धन हेतु कृषि बीमा योजना शुरू की गई। किसानों को कृषि सम्बन्धी समस्त जानकारी उपलब्ध कराने के लिए किसान कॉल सेन्टर भी शुरू किए गए हैं। केन्द्र सरकार ने ग्रामीण विकास बैंक नाबार्ड के जरिये ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण ज्ञान केन्द्र (Rural Knowledge Centers) की स्थापना की गई। इन केन्द्रों में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी व दूरसंचार के तकनीक का उपयोग किसानों को वांछित जानकारी उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है।

कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की रिपोर्ट बताती है कि भारत में प्रतिवर्ष अपरदन के कारण भूमि उर्वरक क्षमता की क्षति होती है। इसलिए भूमि प्रबन्धन द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत को नुकसान से बचाया जाना चाहिए। सरकार की ओर से भूमि सुधार कार्यक्रम, बंजर भूमि सुधार कार्यक्रम सहित कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। कृषि विश्वविद्यालय तथा कृषि विभाग की ओर से गांव-गांव प्रशिक्षण के लिए व्यापक योजन बनाए जाने की जरूरत है। कृषि प्रबन्धन के लिए किसानों को मौसम के अनुरूप कृषि के तौर तरीके सिखाने, खाली पड़ी अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाने, नवीन सिंचाई तकनीक के प्रयोग तथा किसानों को औद्योगिक एवं औषधिय खेती का व्यापक प्रशिक्षण दिया जाना जरूरी है।

भारत में कृषि प्राचीन काल से ही किसानों की जीविका का साधन रही है। ऐसे में कृषि प्रबन्धन पर जोर देना नितान्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि बेहतर कृषि प्रबन्धन द्वारा ही देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए उचित खाद्यान्न व्यवस्था की जा सकती है और कृषि की लक्षित विकास दर को प्राप्त किया जा सकता है। भारत सरकार

द्वारा समय-समय पर बेहतर कृषि प्रबन्धन हेतु अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएं लागू की गईं। भारत में कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं-

9.3.1 भू-प्रबन्धन

भू-प्रबन्धन को भूमि के प्रति समग्र दृष्टिकोण के रूप में लिया जा सकता है, जिसमें व्यक्तियों एवं समुदायों के भू-अधिकारियों की मान्यता एवं उनके निहित अधिकार शामिल हैं। जिनमें भू-अभिलेखों का सृजन एवं रखरखाव, व्यक्तिगत अधिकारों में कटौती एवं अतिरिक्त भूमि के वितरण संबंधी भू-चकबन्दी कानूनों को लागू करना, काश्तकारी कानूनों को लागू करना तथा काश्तकारों का संरक्षण, तथा भूमि अधिकारों को लागू करना आदि आते हैं। भू-अभिलेखों का प्रबन्धन समग्र भू-प्रबन्धन का एक प्रारम्भिक पक्ष है।

इस लेख का मकसद भारत में भू-अभिलेखों के प्रबन्धन की चुनौतियों, समस्याओं तथा सम्भावित नैदानिक उपायों का विश्लेषण करना है। भूमि भारत में एक जटिल मुद्दा है। भारत का भू-प्रबन्धन काफी हद तक नौकरशाही नियन्त्रण में रहा है। भारत सरकार के राजस्व प्रशासन ने 1988-89 में भू-अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत और नक्शों का अंकीकरण करना शुरू किया। इसे 1992-93 में एक पूर्ण विकास कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया। तब से राज्यों में भी अपने तरीकों से भू-अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत करना शुरू कर दिया था। कुछ राज्यों में कम्प्यूटरीकरण का व्यापक इस्तेमाल हो रहा है। अपेक्षा की जा रही है कि कम्प्यूटरीकरण कार्यक्रम भू-प्रबन्धन प्रणाली में बदलाव लायेगा।

भू-आधुनिकीकरण कार्यक्रम काफी हद तक प्रौद्योगिकी क्षमता पर निर्भर करता है। इसलिए एस आई आर डी, एटीआई, कृषि विश्वविद्यालय, राज्य सरकार की प्रतिष्ठित संस्थाएं तथा नागरिक समाज आधारित प्रतिष्ठित संगठन इस कार्यक्रम में शामिल हैं। जो राष्ट्रीय तथा राज्यवार प्रारूप विकसित करने में लगे हैं।

9.3.2 क्षरित भूमि प्रबन्धन

भारत में थार की रेत उत्तर भारत के मैदानी खेतों को अनुपजाऊ बना रही है। इतना ही नहीं मिट्टी की ऊपरी परत, जो करीब 20 सेन्टीमीटर गहरी है, तेजी से नष्ट हो रही है और यही मिट्टी जीवनदायिनी है। ऐसे में क्षरित भूमि (degraded land) को संरक्षित करना ही एकमात्र विकल्प है। **संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन** की रिपोर्ट में भी यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रतिवर्ष 27 अरब टन मिट्टी अपरदन, जलभराव, क्षारीयकरण के कारण नष्ट हो रही है। मिट्टी का यह मात्रा एक करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि के बराबर है।

चूंकि भारत कृषि प्रधान देश है। इसके बाद भी भारत में करीब 50 फीसदी से ज्यादा भूमि किसी न किसी कारण बेकार पड़ी हुई है। इस बेकार पड़ी भूमि पर खेती न होने का एक बड़ा कारण इसका अनुपजाऊ होना है। इसके अलावा एक बड़ी समस्या यह भी है कि जो भूमि उपजाऊ है वह भी किसी न किसी कारण अनुपजाऊ होती जा रही है। देश में कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा हिस्सा क्षरित भूमि का है। इस भूमि को बचाना सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि विकास समय की जरूरत है। विकास की दौड़ में कृषि योग्य भूमि का प्रभावित होना भी स्वभाविक प्रक्रिया है। ऐसे में हमारे पास जो विकल्प हैं, उनमें अनुपयोगी मिट्टी को कृषि योग्य बनाना बेहद जरूरी है। इससे कृषि योग्य भूमि का रुतबा बरकरार रह पाएगा और खाद्य संकट की समस्या से भी निजात पाई जा सकती है।

आंकड़ों पर ध्यान दें तो भारत में मनुष्य भूमि अनुपात 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति है, जो दुनिया के न्यूनतम अनुपातों में से एक है। वर्ष 2025 में घटकर यह आंकड़ा 0.23 हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया जा रहा है। ऐसे में खेती की अनुपयोगी जमीन को खेती योग्य बनाकर एक बड़ी चुनौती से निबटा जा सकता है।

भारत में कुल भूमि क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टेयर है। इसमें अभी तक कृषि कार्य में करीब 144 मिलियन हेक्टेयर भूमि ली जा रही है। करीब 178 मिलियन हेक्टेयर भूमि विभिन्न कारणों से बंजर पड़ी हुई है। इसमें करीब 40 मिलियन हेक्टेयर क्षरित वन भी सम्मिलित हैं और 84 मिलियन हेक्टेयर क्षरित वर्षा पर आधारित हैं। भारत में मृदा अपरदन की दर करीब 2600 मिलियन टन प्रतिवर्ष है। देश की करीब 140 मिलियन हेक्टेयर भूमि जल तथा वायु अपरदन से प्रभावित है।

मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बचाना बेहद जरूरी है क्योंकि मृदा की उर्वराशक्ति के क्षीण होने का नुकसान किसी न किसी रूप में समूचे राष्ट्र को चुकाना पड़ता है। यदि फसलों की वृद्धि के लिए आवश्यक नाइट्रोजन, फास्फोरस, मैग्नीशियम, कैल्शियम, गंधक, पोटैश सहित अन्य तत्वों को बचाकर उसका समुचित उपयोग पौधे को ताकतवर बनाने में किया जाए तो एक तरफ हमारी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और दूसरी तरफ मृदा संरक्षण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण पहल होगी। हालांकि केन्द्र सरकार की ओर से भूमि सुधार कार्यक्रम, बंजर भूमि सुधार कार्यक्रम सहित कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इसे विस्तारित करने की जरूरत है।

9.3.3 उत्तम/उच्च उत्पादकता वाले बीज का प्रबन्धन

1966 के प्रयोग के बाद उच्च उत्पादकता वाले बीजों के प्रयोग को बढ़ावा मिला। जिससे गेहूँ का उत्पादन लगभग 4 गुना हो गया। चावल का उत्पादन भी बहुत बढ़ा। इसलिए उच्च उत्पादकता वाले उन्नत बीजों का प्रयोग बढ़ा।

उन्नत बीज मुख्यतः दो प्रकार का होता है एक परिशोधित या सुधरी किस्मों का बीज दूसरा संकर या हाईब्रिड बीज। सुधरी किस्मों के बीज में आनुवांशिक गुणों में स्थायित्व अधिक होता है। इन किस्मों को सावधानीपूर्वक उपयोग करने पर कई वर्षों तक उपयोग किया जा सकता है जबकि संकर बीज में आनुवांशिक गुणों में कम स्थायित्व होता है। अर्थात् एक बार फसल लेने पर संकर किस्मों का उत्पादन घट जाता है। अतः हर वर्ष नया बीज लेना होता है जैसे कि संकर बाजरा की किस्मों में होता है।

उन्नत किस्म बीजों की खोज के साथ इनकी पैदावार को बढ़ाना तथा उनका उचित वितरण भी आवश्यक है इसलिए सरकार ने राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगम तथा अनेक कृषि विश्वविद्यालयों को उन्नत किस्म के बीज उत्पादन तथा वितरण का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी दी। 1980-81 में 25 लाख क्विंटल उन्नत बीजों का वितरण किया गया, जो 2005-06 में बढ़ कर 126.74 लाख क्विंटल तक पहुंच गया। 2006-07 में अनुमानतः 149.63 लाख क्विंटल उन्नत बीजों का वितरण किया गया।

9.3.4 जल प्रबन्धन

भारत में हर साल कहीं बाढ़ की नौबत रहती है तो कहीं सूखे की। बाढ़ और सूखे के कारण कृषि तो प्रभावित होती ही है, लेकिन इसके अलावा भी कई कारणों से भारतीय खेती प्रभावित होती है, भारत में सिंचाई कुप्रबंधन के कारण करीब 6 से 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता से प्रभावित है। यह स्थिति पंजाब, हरियाणा,

उत्तर प्रदेश में ज्यादा है। इसी तरह करीब 6 मिलियन हेक्टेयर भूमि जलजमाव से प्रभावित है। देश में पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बीहार, उड़ीसा एवं उत्तर पूर्वी राज्यों में जलजमाव की समस्या है। असमतल भूक्षेत्र वर्षा जल से काफी समय तक भरा रहता है। इसी तरह गर्मी के दिन में यह अधिक कठोर हो जाती है। ऐसे में इसकी अम्लता बढ़ जाती है और इसमें खेती नहीं हो पाती। यदि इस समस्या का निराकरण कर दिया जाए तो खाद्य उत्पादन में आशातीत बढ़ोतरी होगी। इसी तरह रासायनिक खादों के अधिक प्रयोग के कारण अम्लीय भूमि भी हमारे देश की उत्पादन क्षमता को प्रभावित कर रही है। अम्लीय मृदा में विभिन्न पोषक तत्वों का अभाव हो जाता है। इससे मृदा अपरदन की संभावना बढ़ने लगती है। भारत में करीब 60 फीसदी कृषि भूमि वर्षा पर आधारित है। बदलते परिवेश में मानसून की सक्रियता कहीं कम तो कहीं ज्यादा होने से बाढ़ व सूखे के हालात रहते हैं। बाढ़ के कारण कृषि योग्य भूमि प्रभावित होती है बाढ़ के पानी के बहाव के साथ मिट्टी की ऊपरी परत भी बह जाती है। इसे जल अपरदन कहते हैं।

परिस्थितिकीविदों की मानें तो भारत में करीब हर साल करीब छः करोड़ टन उपजाऊ ऊपरी मिट्टी का कटाव होता है। पानी के साथ बहने वाली इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश, कैल्शियम, मैग्नीशियम के साथ ही अन्य सूक्ष्म तत्व भी बह जाते हैं। इससे किसानों का खेत अनुपजाऊ हो जाता है। मध्य एवं पूर्वी भारत जलजनित क्षरण की चपेट में ज्यादा आता है। इसका एक बड़ा कारण यहां की मिट्टी की स्थिति भी है। ऐसे में इस मिट्टी को बचाने के लिए सबसे उपयुक्त उपाय है मिट्टी के अनुकूल फसल चक्र का अपनाया जाना। जनजनित क्षरण से बचने के लिए जड़युक्त फसलों की खेती ज्यादा से ज्यादा करायी जाये। बाढ़ प्रभावित इलाके में पानी के तीव्र गति से होने वाले बहाव को रोकने के लिए जगह-जगह बाड़बंदी कराई जाए। पट्टीदार खेती करने वाले किसानों को मेड़बन्दी में विशेष सहयोग किया जाए।

कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि पौधे का प्रथम भोजन पानी माना गया है। पौधे को तैयार होने में करीब 90 फीसदी जल की आवश्यकता होती है। यह मिट्टी में उपस्थित तत्वों को पौधे तक पहुंचाता है। मिट्टी में समुचित आर्द्रता होना भी जरूरी होता है। मिट्टी में पानी कम होना और अधिक होना दोनों ही पौधे को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती हैं। इसलिए जल प्रबन्धन अति आवश्यक है।

सिंचाई को प्रोत्साहन देने हेतु फव्वारा प्रणाली (sprinkler system) को व्यापक रूप से कृषि क्षेत्र में लागू करना चाहिए। इस सिस्टम में जमीन के अन्दर पानी के पाईपों की फिटिंग करके उसमें भूमि के क्षेत्रफल को ध्यान में रखकर एक या दो जगह निकासी द्वार बना दिया जाता है। इस निकासद्वार पर घुमावदार फव्वारों को लगा दिया जाता है जो चारों तरफ घूम-घूम कर फसलों की सिंचाई करते हैं। इस प्रणाली को अपनाने से फसलों की सिंचाई संतुलित रूप से होती है।

9.3.5 उर्वरक प्रबन्धन (जैविक उर्वरक)

कृषि विशेषज्ञों के अनुसार कृषि में विभिन्न किस्मों के उर्वरकों (नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम – Nitrogen, phosphorus and potassium (NPK)) का उपयोग एक संतुलित अनुपात में ही किया जाना चाहिए। भारत के लिए अन्न फसलों हेतु मानक अनुपात 4 प्रतिशत, 2 प्रतिशत और 1 माना जाता है। नाइट्रोजन और फास्फोरस उर्वरकों के घरेलू उत्पादन में कमी को आयातों से पूरा किया जाता है। पोटेशियम के मामले में

सम्पूर्ण आवश्यकता आयात द्वारा ही पूरी की जाती है। उर्वरक उपभोग में भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। भारत अभी नाइट्रोजनी उर्वरकों की अपनी खपत का 34 प्रतिशत व फास्फोरस उर्वरकों की खपत का 82 प्रतिशत उत्पादन कर पाता है। पोटेशियम उर्वरकों के लिए भारत पूरी तरह से आयात पर ही निर्भर है।

अतः उर्वरकों के संतुलित उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए जैविक उर्वरकों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि की आवश्यकता है। रासायनिक उर्वरकों के बजाए जैविक उर्वरकों का उपयोग कृषि कार्य में करना अति आवश्यक है। कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद, लेमन ग्रास, ग्रीन मैन्योर ये सभी जैविक खाद में शामिल हैं। जैविक खाद के प्रयोग से मृदा की उर्वरता में वृद्धि, भूजल धारण क्षमता में वृद्धि, जैविक कीटनाशक से मित्र कीट भी सुरक्षित होते हैं, फसल अधिक गुणवत्ता वाली, मृदा में उपलब्ध लाभदायक जीवाणुओं की संख्या के हास में कमी, पर्यावरण प्रदूषण में कमी, भूमि के अधुलनशील तत्वों को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करना, रासायनिक खादों के मुकाबले सस्ती, टिकाऊ आदि अनेक गुण विद्यमान होते हैं।

समन्वित पोषण प्रबन्धन से तात्पर्य यह है कि पौधे को पोषक तत्व प्रदान करने वाले सभी संभव स्रोतों जैसे रासायनिक उर्वरक, जैविक खादें, जैविक उर्वरक, फसल अवशेष इत्यादि का कुशलतम समायोजन कर फसलों को संतुलित पोषण दिया जाए। ये सभी स्रोत पर्यावरण हितैषी हैं और इनसे मुख्य पोषक तत्व भी पौधों को धीरे-धीरे व लम्बे समय तक प्राप्त होते रहते हैं। सघन फसल प्रणाली के अन्तर्गत फसलें मृदा से जितने पोषक तत्वों का अवशोषण करती है उनकी क्षतिपूर्ति मृदा स्वस्थ बनाए रखने के लिए अति आवश्यक है। मृदा परीक्षण के आधार पर मुख्य, गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, लौह, तांबा, बोरोन, माल्डेनेम, मैगनीज व क्लोरीन की बहुत मात्रा की आवश्यकता होती है। यदि फसल अवशेष व अन्य जैविक खादों का नियमित प्रयोग होता रहे तो पौधों को इन तत्वों के अतिरिक्त पोटेश की भी कमी नहीं रहती है। फास्फोरस की कमी जीवाणु खाद बीज का जीवाणु उपचार करके पूरी की जा सकती है। समन्वित पोषण प्रबन्धन के प्रमुख सूत्र इस प्रकार है:-

1. वर्ष में एक बार दाल वाली फसल अवश्य लगानी चाहिए। ज्वार, बाजरा व मक्का के बाद रबी में चना, मसूर व बरसीम लगाएं। दाल वाली फसलों की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु की गांठें होती हैं जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण का काम करती हैं।
2. फसल अवशेषों को भी खाद के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इससे पोषक तत्वों के साथ-साथ मृदा में कार्बन की मात्रा भी अधिक बढ़ती है।
3. हरी खाद वाली फसलें जैसे ढेंचा, सनई, लौबिया व ग्वार उगाने से जमीन में नाइट्रोजन व कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।
4. जैविक उर्वरकों जैसे राइजोबियम, कल्वर, पी. एस. बी. व एजोटोबैक्टर आदि का प्रयोग करने से रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में कमी की जा सकती है।
5. अरण्डी व नीम की खली का प्रयोग भी समन्वित पोषण प्रबन्धन के अन्तर्गत किया जा सकता है। बुवाई से 15 दिन से 20 दिन पहले 8 से 10 टन खली को प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत में अच्छी तरह मिलाएं।
6. मिट्टी जांच के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों को प्रदान करने वाले, उर्वरकों को मृदा में डालें या फसल पर छिड़काव करें। भारतीय मृदाओं में प्रमुख रूप से जिंक, आयरन व मैगनीज की कमी पाई जाती है।

9.3.6 मृदा संरक्षण

मृदा को ऊपरी सतह को जल व वायु द्वारा होने वाले क्षरण से बचाना चाहिए। इसके लिए खेतों की मेड़बंदी करके वर्षा ऋतु में वर्षा जल को संरक्षित कर लिया जाए। इससे क्षेत्र विशेष में भूमिगत जलस्तर भी ऊपर उठेगा। जल कटाव से होने वाले नुकसान से भी मृदा को बचाया जा सकता है। मृदा में अधिक से अधिक जैविक खादों का प्रयोग करें जिससे भूमि की जलधारण क्षमता को बढ़ाया जा सके। कृषि कार्यों में बदलाव जैसे शून्य जुताई को अपनाकर भी मृदा स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। खेत की बार-बार जुताई करने से मृदा संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा को आवरण प्रदान करने वाली फसलों जैसे मूँग, उड़द, लोबिया आदि का समावेश फसल चक्र में करने से भी मृदा को संरक्षित कर सकते हैं।

सफल कृषि उत्पादन के लिए लवणीय, क्षारीय व अम्लीय मृदाओं का सुधार आवश्यक है। लवणीय, क्षारीय व अम्लीय मृदाओं में पौधे भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों व जल का अवशोषण नहीं कर पाते हैं। लवणीय भूमि सुधार के लिए भूमि समतलीकरण, मेड़बन्दी या सिंचाई जलभराव करके घुलनशील लवणों का निक्षालन करें। मृदा जांच के आधार पर क्षारीय भूमि में जिप्सम, सल्फर व केल्साइट का प्रयोग करें। हरी खाद वाली फसलों जैसे ढैंचा, सनई व लोबिया भी क्षारीय भूमि सुधारने में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। अम्लीय मृदाओं के सुधार हेतु मृदा पी. एच. के अनुसार चूने की मात्रा का प्रयोग करें।

9.3.7 कृषि बीमा प्रबन्धन

देश में सर्वप्रथम फसल बीमा योजना, परीक्षण के तौर पर 1973 से 1984 तक चलाई गई थी, अप्रैल 1985 से केन्द्रीय कृषि मन्त्रालय ने व्यापक फसल बीमा योजना प्रारम्भ की, इसके स्थान पर रबी वर्ष 1999-2000 से एक 'राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना: 1999-2000' लागू की गई, इस योजना मुख्य उद्देश्य सूखे, बाढ़, ओलावृष्टि, चक्रवात, आग, कीट/बीमारियाँ आदि जैसे प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल को हुई क्षति से किसानों का संरक्षण करना है, ताकि आगामी मौसम में उनकी ऋण साख बहाल हो सके, यह योजना 25 राज्यों तथा 2 कन्द्रशासित क्षेत्रों में लागू की गई है, सामूहिक रूप से पिछले दस मौसमों अर्थात् रबी के मौसम 1999-2000 से रबी 2007-08 तक इस योजना के तहत 11.55 करोड़ किसानों को शामिल किया जा चुका था, इस योजना के लिए वर्ष 2010-11 के बजट में 950 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया है, कृषि बीमा आयोग द्वारा इस योजना के विकल्प के रूप में मौसम आधारित बीमा योजना भी प्रारम्भ की गई है, जिसके लिए 2007-08 के बजट में अलग से 100 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया था। 2008-09 तक 1347 लाख किसानों का 1,48,250 करोड़ रूपए की राशि का बीमा कराते हुए 2,109 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को कवर किया गया है। भारतीय कृषि बीमा कम्पनी लिमिटेड ने दक्षिण-पश्चिमी मानसून अवधि 2004 के दौरान 'वर्षा बीमा' वर्षा बीमा योजना शुरु की वर्षा बीमा में कृषक समुदाय की भिन्न-भिन्न जरूरतों के अनुरूप पाँच अलग-अलग विकल्पों की व्यवस्था की गई, ये हैं-

1. जून से सितम्बर तक कुल वर्षा के आधार पर मौसमी वर्षा बीमा,
2. 15 जून और 15 अगस्त के बीच की अवधि में हुई वर्षा के आधार पर बुआई विफलता बीमा,
3. जून और सितम्बर के बीच वर्षा की मात्रा के अनुसार वर्षा वितरण बीमा,

4. फसलों के लिए जल की आवश्यकता के आधार पर तैयार किए गए कृषि सम्बन्धी सूचकांक के आधार पर,
5. एक आपात विकल्प, जिसमें 50 प्रतिशत तथा बेहद प्रतिकूल, सामान्यता और मौसम के दौरान अधिक वर्षा आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के 20 वर्षा मापी क्षेत्रों में वर्ष 2004-05 में वर्षा बीमा प्रायोगिक योजना के रूप में शुरु की गई थी।

खरीफ 2006 के दौरान, सम्पूर्ण देश के 16 राज्यों को शामिल करते हुए लगभग 150 जिलों/वर्षामापी केन्द्र क्षेत्रों में, यह योजना वर्षा बीमा 2006 के रूप में कार्यान्वित की जा रही है।

9.3.8 बागवानी व्यवस्था प्रबन्धन

हमारे देश में मिट्टी और जलवायु की विविधता के कारण फलों, सब्जियों, जड़ी-बूटियों, सुगन्धयुक्त पौधों, मसालों, नारियल, काजू, कोको आदि बागवानी फसलों की पैदावार की अच्छी सम्भावनाएँ हैं, इस दिशा में किए गए प्रयत्नों से जो सफलता मिली है, उससे हमारा देश नारियल, सुपारी, काजू, अदरक, हल्दी, काली मिर्च आदि के सबसे बड़े उत्पादक देश के रूप में उभरा है, भारत विश्व में काजू का सबसे बड़ा उत्पादक तथा निर्यातक देश है, बागवानी उत्पादों को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्र सरकार ने एक **राष्ट्रीय बागवानी मिशन 5 मई 2005** से प्रारम्भ किया है, वर्ष 2011-12 तक देश में बागवानी उत्पादन 300 मिलियन टन करने तथा बागवानी के तहत बुआई क्षेत्र को 40 लाख हेक्टेयर करने का लक्ष्य इस मिशन के तहत निर्धारित किया गया है, पोषक उपजों की उपलब्धि में वृद्धि कृषकों की आय में वृद्धि, कृषि उत्पादों में मूल्यवर्द्धन व सब्जियों की उपलब्धि में वृद्धि इसके अन्य उद्देश्यों में शामिल है, मिशन की सफलता के लिए गेहूँ व धान के अधीन चले आ रहे बुआई क्षेत्रों के कुछ भाग को बागवानी उपजों के अधीन लाने के प्रयास किए जाएंगे, इस मुद्दे पर विचार के लिए राज्यों के कृषि मंत्रियों की बैठक केन्द्रीय कृषि मंत्री द्वारा शीघ्र ही बुलाई जाएगी।

उल्लेखनीय है कि देश में कुल बागवानी उत्पादन 1991-92 में 28.63 मिलियन टन था जो बढ़कर 2007-08 में 207.01 मिलियन टन हो गया था, बागवानी उत्पादन में इस वृद्धि के चलते देश में फलों व सब्जियों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि में भी वृद्धि हुई है, इन उपजों से निर्यात प्राप्तियाँ 1991-92 में 141.1 करोड़ रूपए की थीं, जो बढ़कर 2002-03 में 6759.3 करोड़ रूपए की रही, देश में बागवानी फसलों के लिए अधीन क्षेत्रफल वर्ष 2007-08 के दौरान 200.87 लाख हेक्टेयर था, वर्ष 2010-11 के बजट में राष्ट्रीय बागवानी की मिशन के लिए 1062 करोड़ रूपए की राशि आवंटित की गई है।

9.3.9 कृषि वित्त प्रबन्धन - किसान क्रेडिट कार्ड

किसान क्रेडिट कार्ड योजना अगस्त 1998 में वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों से प्राप्त ऋण को सुसाध्य बनाने के लिए प्रारम्भ की गई थी इस योजना की मुख्य विशेषताएं नीचे दी गई हैं-

1. 5000 रूपए अथवा अधिक के उत्पादन ऋण के लिए पात्र किसान, किसान क्रेडिट कार्ड प्राप्त करने के हकदार हैं, यह कार्ड किसान को उनकी भूमि के आधार पर जारी किये जाते हैं।
2. पात्र किसानों को किसान कार्ड और पास बुक अथवा कार्ड-सहित-पास बुक उपलब्ध कराई जाती है।

3. इनका उपयोग किसान खेती के लिए बीज, उर्वरक और कीटनाशक आदि जरूरतों की वस्तुओं को खरीदने के लिए करते हैं।
4. प्रचलनात्मक जोत, फसल पैटर्न और वित्त श्रेणी के आधार पर सीमा निर्धारित की जाती है।
5. बैंको के विवेक पर उप-सीमाएं निर्धारित की जाती है।
6. वार्षिक समीक्षा की शर्त पर कार्ड 3 वर्ष के लिए वैध होता है।
7. प्रत्येक आहरण का भुगतान 12 महीने में करना होता है।
8. प्राकृतिक आपदाओं के कारण खराब हुई फसलों के मामले में ऋण को बदलना/पुननिर्धारण की भी अनुमति है।
9. लागत वृद्धि तथा फसल पैटर्न आदि में परिवर्तन होने पर ऋण की सीमा को बढ़ाया जा सकता है।
10. भारतीय रिजर्व बैंक के मानदंडों के अनुसार ब्याज की दर आदि में परिवर्तन किया जा सकता है।
11. जारी करने वाली शाखाओं अथवा बैंक के विवेक पर उसकी अन्य नामित शाखाओं के माध्यम से प्रचालन किया जाता है।
12. कार्ड और पास बुक साथ होने पर स्लिप/चैक के माध्यम से आहरण किया जाता है।

इस योजना का कार्यान्वयन वाणिज्यिक बैंकों, केन्द्रीय सहकारी बैंको और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से किया जा रहा है। वर्ष 1998 से लेकर नवम्बर 2009 तक 878.30 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके थे, इनमें 48.21 प्रतिशत सहकारी बैंको द्वारा, 13.16 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों द्वारा (RRB's) द्वारा तथा 38.63 प्रतिशत वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जारी किये गए।

9.3.10 कृषि सम्बन्धी जानकारी का प्रबन्धन

कृषि सम्बन्धी नवीन तकनीक तथा आवश्यक जानकारी किसानों तक पहुंचाने का प्रबन्ध करने के लिए सरकार ने किसान कॉल सेन्टर तथा रूरल नॉलेज सेन्टरों की स्थापना की है। **21 जनवरी 2004** को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने नई दिल्ली में **किसान कॉल सेन्टर** तथा **कृषि चैनल** का उद्घाटन किया। किसान कॉल सेन्टरों के वर्तमान में 144 किसान कॉल ऐजेन्ट्स लगाए जा चुके हैं। जिसमें 1551 नम्बर डायल करके कृषि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किसान चैनल के द्वारा केबिल के जरिये एक वर्ष तक दिन में चार बार एक-एक घण्टे का कार्यक्रम प्रसारित किये गए। दिसम्बर 2006 में तीन-तीन घण्टे के कार्यक्रम दिन में चार बार प्रसारित किये जाते हैं।

केन्द्र सरकार ने ग्रामीण विकास बैंक (RRB's) के जरिये देश के ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण ज्ञान केंद्र (Rural Knowledge Centers) की स्थापना की है। इन केन्द्रों में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी व दूरसंचार तकनीक का उपयोग किसानों को वांछित जानकारीयाँ उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है। 2005-06 के बजट में एक-एक लाख रूपए की लागत से एक हजार नॉलेज सेन्टर स्थापित करने की केन्द्र की योजना है। इसके लिए ग्रामीण आधारित संरचना विकास कोष से धन राशी सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। प्रारम्भ में यह सेन्टर आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तराखण्ड तथा पश्चिम बंगाल में स्थापित किये जा रहे हैं।

9.3.11 खाद्य प्रबन्धन एवं प्रसंस्करण

उत्पादित कृषि उत्पाद के उचित प्रबन्धन में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय की स्थापना जुलाई 1988 में की गई। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास में निजी, सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र करगर भूमिका अदा कर रहा है। खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के अधीन कई क्षेत्र आते हैं जैसे- खाद्य प्रसंस्करण, मांस प्रसंस्करण, पॉल्टी प्रसंस्करण, दुग्ध प्रसंस्करण, मछली प्रसंस्करण, फल-सब्जी प्रसंस्करण तथा उपभोक्ता खाद्य उद्योग आदि। खाद्य प्रसंस्करण में चावल मिलिंग, दाल मिलिंग तथा रोलर फ्लोर मिलिंग आदि सम्मिलित है। साथ ही इन खाद्यान्नों के श्रेणीकरण सहित निर्यातान्मुखी इकाईयों की भी स्थापना की गई है।

दिसम्बर 2004 तक मंत्रालय ने 27 चावल मिलों, 13 आटा मिलों, 21 तेल मिलों और 8 दाल मिलों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई है। मांस प्रसंस्करण की 8 इकाईयों, मत्स्य प्रसंस्करण की 18 इकाईयों, डेयरी प्रसंस्करण की 19 इकाईयों की स्थापना में सहायता दी है। इसके अतिरिक्त शीतल पेय के लगभग सभी राज्यों में 100 से अधिक संयन्त्र है और इसमें 25 हजार कर्मचारी कार्यरत हैं। पैक की हुई चाय और बिस्कुट के बाद पैक किये हुए शीतल पेय खाद्य पदार्थों का तीसरा सबसे बड़ा स्थान है। कुटीर उद्योग और शराब उद्योग के लिए निर्धारित मदों को छोड़कर सभी प्रसंस्कृत खाद्य मद उद्योग अधिनियम 1951 के तहत लाइसेंस मुक्त है।

9.3.12 ई खेती (कृषि)

भारत के ग्रामीण क्षेत्र में संचार सुविधा पहुंचाने के बाद ई-कृषि की दिशा में कदम बढ़ रहे हैं। सरकार की कोशिश है, कि संचार क्रान्ति और हरित क्रान्ति दोनों को एक साथ लेकर ई-कृषि की नई क्रान्ति की शुरुआत की जाये। ई-कृषि द्वारा किसानों को समुचित सुविधाएं वरीयता के आधार पर उपलब्ध कराई जाती है। पंजाब में बड़ी संख्या में किसान ई-कृषि से जुड़ चुके हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ओर से बनाई गई वेबसाइट के जरिए भी किसानों की कृषि से संबंधित सूचनाओं और जानकारियों को एक कोष के रूप में सहेजा जा रहा है।

पंजाब में ई-कृषि को साकार करने के लिए अमेरिका कृषि वैज्ञानिकों की मदद ली जा रही है। फील्ड फ्रेश फूड्स प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी ने एयरटेल के जरिए अमेरिका की कोलम्बिया यूनिवर्सिटी को लुधियाना से जोड़ रखा है। लुधियाना में ई-कृषि द्वारा वेबी-कार्न, सहित हरी मिर्च, केले व धनिये की खेती में सहायता ली जा रही है। जिससे किसानों को दुगुना लाभ प्राप्त हो रहा है।

अंगूर के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए अब इसकी बागवानी कम्प्यूटर के जरिए की जा रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केन्द्र के निदेशक डॉ पी.जी. अडसुले के अनुसार योजना के पहले चरण में केन्द्र कम्प्यूटर के जरिये लगभग 500 अंगूर उत्पादकों तक पहुंच सुनिश्चित करेगा। कुछ कृषि विश्वविद्यालयों ने अपनी वेबसाइट और कॉलसेन्ट्रो की भी स्थापना की है। इन सेन्ट्रों पर ऐसी व्यवस्था की गई है कि किसान किसी भी समय खेती के सम्बन्ध में विशेषज्ञों टेलीफोन या नेट द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

9.3.13 अनुबन्ध खेती

पिछले कुछ वर्षों से अनुबन्ध खेती में किसानों की रुची बढ़ी है, अनुबन्ध खेती मूल रूप से तो उत्पादक किसानों तथा क्रयकर्ता कम्पनियों, ग्राहकों के बीच अग्रिम अनुबन्ध के तहत एक निर्धारित मूल्य पर कृषि,

बागवानी आदि उत्पादों के उत्पादन, आपूर्ति, क्रय-विक्रय की एक व्यवसायिक व्यवस्था है। इसमें उत्पादक किसान एक निश्चित मात्रा में कृषि उत्पाद को निश्चित समय पर कम्पनियों, अनुबन्ध करने वाली फार्मों एवं ग्राहकों को उपलब्ध करते हैं तथा खरीददार पूर्व निर्धारित मूल्य देकर उत्पाद करते हैं।

देश में अनुबन्ध खेती का मौजूदा दौर का लगभग वर्ष 1989 में पंजाब के होशियारपुर में पेप्सी फूड लिमिटेड द्वारा टमाटर संसाधन संयंत्र की स्थापना के साथ शुरू हुआ। इसके अन्तर्गत राज्य में लगभग 2500 हेक्टेयर में फैली, टमाटर की खेती में 5 लाख टन उत्पादन के साथ स्थिरता आई। आईसीआईसीआई बैंक तथा हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड के साथ मिलकर मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले में गेहूँ उत्पादन के लिए अनुबंधित खेती की पहली परियोजना शुरू की। इसकी सफलता से सबक लेकर रैलीस इण्डिया ने फूड वर्ल्ड तथा अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर बंगलूरु में फल उत्पादन, पानीपथ में बासमती उत्पादन तथा नासिक में सब्जी उत्पादन की अनुबंधित खेती की ओर कदम बढ़ाया। पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा आदि राज्यों में अनुबंधित खेती की जा रही है। लगभग 14 लाख हेक्टेयर में सोयाबीन, संतरा, सब्जियां, फल, मसाले, दलहन, आलू, गन्ना आदि के अनुबन्ध हुए हैं। राजस्थान, गुजरात तथा पश्चिमी बंगाल में भी बड़े क्षेत्र में अनुबंधित खेती की जा रही है।

9.4 कृषि प्रबन्धन की समस्याएँ

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की केन्द्र व भारतीय जीवन की धुरी है। आर्थिक जीवन का आधार, रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा अर्जन का माध्यम होने के कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाये तो कोई अतिशयेक्ति नहीं होगी। देश की कुल श्रमशक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्रों से ही अपना जीविकोपार्जन कर रही है। अतः भारत में कृषि के विकास, समृद्धि व उत्पादकता पर ही देश का विकास व सम्पन्नता निर्भर है। इसलिए कृषि प्रबन्धन समय की आवश्यकता है। जिससे कृषि आगतों का उचित समन्वय व प्रयोग कर अधिकतम उत्पादन किया जाता सके, लेकिन कृषि प्रबन्धन की तकनीक को अपनाने में अनेक समस्याएँ हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **तकनीकी कृषि शिक्षा का अभाव-** भारत जैसे देश में जहाँ 1.25 अरब के लगभग आबादी का 70 प्रतिशत भाग कृषि पर आधारित है। उस देश में कृषि शिक्षा के विश्वविद्यालय और महाविद्यालय नाममात्र के हैं उसमें भी गुणात्मक शिक्षा का अभाव है। जो कि कृषि प्रबन्धन में एक बड़ी बाधा है क्योंकि उदारीकरण के युग में कृषि आधुनिक तकनीक तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से की जा रही है। ऐसे में भारत जैसे देश में किसानों की स्थिति जो कृषि सम्बन्धि तकनीकी ज्ञान से वंचित है की स्थिति अन्यन्त गम्भीर एवं विचारणीय है। शिक्षा का ही दूसरा पहलू जिसे प्रबन्धन शिक्षा की श्रेणी में रखा जा सकता है। राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक स्तर पर जो विश्वविद्यालय व अनुसंधान केन्द्र है। उसमें उच्चस्तरीय शोध व गुणवत्तापरक शिक्षकों का अभाव है। आज भी किसान ईश्वरीय कृपा पर ही निर्भर है। कृषि शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में होना चाहिए और प्रत्येक शिक्षण संस्थान में न्यूनतम माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए।

2. **भू-प्रबन्धन सम्बन्धी समस्याएं** - देश की किसी भी क्षेत्र में भूमि तथा फसल प्रबन्धन का अभाव पाया जाता है क्योंकि इस प्रकार की नीतियों और प्रबन्धन का संचालन वे लोग करते हैं जिन्हें इस क्षेत्र में कोई जानकारी नहीं है। भारत का भू-प्रबन्धन काफी हद तक प्रशासनिक नियन्त्रण में है। पटवारी, ग्राम अधिकारी, मण्डल अधिकारी, राजस्व इंस्पेक्टर आदि जैसे बुनियादी राजस्व अधिकारी शहर व अर्द्धशहरी इलाकों में निवास करते हैं। जिस कारण बिना स्थल निरीक्षण के ही भूमि विवादों का निपटारा कर दिया जाता है। इसके बावजूद हजारों भूमि विवाद राजस्व अदालतों में लम्बित हैं जो कृषि के उचित प्रबन्धन में बड़ी बाधा है। इसलिए कृषि अभिलेखों का उचित प्रबन्धन कृषि विकास की आधारभूत आवश्यकता है।
3. **भूमि अधिग्रहण नीति**- केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा गठित विभिन्न विकास प्रधिकरणों द्वारा भूमि अधिग्रहण की नीति में कृषि भूमि के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। औद्योगिक विकास आधाभूत संरचना के विकास तथा आवासीय परियोजनाओं हेतु ऐसी भूमि का अधिकरण किया जाना चाहिए जो कि कृषि योग्य नहीं है। ऊसर बंजर तथा क्षरित भूमि का ही अधिग्रहण होना चाहिए। कृषि भूमि का अधिग्रहण व निर्माण कार्य प्रतिबन्धित होना चाहिए। आवासीय औद्योगिक एवं ढांचागत निर्माणों के लिए कृषि भूमि के अंधाधुंध अधिग्रहण पर रोक होनी चाहिए। जिससे कृषि क्षेत्रों का संकुचन न हो और कृषि उत्पादन में स्थिरता के साथ वृद्धि हो।
4. **कृषि उत्पाद के प्रबन्धन की समस्या**- कृषि उत्पाद जब बाजार में आता है तो उसकी पूर्ति की अधिकता से मूल्य में निरन्तर गिरावट होती है और मध्यस्थ भी इस स्थिति का फायदा उठाते हैं क्योंकि समय पर विपणन व्यवस्था न होने के कारण कृषि उत्पाद के नष्ट होने का भय होता है। भण्डारण व्यवस्था के अभाव में किसान अपने उत्पाद को शीघ्र बेचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। साथ ही किसान की वस्तुओं अर्थात् उत्पाद का मूल्य भी सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है। आज भी किसानों के पास इस प्रकार का कोई तन्त्र नहीं है, जो यह तय कर सके कि उसके उत्पाद का उचित मूल्य आज किस बाजार में क्या है और भविष्य में मूल्य घटने-बढ़ने की क्या सम्भावनाएँ हैं।
5. **साख प्रबन्धन में कठिनाई**- कृषि प्रबन्धन की पूर्व प्रक्रिया उचित साख व्यवस्था पर निर्भर करती है और आधुनिक कृषि तकनीक के लिए बड़ी मात्रा में कृषि साख की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक कृषि तकनीक में साख की आवश्यकता के अतिरिक्त अधिक जोखिम भी है क्योंकि यदि किसान का उत्पादन बाढ़, सूखे आदि के कारण ठीक ढंग से नहीं हुआ तो किसान की स्थिति अन्यन्त दयनीय हो जाती है। यद्यपि इसके लिए सरकार ने अनेक साख संस्थाओं की स्थापना की है और किसानों के जोखिम को कम करने के लिए कृषि बीमा योजना शुरु की है। लेकिन इसका दायरा कुछ फसलों तथा किसानों तक ही सीमित है जिस कारण इन योजना का विस्तार सभी फसलों तथा किसानों तक होना आवश्यक है जिससे किसान कृषि प्रबन्धन की आधुनिक तकनीक को अपना सकें।
6. **अनुबन्ध खेती की समस्याएं**- अनुबन्धित खेती में कई बार पूर्व निर्धारित मूल्य में देरी से भुगतान, कमजोर विस्तार सेवाएं तथा निवेश में धन की कमी की समस्याएं भी आ रही है। किसानों की कमजोर क्रयशक्ति की वजह से इस कारोबार में उनके मूल उत्पादक होने के बावजूद उनकी स्थिति दूसरे दर्जे की

होती जा रही है। बाजार के उतार-चढ़ाव के चलते अनुबन्धित राशि से बेहतर या कभी कम मूल्य मिलने के कारण भी कभी किसान तो कभी खरीददार बिना सूचना दिए अनुबन्ध का उल्लंघन कर देते हैं। इसलिए मूल्य निर्धारण में किसान संघों, सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी होनी चाहिए। किसान की कम्पनी के विपणन तन्त्र में हिस्सेदारी होनी चाहिए जिससे वह अपने हितों की रक्षा कर सकें।

7. लागत की अधिकता- आधुनिक कृषि प्रबन्धन में कृषि आगतों-उच्च उत्पादक बीज, उत्पादक बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, नवीन सिंचाई व्यवस्था, कृषि यन्त्रों आदि का बढ़ा महत्व है। लेकिन भारत में आज भी उच्च उत्पादकता वाले बीज के वितरण व उपलब्धता में अनिश्चितता के साथ लागत में भिन्नता है और कई बार तो उच्च उत्पादकता वाले बीजों के नाम पर किसानों को नकली बीज दे दिये जाते हैं। भारत में नाइट्रोजन को छोड़कर अधिकांश उर्वरकों का आयात किया जाता है। आज-कल नकली उर्वरकों की नई समस्या भी देखने को मिल रही है। कीटनाशकों के साथ भी यही स्थिति है। कृषि यन्त्रों के अधिक लागत, तकनीकी ज्ञान व प्रशिक्षण की कमी तथा अनियमित पूर्ति के कारण कृषि प्रबन्धन की व्यवस्था में अनेक बाधाएँ आती हैं।

8. कृषि आधारित उद्योगों के उचित विकास का अभाव- यद्यपि भारत में कृषि पदार्थ प्रसंस्करण की व्यवस्था में अनेक बदलाव आये हैं। लेकिन अभी-भी फल तथा सब्जियों के प्रसंस्करण की अपार सम्भावनाएँ हैं, जिससे इन पदार्थों के मूल्यों में स्थिरता के साथ पूर्ति भी सुनिश्चित की जा सके। खाद्य प्रसंस्करण की इकाईयाँ अधिकांश बड़ी कम्पनियों द्वारा चलाई जाती हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों से दूर होती हैं। जिस कारण किसानों से इनका सीधा सम्पर्क नहीं होता, इस कारण किसान इन सुविधाओं का समुचित लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीन कृषि व्यवस्था में कृषि प्रबन्धन की महत्वपूर्ण भूमिका है जिससे न्यूनतम लागत में अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति हो सके। कृषि प्रबन्धन में जहाँ भू-प्रबन्धन के साथ कृषि आगतों का उचित प्रबन्धन आवश्यक है। वहीं दूसरी ओर उत्पादित कृषि पदार्थों के उचित भण्डारण, प्रसंस्करण तथा विपणन का प्रबन्धन भी आवश्यक है जो कृषि विकास के साथ ही देश के विकास में सहायक हो।

9.5 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. केन्द्र सरकार ने ग्रामीण विकास बैंक नाबार्ड के जरिये ग्रामीण क्षेत्रों मेंकेन्द्र की स्थापना की गई।
2. भारत सरकार ने राजस्व प्रशासन..... में भू- अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत और नक्शों का अंकीकरण करना शुरु किया।
3. मिट्टी की ऊपरी परत, जो करीब.....सेन्टीमीटर गहरी है, तेजी से नष्ट हो रही है और यही मिट्टी जीवनदायिनी है।
4. आंकड़ों पर ध्यान दें तो भारत में मनुष्य भूमि अनुपात..... हेक्टेयर प्रति व्यक्ति है।
5. वर्ष 2025 में घटकर मनुष्य भूमि अनुपात..... हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया जा रहा है।

6. भारत में कुल भूमि क्षेत्रफल मिलियन हेक्टेयर है। इसमें अभी तक कृषि कार्य में करीब.....मिलियन हेक्टेयर भूमि ली जा रही है।
7. देश की करीब मिलियन हेक्टेयर भूमि जल तथा वायु अपरदन से प्रभावित है।
8. 1966 के प्रयोग के बाद उच्च उत्पादकता वाले बीजों के प्रयोग को बढ़ावा मिला। जिससे गेहूँ का उत्पादन लगभगगुना हो गया।
9. भारत में सिंचाई कुप्रबंधन के कारण करीब..... मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता से प्रभावित है।
10. भारत में करीब फीसदी कृषि भूमि वर्षा पर आधारित है।
11. पौधे को तैयार होने में करीब..... फीसदी जल की आवश्यकता होती है।
12. नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम- NPK का उपयोग एक संतुलित अनुपात में ही किया जाना चाहिए। भारत के लिए अन्न फसलों हेतु मानक अनुपात माना जाता है।
13. उर्वरक उपभोग में भारत का विश्व में स्थान है।
14. पोटाशी उर्वरकों के लिए भारत पूरी तरह से..... पर ही निर्भर है।
15. देश में सर्वप्रथम फसल बीमा योजना, परीक्षण के तौर पर सेतक चलाई गई थी।
16.से केन्द्रीय कृषि मन्त्रालय ने व्यापक फसल बीमा योजना प्रारम्भ की।
17. बागवानी उत्पादों को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्र सरकार ने एक राष्ट्रीय बागवानी मिशनसे प्रारम्भ किया है।
18. किसान क्रेडिट कार्ड योजना में प्रारम्भ की गई थी।
19. को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने नई दिल्ली में किसान कॉल सेन्टर तथा कृषि चैनल का उद्घाटन किया।
20. किसान कॉल सेन्टरों मेंनम्बर डायल करके कृषि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
21. भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय की स्थापना में की गई।
22. देश में अनुबन्ध खेती का मौजूदा दौर का लगभग वर्ष 1989 में पंजाब के होशियारपुर में द्वारा टमाटर संसाधन संयंत्र की स्थापना के साथ शुरु हुआ।

9.6 सारांश

आज के व्यवसायिक कृषि के युग में कृषि प्रबन्धन का महत्व बढ़ गया है। जिससे कृषि स्वरूप बदल गया है अब कृषि में भू-प्रबन्धन, क्षरित भूमि प्रबन्धन, उच्च गुणवत्ता वाले बीज, जल प्रबन्धन, उर्वरक प्रबन्धन, मृदा संरक्षण, कृषि बीमा प्रबन्धन, बागवानी प्रबन्धन, कृषि वित्त हेतु- किसान क्रेडिट कार्ड, खाद्य प्रसंस्करण, ई खेती तथा अनुबन्धित खेती जैसी व्यवस्था के कारण कृषि प्रबन्धन के नये युग का आरम्भ हुआ है। जिसने कृषि के परम्परागत स्वरूप को बदल कर, एक व्यवसाय का रूप दे दिया है, लेकिन कृषि प्रबन्धन को अपनाने में कुछ समस्याएं हैं जो भारत में कृषि प्रबन्धन की प्रवृत्ति में अनेक बाधाएँ आती हैं जैसे- तकनीकी कृषि शिक्षा का अभाव, भू-प्रबन्धन की समस्या, भूमि अधिग्रहण, कृषि आगतों की कमी, साख प्रबन्धन में कठिनाई, अनुबन्धित

खेती की समस्याएं, कृषि आधारित उद्योगों का अभाव तथा लागत की अधिकता। इन समस्याओं के कारण कृषि का समुचित विकास करना है, तो इन बाधाओं को दूर करना होगा। तभी कृषि प्रबन्धन की व्यवस्था सफल होगी।

9.7 शब्दावली

- **कृषि साख-** वह ऋण (साख) जो कृषि कार्य हेतु लिया जाता है।
- **उर्वरक-** रासायनिक खाद जैसे-यूरिया, पोटाश, फास्फेट आदि।
- **कृषि का व्यवसायिकरण-** लाभ प्राप्ति के उद्देश्यों से कृषि करना।
- **काश्तकार-** जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- **अनुदान/रियायत -** सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **नाबार्ड-** राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD)
- **विकेन्द्रीकरण-** उद्योगों व कृषि क्रियाओं का बिखराव या फैलाव
- **उद्यमिता-** जोखिम उठाने की क्षमता
- **खाद्य प्रसंस्करण -** ऐसी व्यवस्था जिससे खाद्य पदार्थ लम्बे समय तक प्रयोग किये जा सकें।
- **आधारभूत संरचना -** विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

- | | | |
|--|---------------------------------------|------------------------|
| 1. ग्रामीण ज्ञान केन्द्र (Rural Knowledge Centers) | 2. 1988-89 | |
| 3. 20 सेन्टीमीटर | 4. 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति | |
| 5. 0.23 हेक्टेयर | | |
| 6. 329 मिलियन हेक्टेयर, 144 मिलियन हेक्टेयर भूमि | | |
| 7. 140 मिलियन हेक्टेयर भूमि | | |
| 8. 4 गुना | 9. 6-7 मिलियन हेक्टेयर | 10. 60 फीसदी |
| 11. 90 फीसदी | 12. 4 प्रतिशत, 2 प्रतिशत और 1 प्रतिशत | 13. तीसरा |
| 14. आयात | 15. 1973 से 1984 | 16. अप्रैल 1985 |
| 17. 5 मई 2005 | 18. अगस्त 1998 | 19. 21 जनवरी 2004 |
| 20. 1551 नम्बर | 21. जुलाई 1988 | 22. पेप्सी फूड लिमिटेड |

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- देवपुरा प्रतापमल, *सामुहिक भूमि का प्रबन्ध* (दिसम्बर 2011) कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

- मोदी अनीता, *भारत में कृषि: चुनौतियाँ एवं समस्याएँ* (जनवरी 2011) योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- शर्मा कुलदीप एवं सुधीर प्रधान, *जैविक खेती: समस्याएँ और सम्भावनाएँ* (जनवरी 2011) योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- सिंह कुमार, सुनील कृषि क्षेत्र में नई क्रान्ति -ई खेती (अक्टूबर 2011) कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुमार सुरेन्द्र, *भारत में भू-अभिलेखों का आधुनिकीकरण* (अक्टूबर 2011), योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।
- मलिक जगपाल सिंह, *मृदा उर्वरकता प्रबन्धन* (नवम्बर 2011) कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- समसामायिक वार्षिकी 2011, टवसण् 1ण् प्रतियोगिता दर्पण; आगरा।
- यादव सावित्री, *किसान क्रेडिट कार्ड से खत्म हुई किसानों की ऋणग्रस्तता* (जून 2011) कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- सोनी आर. एन., *कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय* (2007); विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर।
- प्रतियोगिता दर्पण; 2010, आगरा।

9.10 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949), *Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), *Agriculture and Economic Development*, Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh (2009), *Fundamentals Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Desai, R. G. (2009), *Agricultural Economics*, Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M. L. et al. (1991): *Indian Agricultural Development since Independence*, Oxford & IBH, New Delhi.

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि प्रबन्धन की वर्तमान प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
2. कृषि प्रबन्धन की समस्याओं का वर्णन करो।
3. कृषि प्रबन्धन ने कृषि का स्वरूप बदल दिया है, आलोचनात्मक व्याख्या करो।

इकाई 10- कृषि वस्तुओं का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade of Agricultural Commodities)

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 विदेशी व्यापार नीति एवं कृषि वस्तु का विदेशी व्यापार
- 10.4 कृषि वस्तुओं का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
 - 10.4.1 कृषि वस्तुओं के निर्यात का प्रतिरूप
 - 10.4.2 कृषि वस्तुओं के निर्यात की दिशा
 - 10.4.3 कृषि वस्तुओं के आयात का प्रतिरूप
 - 10.4.4 कृषि वस्तुओं के आयात की दिशा
- 10.5 कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बर्द्धन हेतु सरकारी प्रयास
- 10.6 कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी समस्या
- 10.7 अभ्यास प्रश्न
- 10.8 सारांश
- 10.9 शब्दावली
- 10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित की गयी है। जिसके अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के आयात-निर्यात के प्रतिरूप तथा उसकी दिशाओं के साथ-साथ कृषि के विकास को भी समाहित किया गया है। विदेशी व्यापार का कृषि के विभिन्न पक्षों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों को स्पष्ट किया गया है जिन्हें विदेशी व्यापार की कठिनाईयों के अन्तर्गत भी स्पष्ट किया गया है।

कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सम्बन्ध विदेशों में कृषि वस्तुओं की माँग से पाया जाता है वहीं इनका उन पर सम्बन्ध भारतीय कृषि के उत्पादन एवं उनकी कीमत नीति से लगाया जाता है। सरकारी विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीतियाँ भी कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित एवं निर्धारित करती है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भली-भांति समझ सकेंगे कि -

- ✓ कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या स्थिति है? जिसके अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के आयात एवं निर्यात की संरचना एवं दिशाओं के बारे में आप भली-भांति विभिन्न तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा कृषि के विकास के मध्य अन्तर्सम्बन्धों के बारे में आप विभिन्न पक्षों से भली-भांति परिचित हो सकेंगे।
- ✓ प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न कठिनाईयों एवं समस्याओं के बारे में भली-भांति समझ सकेंगे।

10.3 विदेशी व्यापार नीति एवं कृषि वस्तुओं का विदेशी व्यापार

भारत में कृषि वस्तुओं के आयात एवं निर्यात के सम्बन्ध में आर्थिक तथा राजनैतिक स्तर पर अनेक प्रकार के मतभेद पाये जाते रहे हैं। एक ओर देश में सरकार खाद्य सुरक्षा की गारण्टी प्रदान करती है वहीं खाद्य वस्तुओं की कीमतों को नियंत्रित करने के प्रयास किये जाते रहे हैं। देश में खाद्यान्न तथा अन्य कृषि वस्तुओं के उत्पादन के बाद भी देश में भुखमरी, कुपोषण जैसी समस्याएँ पायी जाती हैं। सरकार को अर्थव्यवस्था की आन्तरिक तथा बाहरी प्रकृति को देखते हुए कृषि वस्तुओं के आयात-निर्यात के लिए विदेशी व्यापार नीति में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

आपको यह ज्ञात होगा कि देश की आजादी के समय तथा वर्तमान समय में कृषि वस्तुओं के व्यापार में महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा हुए। विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में जो नीतियाँ तय की गयीं उनको निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

विदेशी व्यापार नीति

भारत में कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार के सुधार करने के लिए अनेक नीतिगत उपाय किये गए। ये नीतिगत उपाय भारत की विभिन्न विदेशी व्यापार नीतियों के अन्तर्गत शामिल किए गए हैं। आप आगे भारत सरकार द्वारा निर्धारित विदेश व्यापार नीतियों के अन्तर्गत कृषि के विदेशी व्यापार सुधार सम्बन्धी उपायों को समझ

सकेंगे। विदेशी व्यापार नीति 2004-09 के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रयास किये गए। इसके लिए कृषि क्षेत्र के लिए निम्नलिखित सुविधाएं देने की व्यवस्था की गयी।

1. फल, फूलों, सब्जियों एवं लघु वनोत्पादों तथा इनके मूल्यवर्द्धित उत्पादों के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष कृषि योजना नाम से एक नये पैकेज की घोषणा की गयी जिसके तहत इन उत्पादों का निर्यात 5 प्रतिशत ड्यूटी फ्री क्रेडिट इन्टाइटलमेंट के लिए हकदार होगा।
2. कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाने के लिए तथा पौधों की किस्म में सुधार लाने के लिए बीजों के आयात तथा निर्यात नई पौध के आयात को आसान बनाया गया है।
3. दवाई निर्माण में प्रयोग होने वाले पौधों तथा हर्बल-उत्पादों के निर्यातों को विशेष बढ़ावा देने का प्रयत्न किया गया है।
4. कृषि क्षेत्र के लिए पूंजीगत वस्तुओं का आयात शुल्क से मुक्त कर दिया गया है।
5. पिछली विदेशी व्यापार नीति में स्थापित कृषि-निर्यात क्षेत्रों को मजबूत बनाया गया है। इन कृषि निर्यात क्षेत्रों से कृषि उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए इन क्षेत्रों को बहुत सी रियायतें दी गयीं। इन क्षेत्रों के अद्योसंरचना विकास पर भी ध्यान दिया गया।

विदेशी व्यापार नीति '2009-14'

विदेश व्यापार नीति 2009-14 के अन्तर्गत भी कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत उपाय किए गए हैं -

1. कृषि वस्तुओं के निर्यात को आसान बनाने के लिए एक ही स्थान पर से सभी औपचारिकताएं पूरी करने की नीति अपनाये जाने की व्यवस्था की गयी। इसे सिंगल विण्डो स्कीम (Single Window Scheme) कहा जाता है। इस व्यवस्था से निर्यात को समयानुसार सम्भव बनाया जा सकता है।
2. चाय निर्यातों को विशेष कृषि और ग्राम उद्योग योजना के अधीन उपलब्ध लाभ प्रदान करने की व्यवस्था की गयी।
3. कृषि निर्यात को रोजगारपरक बनाने पर जोर दिया गया है।
4. कृषिगत उपजों के निर्यात सम्बर्द्धन हेतु (विशेष कृषि उपज योजना) को प्रारम्भ किया गया।
5. बीजों के आयातों की शर्तों को अत्यन्त उदार बनाया गया।

पूरक विदेशी व्यापार नीति-'2011-12'

भारत की पूरक विदेशी व्यापार नीति-2011-12 के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

10.4 कृषि वस्तुओं का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार में कृषि वस्तुओं का ध्यान लम्बे समय से ही निर्धारित किया गया है। भारत कृषि वस्तुओं का आयात एवं निर्यात दोनों ही अलग-अलग स्तर पर समयानुकूल करता रहा है। कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए भारत अन्तर्राष्ट्रीय अनाज परिषद का सदस्य बन गया है। गेहूँ और अन्य मोटे अनाजों के मामलों में सहयोग करने के लिए आयात एवं निर्यात करने के उद्देश्य से यह परिषद कार्यशील है।

1995 को इस परिषद को अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ परिषद कहा जाता था। भारत को 2003 में निर्यातक सदस्य के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय अनाज परिषद का सदस्य बनाया गया।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि 1951 से प्रारम्भ किए गए भारतीय नियोजन कार्यक्रम की सफलता के चलते अस्सी दशक में भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। वर्तमान में भारत न केवल कृषि वस्तुओं का निर्यात करता है बल्कि खाद्यान्न का 2 करोड़ टन का बफर स्टॉक भी रखता है। सन् साठ के दशक की विदेशी व्यापार की स्थिति पर एक नजर डाली जाए तो भारतीय अर्थव्यवस्था को 'शिप-टू-माउथ' खाद्य अर्थव्यवस्था कहा जाता था। विदेशों से आयात होने वाला गेहूँ जहाज से सीधे भूखे लोगों के पेट तक जाता था। वर्ष 1963 से 1968 के दौरान जिस हरित क्रान्ति को भारत ने अपनाया उसने भारतीय खेती तथा अर्थव्यवस्था दोनों की दिशा एवं दशा बदल दी है। कृषि वैज्ञानिक नौरमन ई.बोरलॉग, तत्कालीन कृषि मन्त्री, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने नये बीजों की किस्मों का उत्पादन करके अधिक उत्पादन द्वारा कृषि के वस्तुओं के विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया।

10.4.1 कृषि वस्तुओं के निर्यात का प्रतिरूप

आप इस उपखण्ड के अन्तर्गत यह समझ सकेंगे कि भारत कौन-कौन सी कृषि वस्तुओं का निर्यात करता है तथा इन वस्तुओं के निर्यात की मात्रात्मक स्तर पर क्या विशेषताएँ रही हैं। भारत द्वारा कृषि वस्तुओं के अन्तर्गत काजू की गिरी, काफी, खली, कपास, चावल, मसाले, चीनी, चाय तथा मेट तथा तम्बाकू का निर्यात विदेशों को किया गया है।

वर्ष 2005-06 में कृषि वस्तुओं का निर्यात रू. 46703 करोड़ रहा जिसमें 2594 करोड़ रूपए की काजू की गिरी, 1731 करोड़ रूपए की काफी, 4875 करोड़ रूपए की खली, 2904 करोड़ रूपए की कपास, 2116 करोड़ रूपए के मसाले, 598 करोड़ रूपए की चीनी, 1589 करोड़ रूपए की चाय मेट तथा 1032 करोड़ रूपए की तम्बाकू का निर्यात का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि वर्ष 2005-06 के दौरान 19.6 प्रतिशत की वृद्धि कृषि तथा सम्बद्ध उत्पादों के निर्यातों में दर्ज की गयी।

पिछले दो दशकों के कृषि वस्तुओं के निर्यात का अध्ययन करने के लिए नीचे तालिका (10.1) दर्शायी गयी है जो निर्यात के प्रतिरूप को स्पष्ट करती है।

तालिका 10.1
भारत से कृषि उत्पाद का निर्यात

निर्यात की राशि (करोड़ रूपए में)

क्र.सं.	मद	1990-91	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
1.	चाय और मेट	1070 (3.4 %)	2034 (0.3 %)	2689 (0.3 %)	2944 (0.3 %)	3247 (0.3 %)
2.	काजूगिरी	447 (1.4 %)	5535 (0.3 %)	2931 (0.3 %)	2829 (0.3 %)	2627 (0.2 %)
3.	चावल	462 (1.4 %)	11755 (1.8 %)	11164 (1.3 %)	11255 (1.3 %)	10801 (0.9 %)

नोट:- कोष्ठक में दिये गये आंकड़े कुल निर्यात का प्रतिशत है।

ऊपर दी गयी तालिका को देखने से आप भली-भांति समझ सकेंगे कि विभिन्न वर्षों में कृषि वस्तुओं के निर्यात में क्या परिवर्तन हुए हैं। चाय तथा मेट का निर्यात वर्ष 1990-91 में 1070 करोड़ रूपए का रहा जो वर्ष 2010-11 में 3247 करोड़ रूपए का हो गया। वर्ष 1990-91 में इसका भाग 3.4 प्रतिशत था जो वर्ष 2010-11 में केवल 0.3 प्रतिशत ही रह गया इसी प्रकार काजूगिरी तथा चावल के निर्यात में भी गिरावट दर्ज की गयी। वर्ष 1990-91 में काजू गिरी का निर्यात 1.4 प्रतिशत रह गया। वर्ष 1990-91 में चावल का निर्यात 1.4 प्रतिशत था जो 2010-11 में जाकर 0.9 प्रतिशत ही रह गया।

10.4.2 कृषि वस्तुओं के निर्यात की दिशा

भारत के कृषि वस्तुओं के विदेशों में बड़े स्तर पर माँग की गयी है। कृषि वस्तुओं का निर्यात श्रीलंका, चीन, पूर्वी अफ्रीकी देश को किया गया है ये देश भारत की चाय के प्रमुख ग्राहक हैं। जूट का निर्यात बांग्लादेश को किया जाता है। इसके साथ खाद्यान्न तथा अन्य कृषि वस्तुओं का निर्यात अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूसी संघ, यूरोपीय संघ तथा जापान सहित अन्य विकसित देशों को किया जाता है।

10.4.3 कृषि वस्तुओं के आयात का प्रतिरूप

आपको यह पता होगा कि भारतीय कृषि उत्पादन पर अनेक प्रकार के प्राकृतिक तथा गैर प्राकृतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। जिससे कृषि उत्पादन अनेक दिशाओं में परिवर्तित होता रहता है। कृषि में होने वाले परिवर्तन भारत के विदेशी व्यापार को भी प्रभावित करते हैं। कृषि वस्तुओं के उत्पादन में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन भारत के कृषि वस्तुओं के आयातों को मात्रात्मक एवं दिशात्मक रूप में प्रभावित करते हैं। इसके लिए सरकार द्वारा अनेक प्रकार के प्रयास राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर किए गए हैं। कृषि सुधारों के परिणामस्वरूप भारत कृषि पदार्थों की पूर्ति के मामलों में आत्मनिर्भर हो गया है। अतः गत वर्षों में भारत के कृषि वस्तुओं के आयात में गिरावट दर्ज की गयी।

वर्ष 2009-10 में खाद्यान्न एवं उपभोक्ता वस्तुओं का आयात 497 करोड़ रूपए का था जो कुल आयात का 3.7 प्रतिशत रहा। इसी वर्ष खाद्य तेल का आयात रूपए 26483 करोड़ का किया गया जो कुल आयात का 1.9 प्रतिशत आंकलित किया गया। पिछले कुछ वर्षों में भारत में तिलहन का उत्पादन उनकी माँग के अनुरूप न होने के कारण भारत को खाद्य तेलों का आयात करना पड़ता है।

वर्ष 2010-11 में खाद्यान्न एवं उपभोक्ता वस्तुओं का आयात 545 करोड़ रूपए जो कुल आयात का 2.9 प्रतिशत था। गत वर्षों में खाद्य एवं सम्बन्धित वस्तुओं के आयात में कमी दर्ज की गयी इसमें अनाज, दालें, दुग्ध उत्पाद, फल तथा सब्जियाँ शामिल हैं।

भारत द्वारा आयात की जाने वाली अन्य कृषि वस्तुओं में कपास, ऊन, जूट के रेशे आदि शामिल हैं। भारत को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन को कच्चे माल के लिए भी आयतित करना पड़ता है। 1960-61 में कपास, ऊन एवं जूट के रेशे का आयात 91 करोड़ रूपए का था जो 2009-10 में बढ़कर 9959 करोड़ रूपए का हो गया।

10.4.4 कृषि वस्तुओं के आयात की दिशा

आपको मालूम होगा कि भारत कृषि वस्तुओं के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है इसीलिए इसके आयातों की दिशा भी सीमित हो गयी है। भारत का आवश्यकतानुसार कृषि वस्तुओं का आयात अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया से ही किया गया है जिसका भाग अत्यन्त नगण्य ही है। वियतनाम, थाइलैण्ड, श्रीलंका देशों में भी कृषि वस्तुओं का आयात किया जाता है।

10.5 कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बर्द्धन हेतु सरकारी प्रयास

अब आप कृषि वस्तुओं के आयात-निर्यात की दिशा एवं संरचना का अध्ययन करने के बाद महसूस करते होंगे कि भारत में कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद भी कृषि वस्तुओं का योगदान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उल्लेखनीय स्तर पर नहीं पहुँच पा रहा है। भारत सरकार तथा राज सरकारों के द्वारा पिछले काफी समय से कृषि वस्तुओं के व्यापार का बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रयास किए गए जिनको निम्न रूप में दर्शाया जा सकता है। आपने देखा होगा कि देश की स्वतन्त्रता के बाद से ही कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं लेकिन सरकार द्वारा वर्तमान में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन इस आशय से किए गए कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अनुरूप भारतीय कृषि में वांछनीय सफलता प्राप्त हो सके।

कृषि वस्तुओं के श्रेणी विभाजन एवं प्रमापीकरण के कारण भारतीय कृषि वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय माँग पर अनुकूल प्रभाव डालने का सरकार द्वारा प्रयास किया गया। प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण से उपज की किस्म में सुधार हुआ तथा कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का विस्तार हुआ। आपको यहां ध्यान देना होगा कि कृषि वस्तुओं के श्रेणी विभाजन एवं प्रमापीकरण की प्रक्रिया सरकार द्वारा काफी पहले ही प्रारम्भ की गयी थी लेकिन वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कड़ी बाजार प्रतियोगिता होने के कारण इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है। वर्तमान में भारत सरकार द्वारा कृषि वस्तुओं के प्रमापीकरण एवं श्रेणी विभाजन पर अत्यधिक ध्यान दे रही है तथा इसके लिए आवश्यक कदम भी उठाये गये हैं। वर्तमान में देश में 1051 केन्द्रों पर कृषि वस्तुओं के वर्गीकरण का कार्य किया जा रहा है जिससे कृषि वस्तुओं की स्पर्द्धात्मक क्षमता में वृद्धि हुई है।

भारत सरकार द्वारा कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में होने वाले योगदान की जानकारी को किसानों तथा छोटे व्यापारियों तक पहुँचाने के लिए व्यापार से सम्बन्धित अनेक सूचनाओं का प्रकाशन हेतु प्रसारण किया जाता है जिससे किसानों को अपने उत्पादन के उपयोगिता की पूर्ण जानकारी होती है तथा अनावश्यक विचौलियों से बचा जा सकता है। कृषि वस्तुओं की व्यापार से सम्बन्धित सूचनाओं के प्रसारण एवं प्रकाशन में केन्द्र सरकार के साथ राज्य सरकारों द्वारा भी प्रयास किए गए हैं, इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों को रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं एवं इन्टरनेट की सुविधा के माध्यम से आवश्यक सूचनाओं को ग्रामीणों तक पहुँचाया जा रहा है। कृषि वस्तुओं को व्यापार चक्रों/उच्चावचनों से सुरक्षित रखने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा अनेक प्रकार की वित्तीय सहायता सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रचार व्यापक स्तर पर कर रही है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पाद को माँग एवं पूर्ति के अनुसार समायोजित करने के लिए भण्डार ग्रहों/शीतग्रहों की स्थापना के लिए विशेष रूप से वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी गयी है।

व्यापार को बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में नवीन अनुसंधान तथा सर्वेक्षणों के माध्यम से कृषि के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी अनेक समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया गया है ताकि विदेशी व्यापार के लिए ग्रामीण स्तर सके उत्पादन, लागत तथा गुणवत्ता सम्बन्धी चुनौतियों का सामना किया जा सके। सरकार द्वारा कृषि वस्तुओं के न्यूनतम समर्थन मूल्यों की भी समय-समय पर सरकार द्वारा घोषणाएँ की जाती हैं तथा समयानुसार इसमें आवश्यक संसोधन भी किया गया है ताकि कृषि वस्तुओं के मूल्यों में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अन्तर में अधिक वृद्धि न हो सके। कृषि वस्तुओं के मूल्यों में यह अन्तर अधिक होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कृषि वस्तुओं के उत्पादन विस्तार तथा सुधार के लिए आने वाली पूँजी की कमी को दूर करने के लिए बैंकों द्वारा अत्यधिक मात्रा में कृषि ऋण उपलब्ध कराने पर भारत सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके साथ राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन संगठन (NAFED) के द्वारा भी कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कृषि सम्बन्धी वस्तुओं की पूर्ति कराता है। विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए समय-समय पर कृषि नीतियों में भी आवश्यक कदम उठाये गये हैं। इसके साथ विदेशी व्यापार नीतियों में भी कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं।

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में भी कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विशेष प्रयास किये जाते रहे हैं। भारत सरकार द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भी इस दिशा में ठोस कदम उठाये गये थे। कृषि वस्तुओं के आयात को कम करने के लिए आयात प्रतिस्थापन विशेष जोर दिया गया है तथा निर्यात सम्बर्द्धन हेतु भी सार्थक कदम उठाये गये हैं, इसके लिए व्यापार बोर्डों के स्थापना, वस्तु मण्डलों की स्थापन, निर्यात गृहों की स्थापना की गयी है। सरकार द्वारा निर्यात संबर्द्धन परिषदों का गठन किया गया है जिसमें कृषि वस्तुओं को वरीयता दी गयी है।

सरकार की आर्थिक नीति के अन्तर्गत उदार लाइसेंस प्रणाली का अपनाया गया जिसमें मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए नकद सहायता तथा प्रशुल्कों में रियायतें देने की व्यवस्था की गयी। इससे कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने में बड़ी सीमा तक प्रोत्साहन मिला।

आपको यह जानकर भी अत्यन्त आवश्यक होगा कि सरकार द्वारा विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की गयी जिसमें खाद्य प्रसंस्करण तथा कृषि उत्पादन के निर्यात पर विशेष फोकस दिया गया। वर्तमान में भी वस्तुओं के निर्यात को बढ़ा देने के लिए इन क्षेत्रों का विस्तार एवं नवीनीकरण किया जा रहा है। कृषि वस्तुओं की कीमतों में स्थायित्व बनाए रखने तथा व्यापार को अनुकूल बनाए रखने की दिशा में प्रयासों के साथ कृषि आदानों पर अनेक प्रकार की सरकारी सहायता (subsidy) दी जा रही है जो वर्तमान में विकसित देशों तथा विकासशील देशों के मध्य एक समस्या का विषय बनी हुई है। शायद आपने इस तथ्य पर ध्यान दिया हो कि कृषि के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कृषि सम्बन्धी सुधारों तथा विकास कार्यक्रमों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारत सरकार द्वारा इस दिशा में भी महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। राज्य सरकारों द्वारा कृषि सिंचाई सुविधाओं के विस्तार पर निरन्तर ध्यान दिया जा रहा है तथा इसके लिए नवीन विद्युत परियोजनाओं के माध्यम से कृषि उत्पादन में वृद्धि के सार्थक प्रयास किए गए हैं।

कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धन हेतु सरकारी प्रयासों के अन्तर्गत अन्य महत्वपूर्ण प्रयास यह भी किया गया कि वैश्वीकरण के दौर में कृषि बाजार विस्तार की दिशा में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के मेलों का भी आयोजन किया गया है। जिसमें कृषि वस्तुओं के प्रदर्शन को वरीयता दी गयी है।

10.6 कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी समस्याएं

कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सरकार को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएं संस्थागत तथा गैर-संस्थागत दोनों ही रूपों में सामने आती हैं। आप इस तथ्य से भली-भांति परिचित होंगे कि कृषि वस्तुओं के उत्पादन, भण्डारण, विपणन, खाद्य सुरक्षा, मूल्यनीति आदि पक्षों से सम्बन्धित समस्याएं हमारी कृषि व्यवस्था में पैदा होती रही हैं जिनका कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार के निर्यात का कमजोर ढाँचा, कृषि वस्तुओं के प्रसंस्करण की असुविधा, श्रेणीकरण (grading) तथा गुणवत्ता सम्बन्धी अनेक समस्याओं का निर्यातकों के सामना करना पड़ता है। भारतीय निर्यात सम्बन्धी नीतियों का भेदभाव पूर्ण निर्माण एवं क्रियान्वयन भी विदेशी व्यापार को सीमित करता है। जो हमारी अर्थव्यवस्था तथा कृषि विकास के लिए अवरोधक का कार्य करता है।

कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार सम्बन्धी अनेक प्रमुख समस्याओं को आप निम्न तथ्यों द्वारा आसानी से समझ सकेंगे।

1. हमारे देश के अन्दर अधिकांश कृषि उत्पादन निम्न कोटि का किया जाता है, जिस पर उत्पादन लागत अधिक आती है। जिसके आधार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कृषि वस्तुओं के मध्य प्रतियोगिता करना अत्यन्त कठिन हो जाता है इससे हमारा विदेशी व्यापार प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।
2. भारत का कृषि निर्यात अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूसी संघ, यूरोपीय संघ, जापान आदि विकसित देशों के लिए किया जाता है। इसके साथ इन विकसित देशों का आयात नीति भारत के प्रति उदार नहीं है जिससे कृषि निर्यातकों को इन देशों के साथ व्यापार करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विकसित देशों द्वारा कृषि आयातों पर शर्तें प्रतिबन्ध तथा ऊँचे कर लगाये जाते हैं जिससे विदेशी व्यापार प्रभावित होती है।
3. सम्बन्धित तथा खाने के लिए तैयार कृषि वस्तुओं के निर्यात की माँग में वृद्धि हुई है। लेकिन भारत में इन वस्तुओं की पूर्ति करने के लिए अनेक प्रकार की कृषि सम्बन्धी सुविधाएं किसानों को दिया जाना आवश्यक माना गया है जो भारत में उपलब्ध नहीं हो रही है।
4. आपको यह बताना अत्यन्त आवश्यक होगा कि कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए कृषि वस्तुओं की लागत को कम करने के साथ कीमत भी कम रखने की आवश्यकता है। लेकिन भारत में अधिक लागत तथा नीची कीमतों के कारण किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहा है। इस प्रकार का विरोधाभास कृषि तथा विदेशी व्यापार के विकास के बाधक सिद्ध हो रहा है।
5. भारत में तीव्र औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या आदि संस्थागत परिवर्तन के कारण कृषि वस्तुओं की घरेलू माँग में तीव्र वृद्धि हुई है जिससे निर्यात को प्रोत्साहन नहीं मिल पा रहा है। भारत में ही कृषि वस्तुओं का बाजार अत्यन्त बड़ा तथा विस्तृत है जो इन वस्तुओं के विदेशी व्यापार के लिए लाभदायक नहीं है।

6. कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में यह भी तर्क दिया जाता है कि भारत में खाद्य सुरक्षा की समस्या के लिए अनेक नीतिगत उपाय किए गए हैं जिससे कृषि उत्पादन को संग्रह करने जैसी सुविधाओं से कीमत नीति तथा तंत्र को प्रभावित किया गया है। जो कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार के मार्ग में एक अवरोधक का कार्य करते हैं।

10.7 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत से निर्यात होने वाली कृषि वस्तुएं कौन-कौन सी हैं?
2. विदेशों से आयात की जाने वाली कृषि वस्तुओं का उल्लेख कीजिए?
3. कृषि वस्तुओं का निर्यात किन देशों को किया जाता है?
4. विदेश व्यापार नीति 2009-14 में कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी तथ्यों का उल्लेख कीजिए?
5. सिंगल विण्डो स्कीम से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में स्पष्ट कीजिए?
6. विदेश व्यापार नीति 2004-09 में कृषि वस्तुओं के निर्यात सम्बन्धन हेतु उठाये गये कदमों को स्पष्ट कीजिए।
7. बीजों के आयात की शर्तों को उदार किस विदेश व्यापार नीति में बनाया गया?
8. कृषि वस्तुओं के आयात की दिशा को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए?

दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. कृषि वस्तुओं के निर्यात को आसान बनाने के लिए एक ही स्थान पर से सभी औपचारिकताएँ पूरी करने की नीति अपनाये जाने की व्यवस्था कहा जाता है।
2. भारत को वर्ष में निर्यातक सदस्य के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय अनाज परिषद का सदस्य बनाया गया।
3. सन् साठ के दशक की विदेशी व्यापार की स्थिति पर एक नजर डाली जाए तो भारतीय अर्थव्यवस्था कोखाद्य अर्थव्यवस्था कहा जाता था।
4. वर्ष 2009-10 में खाद्यान्न एवं उपभोक्ता वस्तुओं का आयात करोड़ रूपए का था जो कुल आयात काप्रतिशत रहा।
5. वर्ष 2010-11 में खाद्यान्न एवं उपभोक्ता वस्तुओं का आयातकरोड़ रूपए जो कुल आयात का प्रतिशत था।
6. राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन संगठन (NAFED) के द्वारा भी कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिएवस्तुओं की पूर्ति कराता है।
7. वर्ष 1960-61 मेंकरोड़ रूपए की खली निर्यात की गयी जो 2009-10 मेंरूपए के स्तर पर पहुँच गया।
8. किसी देश द्वारा विदेशों से मंगायी गयी वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाया जाने वाला करकहलाता है।

9. आयात निर्यातों के लिये पहले से निर्धारित शर्तों, नियमों व कानून को ढीला करना ही कहलाता है।
10. किसी देश द्वारा निर्यातों में वृद्धि के लिए किए जाने वाले प्रयासों को कहा जाता है।
11. देश के अन्दर जनता की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किए गए सुरक्षित उपायों को के नाम से जाना जाता है।
12. कीमतों को नियंत्रित एवं प्रशासित करने के लिए सरकार द्वारा किए गए नीतिगत प्रयास, के नाम से जाने जाते हैं।

10.8 सारांश

देश की स्वतंत्रता के बाद से भारत की कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं। भारत द्वारा कृषि वस्तुओं के आयात में कमी करके आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया से की कृषि वस्तुओं का आयात किया जाना सम्भव होता है। भारत सरकार द्वारा विभिन्न विदेशी व्यापार नीतियों के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये। विशेष कृषि योजना सिंगल विण्डो कार्यक्रम, सहित अन्य प्रकार की रियायतें दी गयीं। मात्रात्मक दृष्टि से कृषि वस्तुओं के निर्यातों में लगातार वृद्धि जारी है लेकिन आनुपातिक रूप से निर्यातों की वृद्धि ऋणात्मक ही रही है। इसके साथ वर्ष 2003 में भारत को कृषि निर्यातक देश के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ परिषद का सदस्य बनाया गया।

भारतीय कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण सफलता उस समय मिली जब जुलाई 2003 में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय अनाज परिषद (International Grains Council) में नियतक सदस्य देश के रूप में शामिल कर लिया गया। इससे भारत के कृषि निर्यात को एक नई दिशा मिली। 1995 तक इस अन्तर्राष्ट्रीय अनाज परिषद को अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ परिषद के नाम से जाना जाता रहा था। इस परिषद का सदस्य बनाए जाने के पीछे मुख्य कारण विदेशी सदस्य देशों में भारतीय अनाज की माँग बढ़ने को लगाया जाता रहा है। इस अन्तर्राष्ट्रीय परिषद का सचिवालय लंदन में है। यह फूड एण्ड कन्वेंशन के तहत स्थापित फूड एण्ड कमेटी को भी सेवाएँ प्रदान करता है। भारत इण्टरनेशनल ग्रेन्स एग्रीमेन्ट 1995 तथा इसके अनाज व्यापार सम्मेलन 1995 में भी शामिल है। वर्ष 2009-10 में भारत को 17997.49 पौंड का भुगतान किया गया था जिसे भारतीय कृषि वस्तुओं के व्यापार के लिए एक सार्थक प्रयास ही रहा जाएगा।

आपको शायद ज्ञात हो कि भारत के निर्यातों में आर्थिक से पूर्व खाद्य प्रसंस्करण की भूमिका अत्यन्त कम थी। भारत सरकार द्वारा खाद्य प्रसंस्करण करके खाद्यान्नों के निर्यात पर बल देना प्रारम्भ किया। सरकार ने इस दिशा में ठोस कदम उठाते हुए प्रारम्भिक सफलता प्राप्त की। वर्ष 1990-91 में भारत द्वारा प्रसंस्कृत खाद्यान्नों का निर्यात रूपए 10485.92 करोड़ था जो वर्ष 2001-02 में बढ़कर रूपया 13629.57 करोड़ हो गया। वर्ष 2002-03 में परिस्कृत खाद्य पदार्थों के निर्यातों का मूल्य 14600 करोड़ रूपए (अनुमानित) था। वर्ष 2001-02 में प्रसंस्कृत फल, सब्जियाँ, पशु उत्पादक, समुद्री उत्पाद, चावल, अखरोट, डेयरी उत्पाद, स्पिरिट, ब्रेवरीज का निर्यात बड़े स्तर पर किया गया।

इसके बाद इन प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के साथ वृद्धि होती गयी। शराब के निर्यात में भी भारत ने सक्रियता प्रदर्शित की। खाद्य प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के निर्यात में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। चाय का निर्यात भारतीय कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चाय का निर्यात, परम्परागत निर्यात की श्रेणी में आता है। वर्तमान में भी चाय का निर्यात अपनी स्थिति को मजबूत बनाए हुए है। भारत चाय उत्पादक एवं निर्यात दोनों ही रूपों में प्रमुख है। भारत में चाय का अत्यधिक उपयोग होने पर भी एक बड़ा भाग निर्यात कर दिया जाता है। वर्ष 1950-51 में चाय का निर्यात 180 करोड़ रूपए का था जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 2944 करोड़ रूपए के स्तर पर पहुँच गया।

भारत ने कॉफी के निर्यात में भी महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त कर रखी है। भारत द्वारा वर्ष 1950-51 में 1.4 करोड़ रूपए का निर्यात किया था जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 2032 करोड़ रूपए के स्तर पर पहुँच गया। इसी प्रकार जूट तथा जूट से निर्मित वस्तुओं का भी निर्यात परम्परागत रूप में रहा है। बांग्लादेश विभाजन से पूर्व भारत का जूट निर्यात पर एकाधिकार था। लेकिन अब देश द्वारा जूट से निर्मित वस्तुओं का निर्यात किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत को जूट वस्तुओं के निर्यात में कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। बांग्लादेश तथा इण्डोनेशिया इस निर्यात में मुख्य प्रतियोगी देश हैं। भारत द्वारा खली का निर्यात किया जाता है। वर्ष 1960-61 में 14 करोड़ रूपए की खली निर्यात की गयी जो 2009-10 में 7832 रूपए के स्तर पर पहुँच गया। कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रकार के संस्थागत तथा गैर संस्थागत उपाय किए गए हैं, फिर भी इस क्षेत्र में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

10.9 शब्दावली

- **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** - एक देश की अपनी भौगोलिक सीमाओं से बाहर वस्तुओं का आयात एवं निर्यात को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहा जाता है।
- **वैश्वीकरण** - दो या दो से अधिक देशों के बिना किसी रूकावट के वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय विक्रय वैश्वीकरण कहलाता है। इसके अन्तर्गत समस्त देशों की अर्थव्यवस्थाओं को एकीकरण किया गया है।
- **कीमत नीति** - कीमतों को नियंत्रित एवं प्रशासित करने के लिए सरकार द्वारा किए गए नीतिगत प्रयास, कीमत नीति के नाम से जाने जाते हैं।
- **पूँजीवाद** - अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पत्ति के साधनों पर निजी अधिकार रखने की स्थिति को पूँजीवाद कहा जाता है।
- **आयात-शुल्क** - किसी देश द्वारा विदेशों से मंगायी गयी वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाया जाने वाला कर आयात शुल्क कहलाता है।
- **रियायतें** - आयात निर्यातों के लिये पहले से निर्धारित शर्तों, नियमों व कानून को ढीला करना ही रियायत कहलाता है।
- **निर्यात संवर्द्धन** - किसी देश द्वारा निर्यातों में वृद्धि के लिए किए जाने वाले प्रयासों को निर्यात संवर्द्धन कहा जाता है।

- **खाद्य-सुरक्षा** - देश के अन्दर जनता की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किए गए सुरक्षित उपायों को खाद्य सुरक्षा के नाम से जाना जाता है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. सिंगल विण्डो स्कीम (Single Window Scheme)
2. 2003
3. 'शिप-टू-माउथ'
4. 497; 3.7
5. 545; 2.9
6. कृषि सम्बन्धी
7. 14; 7832
8. आयात शुल्क
9. रियायत
10. निर्यात संवर्द्धन
11. खाद्य सुरक्षा
12. कीमत नीति

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सन्दरम-2010 **भारतीय अर्थव्यवस्था**, 47 वाँ पूर्णतया संशोधित संस्करण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., रामनगर नई दिल्ली।
- मिश्रा एण्ड पुरी (2011) **भारतीय अर्थव्यवस्था**, 29 वां संस्करण, हिमालय पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली
- डॉ. सी. एस. बरला एवं डॉ. एच.एस. अग्रवाल (2010) **अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र**, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा।
- टी.टी. सेठी (2010) **मुद्रा बैंकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार**, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता-आगरा।
- जे. पी. मिश्रा (2010) **कृषि अर्थशास्त्र**, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
- मासिक पत्रिकाएँ - 1. कुरुक्षेत्र (दिल्ली); 2. योजना-(दिल्ली) 3. स्वदेशी – (राधाकृष्णपुरम, नई दिल्ली)

10.12 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- आर्थिक समीक्षा - 2010-11 भारत सरकार, नई दिल्ली
- पाण्डेय मृगेश (2010) आर्थिक वृद्धि एवं विकास, नीति एवं समस्याएँ मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ।
- अर्थव्यवस्था (2012) वार्षिकी साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिरूप को स्पष्ट करते हुए आयात एवं निर्यात की दिशाओं को बताओ?
2. कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भारतीय कृषि के विकास से क्या अन्तर्संबन्ध है? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3. कृषि वस्तुओं के आयात एवं निर्यात में आने वाली प्रमुख कठिनाइयों की विवेचनो कीजिए?
4. कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों की विवेचना कीजिए?

इकाई 11- विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर प्रभाव (Impact of World Trade Organization on Indian Agriculture)

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 विश्व व्यापार संगठन एवं कृषि समझौता
- 11.4 विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर प्रभाव
- 11.5 विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि की समस्याएं
- 11.6 अभ्यास प्रश्न
- 11.7 सारांश
- 11.8 शब्दावली
- 11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत विश्व व्यापार संगठन की नीतियों, योजनाओं एवं निर्णयों से भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा। विश्व व्यापार संगठन एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है, जो कृषि को विदेशी व्यापार के साथ अन्तरक्षेत्रीय व्यापार के साथ प्रभावित करता है। वैश्वीकृत अर्थव्यवस्थाओं में कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था जो नीति निर्धारित करती है उसका बाह्य तथा आन्तरिक दोनों ही रूपों में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव पड़ता है। विश्व व्यापार संगठन भारतीय कृषि को विदेशी अर्थव्यवस्थाओं के लिए खोलने तथा मनमाने प्रभावों को डालने की नीतियां तय करता रहा है। यह संगठन इस बात के लिए भी आलोचनाओं का शिकार पाया गया है कि केवल विकसित देशों के हितों के लिए ही विकासशील या भारतीय देशों के हितों के लिए ही विकासशील या भारतीय अर्थव्यवस्था को गुमराह करने का प्रयास करता है।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत विश्व व्यापार संगठन के भारतीय कृषि पर पड़ने वाले सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों को स्पष्ट किया जाएगा। विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से भारतीय कृषि के विकास के लिए सरकारी प्रयास भी तेज हुए हैं लेकिन भारतीय कृषि के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियां पैदा हुई हैं। विश्व व्यापार संगठन की नीतियों का प्रभाव अन्य सभी देशों के साथ होने वाले व्यापार पर भी पड़ता है इसीलिये भारतीय कृषि नीतियों के निर्धारण में भी नीति निर्धारकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आप प्रभावों के अन्तर्गत विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि के विकास पर पड़ने वाले प्रभावों एवं खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ने वाले बहुआयामी प्रभावों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भली भांति समझ सकेंगे कि-

- ✓ विश्व व्यापार संगठन के ऐजेन्डे में कृषि के मुद्दे को क्यों शामिल किया गया तथा यह कृषि सम्बन्धी मुद्दा किन देशों के इशारों पर तैयार किया गया है?
- ✓ विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर जो प्रभाव पड़ा है उसकी दिशा क्या है तथा यह कहाँ तक भारतीय कृषि को प्रभावित करने में सफल हुआ है।
- ✓ विश्व व्यापार संगठन की कृषि सम्बन्धी नीतियों के क्रियान्वयन के कारण भारत सरकार ने भारतीय कृषि के सामने किन समस्याओं को समझा तथा उनके समाधान के लिए नीतिगत उपायों को क्या रूप दिया है?
- ✓ विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के स्तर तथा विदेशी व्यापार की दिशा में क्या परिवर्तन हुए हैं तथा भारतीय कृषि में उत्पन्न चुनौतियों के लिए विश्व व्यापार संगठन किस सीमा तक जिम्मेदार हैं?

11.3 विश्व व्यापार संगठन एवं कृषि समझौता

विश्व व्यापार संगठन के 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आने के बाद दिसम्बर 1995 से अपना कार्य प्रारम्भ किया। विश्व व्यापार संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार के प्रयासों के बाद विकसित देशों का ध्यान विकासशील देशों की कृषि व्यवस्थाओं तथा उत्पादित माल के बाजारों की ओर गया। भारतीय कृषि पर इस व्यापार संगठन के पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन संगठन के मंत्रिमण्डल स्तरीय घोषणा के आधार पर लगाया

गया था “इस बात की प्रबल आवश्यकता थी कि विश्व कृषि व्यापार में अधिक अनुशासन और निश्चितता लायी जाए और संरचनात्मक अधिशेष सहित इस क्षेत्र के प्रतिबन्धों एवं विकृतियों को सुधारने एवं रोकने के प्रयास किए जाए ताकि विश्व कृषि बाजार असन्तुलन, अस्थिरता और अनिश्चितता के माहौल से उबर सके।” कृषि के सम्बन्ध में विश्व व्यापार संगठन ने कृषि आयातों से मात्रात्मक प्रतिबन्धों को मुद्दा बनाकर विकासशील देशों की कृषि विकास की गति को प्रभावित किया। सहायता (subsidy) समाप्त करने, कृषि बीजों के सम्बन्ध में पेटेन्ट लागू करने से भारतीय कृषि बुरी तरह से प्रभावित होने का अनुमान अर्थशास्त्रियों द्वारा लगाया गया। कृषि समझौते का मुख्य उद्देश्य विकसित देशों द्वारा व्यापार में आने वाली विभिन्न बाधाओं को हल करना था। जिसे विकासशील देशों के साथ भारत की कृषि को हथियार बनाने का जोरदार प्रयास किया गया जिससे भारतीय कृषि को आन्तरिक तथा बाहरी दोनों ही क्षेत्र गम्भीर रूप से प्रभावित हुए।

आपको यह बताना अत्यन्त उपयोगी होगा कि विकसित देशों के पास अपने स्वयं के प्राकृतिक या कच्चे माल सम्बन्धी संसाधन उनकी वृद्धि दर को स्थिरता देने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसीलिए विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से विकसित देश भारत सहित विकासशील देशों के कृषि सदृश्य संसाधनों का प्रयोग अपने विकास की गति को स्थिरता देने के लिए करना चाहते हैं। आपको यह स्पष्ट करना भी अत्यन्त आवश्यक होगा कि सन् नब्बे के दशक के प्रारम्भ में ही विश्व के विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य गम्भीर मतभेद पैदा हो गये थे। इस समस्या का समाधान करना कोई सरल कार्य नहीं था। विश्व व्यापार संगठन के दो तिहाई से अधिक विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं में कृषि की प्रधानता है। इसीलिए विकसित देशों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकसित राष्ट्रों के हितों की ओर मोड़ा जाए। विकसित देश विश्व व्यापार संगठन को एक ऐसे हथियार के रूप में अपनाना चाहते थे जिससे इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत आधार मिल सके।

विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव का सबसे महत्वपूर्ण तत्व विश्व व्यापार संगठन द्वारा कृषि पर समझौता रहा है। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातों को शामिल किया गया -

1. कृषि से सम्बन्धित घरेलू बाजार को सभी देशों के लिए खोलना इसके लिए सभी देशों को अपने देशी बाजारों से आयात प्रतिबन्धों को समाप्त करने की व्यवस्था की गयी ताकि व्यापार में आने वाली समस्याओं को दूर किया जा सके। मात्रात्मक आयात प्रतिबन्ध, सरकार द्वारा व्यापार तथा उसका नियंत्रण आदि को भी शामिल किया गया। विकसित देशों के सन् 2000 तक तटकरों की दरों में 36 प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 2004 तक 24 प्रतिशत की कमी करने की व्यवस्था की गयी।
2. घरेलू समर्थन में कमी करने की व्यवस्था जिसके अन्तर्गत घरेलू समर्थन को दो भाग में रखा गया-
 - (क) व्यापार को विकल्पित न करने वाली सहायता।
 - (ख) व्यापार को विकल्पित करने वाली सहायता।
 व्यापार को विकल्पित न करने वाली सहायता को तीन भागों में विभाजित किया गया-ग्रीन बॉक्स, ब्लू बॉक्स तथा स्पेशल डिफ्रेंशियल बॉक्स।

- निर्यात सहायता कम करना जिसके अन्तर्गत निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान की जाने वाली सहायता को विकसित देशों को 6 वर्ष की अवधि में 21 प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 10 वर्ष की अवधि में 14 प्रतिशत करना है।

कृषि पर समझौते पर विकासशील तथा विकसित राष्ट्रों द्वारा अलग-अलग आधारों पर अपने-अपने पक्ष में सकारात्मक अनुमान लगाये गये। आपको यह भी स्पष्ट करना होगा कि विकसित एवं विकासशील राष्ट्र कृषि के मुद्दे पर संस्थागत रूप से एकरूपता दिखा सकते हैं लेकिन वास्तविक क्षेत्र में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के हित में सही दिशा में नहीं सोचा जा रहा है भले ही विकासशील राष्ट्र अपने कूटनीतिक प्रयासों से कृषि क्षेत्र में विकास की रणनीति तय कर रहे हों। शायद आपको विदित हो कि वैश्वीकृत अर्थव्यवस्थाओं में पूंजीवादी या विकसित अर्थव्यवस्थाओं को विकास की गति बनाए रखना अन्यन्त आवश्यक है इसके लिए विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं की क्षमताओं का प्रयोग विकसित राष्ट्र अपने हित में करना चाहते हैं।

आर्थर डंकल द्वारा प्रस्तावित महत्वपूर्ण प्रस्ताव बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत किसी भी नये आविष्कार के पंजीकृत पेटेन्ट पर 20 वर्षों के लिए एकाधिकार प्राप्त होता है जिसे समस्त विश्व के देशों पर लागू किया जाता है। 20 वर्ष की इस अवधि में विश्व के समस्त देशों में कोई भी संस्था या व्यक्ति उस पेटेन्ट से संरक्षित उत्पादन करने के लिए उस संस्था से अनुज्ञा लेनी होती है तथा उसे पूर्ण निर्धारित रॉयल्टी का भी भुगतान करना होता है। इस उत्पादन के लिए पेटेन्टधारी से तकनीकी न लेकर स्वयं के द्वारा किए गए अनुसंधान एवं समस्त स्वप्रयासों से उत्पादन प्रौद्योगिकी विकसित कर लेने पर भी उस 20 वर्ष तक की समयावधि तक पेटेन्टधारी की अनुमति लेना आवश्यक होता है। उस उत्पादन पर भविष्य में शोध उसमें परिवर्धन क्षमता का विकास, सुधार करने सम्बन्धी अधिकार भी पेटेन्टधारी संस्था या व्यक्ति को होता है।

आपको यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि इस व्यापार सम्बन्धित बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर भी विश्व व्यापार संगठन की सोची समझी पूर्व निर्धारित रणनीति के आधार पर विकसित देशों द्वारा विश्व में उत्पादित अधिकांश उत्पादों के विकसित पेटेन्ट औद्योगिक राष्ट्रों की कम्पनियों ने पंजीकृत करा लिये हैं। इस बौद्धिक सम्पदा अधिकार की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विश्व में नवीन उत्पादों एवं तकनीकी पर एक तरह से विकसित देशों का ही पूर्ण अधिकार हो गया है। कुछ वर्ष पूर्व कुछ फसलों के उत्पादन को लेकर भारत तथा अन्य विकसित देशों के मध्य विवाद की स्थिति पैदा हुई थी जिसमें भारत के पक्ष में सर्वसम्मति प्रदान की गयी। इस अधिकार के प्रभावों यदि कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर डालकर देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि भारत जैसे विकासशील देशों को कृषि उत्पादन तथा उसकी गुणवत्ता के क्षेत्र में अनेक प्रकार की प्रतिस्पर्धात्मक समस्याओं का सामना करना होगा। जिसका परिणाम यह देखने को मिल रहा है कि भारत में कृषि वस्तुओं के निर्यात की अपेक्षा आयात में अधिक वृद्धि दर्ज की गयी है।

11.3.2 विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर प्रभाव

विश्व व्यापार संगठन के भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों को दो रूपों में रखकर अध्ययन किया जाना अति आवश्यक समझा जाएगा।

1. कृषि पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव।
2. कृषि पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव।

विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर जो प्रभाव पड़ा है उसमें सकारात्मक प्रभावों को एक सीमित दायरे में रखकर ही देखा जा सकता है। इन सकारात्मक प्रभावों के अन्तर्गत केवल यह कहा जा सकता है कि खुली आर्थिक नीतियों के कारण कृषि निर्यात के लिए बाजार का विस्तार हुआ है तथा भारत की अर्थव्यवस्था में व्यापारी वर्ग द्वारा की जाने वाली कृषि वस्तुओं की काला बाजारी को कम किया गया है। वहीं दूसरी ओर भारत सरकार द्वारा भारतीय कृषि उत्पाद को आन्तरिक तथा बाहरी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति के अनुकूल बनाने के सार्थक प्रयास किए गए हैं। जिसके लिए खाद्य प्रसंस्करण जैसी व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, कृषि निर्यात के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना पर केन्द्र सरकार द्वारा काफी ध्यान दिया गया है तथा वर्तमान में भी इन क्षेत्रों के विकास एवं विस्तार पर निरन्तर कार्य किया जा रहा है। इन क्षेत्रों के विकास के माध्यम से भारतीय व्यापारियों में भी कृषि उत्पादों की पूरी कीमत देने के लिए प्रयास किए गए हैं जिससे किसानों के मध्य भी अपनी कृषि के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा हुआ है।

विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों को नकारात्मक रूप में निम्नवत लिया जा सकता है।

भारतीय कृषि व्यवस्था एक लम्बे समय से ही अनेक प्रकार की संस्थागत तथा गैर-संस्थागत समस्याओं का सामना कर रही है। जिससे भारतीय कृषि उत्पादन की लागत अधिक तथा उत्पादन की वृद्धि दर निम्न स्तर पर पहुँच गयी है। विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत कृषि समझौते से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि वस्तुओं का आगमन तेजी से हुआ जिससे भारतीय कृषि उत्पाद विदेशी वस्तुओं से प्रतिस्पर्द्धा करने में पूर्ण सफल नहीं हो सके। विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को सहायताएँ प्रदान की जा रही है जिससे विकासशील देशों के कृषि बाजार में उनकी पहुँच आसान बन गयी है। इस प्रकार विकसित देशों द्वारा भारतीय कृषि को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया गया है।

मात्रात्मक प्रतिबन्ध समाप्त होने के पश्चात् आवश्यक वस्तुओं का अन्धाधुन्ध आयात रोकने के लिए नई आयात-निर्यात नीति तय की गयी। देश में फल, सब्जियाँ, चाय, कॉफी, मसाले, गेहूँ, चावल, मोटे अनाज, नारियल का तेल आदि का आयात मुक्त हो गया है जिससे भारतीय कृषि के आन्तरिक बाजार पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा है।

विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर पड़ने वाले मनमाने प्रभावों के परिणामस्वरूप छोटे तथा सीमान्त किसानों के हितों को सुरक्षित रखा जाता सम्भव नहीं है जिससे अत्यधिक कर्ज का बोझ, आत्महत्याएँ जैसी घटनाएँ सामने आ रही हैं। पेटेन्ट कानून एवं बौद्धिक सम्पदा का अधिकार भी भारतीय कृषि को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष किसानों को नए बीजों को खरीदना होगा जिससे कृषि लागत में वृद्धि होगी एवं कृषि उत्पादन के लिए किसी भी दिशा में प्रभाव हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में डीजल तथा कच्चे तेज की कीमतों का बाजार भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन से प्रभावित हुआ जिससे भारतीय कृषि के लिए सिंचाई, परिवहन के साधन आदि की लागत में भी वृद्धि हुई है।

भारत में पेटेन्ट प्रणाली के आविष्कार के उपयोग तथा इससे उत्पादित उत्पादन एवं उत्पादन में अपनायी जाने वाली विधि पर सम्बन्धित देश के अधिकार का भी भारतीय कृषि पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। इस प्रणाली के लागू होने से कोई भी व्यक्ति पेटेन्ट स्वामी की बिना अनुमति के उस उत्पादन का उपयोग एवं विक्रय व्यापारिक

स्तर पर नहीं कर सकता। यह अधिकार उसी स्थिति में किसी देश को दिया जा सकता है जब उस उत्पादन की नवीन उपयोगिता हो तथा मानव के लिए उपयोगी भी हो। इस कानून के लागू होने से भारत में कृषि क्षेत्र में विदेशी पूँजी को आकर्षित होने का अवसर प्राप्त हुआ। जिससे भारतीय किसानों की स्वायत्तता पर गहरा आघात लगने की संभावना व्यक्त की गयी।

आपको यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा कि स्वास्थ्य और पादप स्वास्थ्य प्रावधान तथा व्यापारगत प्राविधिक अवरोध नामक समझौता विश्व व्यापार संगठन का एक सराहनीय कार्य रहा। विकासशील देशों के साथ भारत ने इसके उचित क्रियान्वयन की प्रतिबद्धता प्रकट की लेकिन विकसित राष्ट्रों द्वारा इसका क्रियान्वयन न होने के कारण विकासशील देशों को काफी क्षति उठानी पड़ रही है। विकसित देश अपने वायदों से पीछे हटकर अपने बाजारों को संरक्षित किया गया है। इससे भारतीय कृषि बाजार के अन्तर्गत निर्यातों को सीमित किया गया है जिसका भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके लिए यह आवश्यक है कि विकासशील देश, विकसित देशों पर इस प्रावधान को लागू कराने का दबाव डालें।

बीजों एवं पौधों की किस्म का पेटेन्ट होने से देश के किसानों को प्रत्येक वर्ष बीज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से खरीदने होंगे और अपने निजी फार्मों पर उत्पादित बीजों का प्रयोग किसान अपनी फसल के लिए नहीं कर सकेंगे। विश्व व्यापार संगठन की सन्धि को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में सरकार ने पौध किस्म संरक्षण के लिए एक कानून बनाने का निर्णय लिया है। जिसके अन्तर्गत पौध प्रजनन अधिकारों की एक व्यवस्था तैयार की गयी है। प्रस्तावित पौध संरक्षण कानून-1978 संधि के प्रावधानों के अनुरूप तैयार किया गया है। इसके अन्दर किसानों तथा अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों को संरक्षित करने की व्यवस्था की गयी है। पौधों की किस्म के संरक्षण की अवधि सीमा 15 वर्ष रखी गयी वृक्ष एवं बेल के इस प्रावधान के बाहर रखा गया है।

भारत में सीमान्त एवं लघु किसानों की संख्या अत्यधिक है जो नयी किस्म के बीजों को प्रत्येक साल खरीदने में सक्षम नहीं होते हैं। इसके लिए 'टर्मिनेटर जीन' जैसी प्रौद्योगिकी को अपनाने में सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। भारत सरकार इस तकनीकी से सहमत नहीं है। भारत इस मामले में सकारात्मक रवैया अपनाने का पक्षधर है।

विश्व व्यापार संगठन की नीतियों एवं उपायों के चलते भारतीय चाय उद्योग के सामने अनेक प्रकार की गंभीर चुनौतियां पैदा हुई हैं जिनमें ज्यादा उत्पादन लागत, गुणवत्ता में गिरावट निर्यात बाजार में कड़ी प्रतियोगिता, घरेलू मूल्य पर प्रतिकूल प्रभाव आदि प्रमुख हैं। परिणामस्वरूप चाय बागान मजदूरों की मजदूरी अत्यन्त कम हुई है जो चाय बागानों के प्रति श्रमिकों का नकरात्मक रवैया पाया गया है। इससे चाय उद्योग प्रतिकूल दिशा में प्रभावित हुआ है। विश्व व्यापार संगठन की विकासशील देशों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण चाय की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में काफी अन्तर पाया गया है। जिससे चाय के अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा हुई हैं। चाय उद्योग में व्याप्त श्रमिकों सम्बन्धी समस्याओं के लिए अनेक प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है।

आपको ज्ञात हो कि विश्व व्यापार संगठन द्वारा सबसे मजबूत हथियार '**कृषि के लिए दिये जाने वाले अनुदानों की समाप्ति का बनाया गया।**' सरकार द्वारा कृषि को दी जाने वाली अनुदान सहायता के कारण कृषि उत्पादन की कीमतें घरेलू बाजारों में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की अपेक्षा कम होती हैं। इसके पीछे यह तथ्य प्रस्तुत किया जाता है कि विकसित देशों के कृषि उत्पादन के विपणन में उच्च कीमत होने के कारण अनेक प्रकार की

बाधाएँ पैदा होती हैं। जिसके सन्दर्भ में विकासशील देश विशेषकर भारत में यह तथ्य प्रस्तुत किया गया कि कृषि के बाजार में प्रचलित कीमतों में अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों के बराबर समानता लायी जाए। सरकार द्वारा अपने देश की कृषि के लिए कृषि उपादानों पर अनुदान दिया जाता है। जैसे - उर्वरक, बीज, सिंचाई, कृषि ऋण आदि, जिसका प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से किसान भी लाभ लेने में समर्थ हो पाते हैं। भारत में यह व्यवस्था एक लम्बे समय से चली आ रही है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा इस अनुदान व्यवस्था पर गम्भीरता से ध्यान दिया गया तथा इसका प्रभाव विश्व व्यापार पर विकसित देशों की कृषि व्यवस्था के पक्ष में डालने का प्रयास किया गया। भारत में भी सरकार द्वारा कुछ विशेष फसलों एवं वागानों की कृषि के लिए भी अलग से अनुदान देने की व्यवस्था की जाती है जिसके कारण इस प्रकार की कृषि को बढ़ावा देकर उसे अधिक उत्पादक बनाने का प्रयास किया जाता है। इसका प्रभाव भी अन्तर्राष्ट्रीय कीमत के आधार पर देखने के लिए विश्व व्यापार संगठन द्वारा भारत सरकार तथा भारतीय व्यापारियों को मजबूत किया गया है।

विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार भारत सरकार ने अपने आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्धों को एक बड़ी सीमा तक हटा लिया है जिसका भारतीय कृषि पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है। भारत ने विश्व व्यापार संगठन के दिशा निर्देशों के अनुसार पूर्व में हटाए गए आयात प्रतिबन्धों के अतिरिक्त शेष बचे 1429 उत्पादों के आयात से भी प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया है जिसमें 714 उत्पादों पर से अप्रैल 2000 में तथा शेष बचे 715 वस्तुओं पर से 1 अप्रैल 2001 से यह प्रतिबन्ध समाप्त किए गए। आपको यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि जिन उत्पादों से आयात सम्बन्धी मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाये गये हैं उनमें कृषि तथा गैर कृषि उत्पाद दोनों ही सम्मिलित हैं। लेकिन इन आयात सम्बन्धी प्रतिबन्धों की समाप्त का अधिकांश प्रभाव भारतीय कृषि व्यापार पर ही पड़ा है। मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने के साथ आवश्यक वस्तुओं का भारत में अतिरिक्त या अनावश्यक कृषि वस्तुओं का आयात न हो सके इसके लिए भारत सरकार ने अपनी कृषि नीति तथा विदेश व्यापार नीति में भारतीय कृषि को संरक्षण प्रदान करने के जोरदार प्रयास किए। कुछ महत्वपूर्ण कृषि उत्पादों गेहूँ, चावल, मक्का के खुले आयात की छूट नहीं दी है इन वस्तुओं का आयात कुछ विशेष सरकारी व्यावसायिक कम्पनियाँ ही कर सकती हैं।

वनस्पति तथा पशु उत्पाद से सम्बन्धित वस्तुओं के आयात के लिए कृषि मंत्रालय की अनुमति को आवश्यक बनाया गया है। भारत में मांस, दूध और दुग्ध उत्पाद, फल व सब्जियाँ, चाय कॉफी, मसाले, गेहूँ, चावल व मोटे अनाज, रबड़ रबड़ का सामान, कागज व लेखन सामग्री, नारियल का तेल, रेशम का आयात खुल गया है।

विश्व व्यापार संगठन की विकासशील देशों की कृषि विरोधी नीतियों के कारण भारत सरकार को अनेक नीतिगत उपायों का सहारा लेना पड़ा। सरकार द्वारा विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना करके कृषि की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया गया। विश्व व्यापार संगठन को कृषि के उत्पादन पर प्रभावों को भी मात्रात्मक रूप में दर्शाया जा सकता है। देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में मोटे अनाज के उत्पादन का भाग वर्ष 2003-04 में 17.8 प्रतिशत रहा जो 38.12 मिलियन टन था 2005-06 में यह उत्पादन 34.00 मिलियन टन अनुमानित किया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान भारत में कृषि की विकास दर 4.7 प्रतिशत आमंत्रित की गयी। नवी योजना में यह विकास दर 2.1 प्रतिशत ही रह गयी। दसवी योजना में वर्ष 2002-03 में यह विकास

दर ऋणात्मक रूप में -7 प्रतिशत हो गयी ग्यारवहवी पंचवर्षीय योजना में कृषि की विकास दर 8 प्रतिशत आंकलित की गयी। इस प्रकार विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के प्रभावों का भारतीय कृषि पर समग्र रूप में ऋणात्मक प्रभाव ही पडा भले ही सरकार ने इसकी पूर्ति के लिए अनेक कृषि उत्पादन सुधार की योजनाएं संचालित की हो। विश्व व्यापार संगठन की नीतियों का प्रभाव गेहूँ के उत्पादन पर भी परिलक्षित हुआ। वर्ष 1999-2000 में गेहूँ का उत्पादन 76.3 मिलियन टन रहा जो 2000-01 में घटकर 69.6 मिलियन टन रह गया। 2002-03 में यह उत्पादन घटकर 65.8 मिलियन टन के स्तर पर आ गया। वर्ष 2004-05 में 68.6 मिलियन टन गेहूँ का देश में उत्पादन किया गया। छोटे तथा सीमान्त किसानों की दयनीय हालात के कारण कृषि योग्य भूमि का प्रयाग भी सही रूप में नहीं हो सका। खाद्यान्न उत्पादन पर भी सही रूप में नहीं हो सका। खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ने वाले प्रतिकूलात्मक प्रभाव के कारण कृषि जोतों का अधिग्रहण आद्योगिक तथा सेवा क्षेत्र द्वारा किया गया जिससे कृषि क्षेत्र के विकास का मार्ग और अवरूद्ध हुआ। खुले व्यापार की नीतियों के कारण दिल्ली राजधानी क्षेत्र से सटे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का गेहूँ उत्पादक क्षेत्रफल के गैर कृषि कार्यों में उपयोग से गेहूँ उत्पादन में गिरावट आयी।

विश्व व्यापार संगठन द्वारा पैदा की गयी भारतीय कृषि सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के लिए सरकार द्वारा जो विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की उससे भी भारतीय कृषि की दशा पर कोई खात अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

11.4 विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि की समस्याएं

विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि से जुड़ी हुयीं अनेक समस्याओं की ओर ही आपका ध्यान ले जाने की आवश्यकता होगी। भारत में औद्योगिक तथा सेवा क्षेत्र के तीव्र विकास के परिणामस्वरूप भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग रोजगार तथा अन्य आर्थिक क्रिया कलापों के लिए अनेक रूपों में भारतीय कृषि से जुड़ा हुआ है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा भारतीय कृषि पर जबरन थोपे गये अनेक नियमों एवं कानूनों तथा विकसित देशों की रणनीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय कृषि अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रसित हो गयी है।

1991 में देश में प्रारम्भ किए गए आर्थिक सुधारों से पूर्व भारतीय कृषि व्यवस्था को नियन्त्रित एवं नियमन करने के लिए भारत सरकार स्वतन्त्र थी तथा कृषि विकास सम्बन्धी अनेक योजनाओं का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन किया गया जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की गयी। स्वतन्त्रता के समय कृषि सम्बन्धी अनेक प्रकार की संस्थागत तथा गैर संस्थागत समस्याएं विद्यमान थीं। जिनका निराकरण विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में तय रणनीति के अनुसार किया गया। आर्थिक सुधारों के वर्तमान दौर में कृषि अनेक प्रकार की समस्याओं जैसे कृषि जोतों का लगातार छोटा होना, उत्पादन में वांछित वृद्धि न होना, कृषि विवधीकरण के प्रति किसानों की अधिक सजगता न होना तथा समय पर बीज, खाद व सिंचाई की उपलब्धता न होना, देखी जा सकती है, जिसको लेकर भारत सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा अनेक ठोस कदम उठाये गये हैं लेकिन विदेशी नीतियों एवं दबाव के चलते इन कार्यक्रमों एवं योजनाओं का पूर्ण लाभ किसानों का प्राप्त नहीं हो पा रहा है। भारत में कृषि उत्पादों के अधिक आयात तथा कम निर्यात के कारण भी कृषि बाजार में मौसम के

अनुसार किसान विरोधी आर्थिक उतार-चढ़ाव की स्थिति पैदा होती रहती है, जिसकी बजह से किसानों की लागत भी निकलना मुश्किल हो जाता है।

विश्व व्यापार संगठन द्वारा जारी दिशानिर्देश के अनुसार भारतीय कृषि को पूँजीवाद की परीधि में लाया जा रहा है लेकिन भारत में ऐसे माहौल की कोई ठोस सम्भावनाएँ नहीं हैं। कृषि में किसानों को होने वाले आर्थिक हानि की बजह से भारत के अनेक प्रान्तों में किसानों द्वारा आत्म हत्याओं की स्थिति भी इस आर्थिक सुधार के दौर में देखी जा रही है। भारत में लगातार होती छोटी जोतों के कारण आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत विकसित नवीन तकनीकी एवं तकनीकी उपकरणों का प्रयोग कृषि उत्पादन हेतु सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप भारतीय कृषि व्यवस्था को एक नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जा रहा है तथा भारतीय सरकारों एवं बड़े किसानों का भी कृषि विकास के प्रति महत्वपूर्ण प्रयास नहीं रह गया है और भारत सरकार की विभिन्न नवीन योजनाओं में सेवा क्षेत्र के विकास को ही प्रमुखता दी जा रही है। इसके साथ कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को भी पर्याप्त मात्रा में रोजगार नहीं मिल पा रहा है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। कृषि वस्तुओं के उत्पादन की कीमतों में उतार-चढ़ाव एवं कृषि लागतों में वृद्धि के कारण ग्रामीणों को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी अनेक प्रकार के वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

11.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन की नीतियां किन देशों के पक्ष में सर्वाधिकार लाभदायक रही हैं?
2. विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर किस दिशा में प्रभाव पड़ा है?
3. वर्ष 2004 तक विकासशील देशों द्वारा तटकरों को किस सीमा तक करने की व्यवस्था की गयी?
4. व्यापार को विकल्पित न करने वाली सहायता को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. विश्व व्यापार संगठन केको अस्तित्व में आने के बादसे अपना कार्य प्रारम्भ किया।
2. विकसित देशों के सन् 2000 तक तटकरों की दरों में प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 2004 तक प्रतिशत की कमी करने की व्यवस्था की गयी।
3. आर्थर डंकल द्वारा प्रस्तावित महत्वपूर्ण प्रस्तावके अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित है।
4. किसी भी नये आविष्कार के पंजीकृत पेटेन्ट पर वर्षों के लिए एकाधिकार प्राप्त होता है जिसे समस्त विश्व के देशों पर लागू किया जाता है।
5. और प्रावधान तथा व्यापारगत प्राविधिक अवरोध नामक समझौता विश्व व्यापार संगठन का एक सराहनीय कार्य रहा।
6. पौध संरक्षण कानून-1978 संधि में पौधों की किस्म के संरक्षण की अवधि सीमावर्ष रखी गयी वृक्ष एवं बेल के इस प्रावधान के बाहर रखा गया है।

7. देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में मोटे अनाज के उत्पादन का भाग वर्ष 2003-04 मेंप्रतिशत रहा जो 38.12 मिलियन टन था 2005-06 में यह उत्पादन 34.00 मिलियन टन अनुमानित किया गया।
8. वर्ष 1999-2000 में गेहूँ का उत्पादनमिलियन टन रहा जो 2000-01 में घटकरमिलियन टन रह गया।
9. विदेशी व्यापार पर मात्रा के आधार पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्ध को कहा जाता है।
10. किसी देश की सीमा पर वस्तुओं के व्यापार पर लगने वाला करकहलाता है।

11.7 सारांश

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद से विश्व के विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य व्यापार की संरचना एवं दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हुए। विश्व व्यापार संगठन द्वारा भारतीय व्यापार को भी अनेक दिशाओं में परिवर्तित किया। विकसित देशों द्वारा भारतीय कृषि के व्यापार एवं आन्तरिक कृषि व्यवस्थाओं को भी अपने हितों की ओर आकर्षित किया है। भारतीय कृषि के आयात एवं निर्यात पर लगातार मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रतिकर्षों को लगाये जाने तथा भारत पर लगातार अनेक प्रकार के दवाबों को बनाए रखने का प्रयास विकसित देशों द्वारा विश्व व्यापार संगठन के द्वारा किया गया। इस प्रकार के दवाबों एवं प्रयासों के द्वारा भारतीय कृषि व्यापार का अन्य विकासशील देशों की ओर बढ़ने का भी प्रभाव पड़ा है। विकसित देशों द्वारा अपनाये जाने वाली प्रतिकूल नीति का सामना करने के लिए भारत सरकार द्वारा भी कृषि उत्पादन एवं व्यवस्था के सुदृढ़ करने के लिए अनेक नीतिगत कदम उठाये हैं ताकि विश्व व्यापार संगठन के नकारात्मक प्रभावों का सामना किया जा सके। सरकार द्वारा कृषि के लिए आन्तरिक रूप से अनेक प्रकार की योजनागत प्रयास किए गए हैं। जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं के व्यापार में निरपेक्ष रूप से काफी सुधार हुआ है।

11.8 शब्दावली

- **विश्व व्यापार संगठन** - विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने एवं बढ़ावा देने वाली अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की एक संस्था है।
- **आयात** - किसी देश द्वारा विदेशों से वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदकर मंगाना आयात कहलाता है।
- **निर्यात** - किसी देश द्वारा अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं को विदेशों के लिए वेचना या भेजना निर्यात कहलाता है।
- **विकसित देश** - जिन देशों में पूर्ण रोजगार के साथ विकास की दर उच्चतम सीमा पर जाकर स्थिर हो गयी है उन्हें विकसित देश कहा जाता है।
- **विकासशील देश** - जिन देशों का पूर्ण विकास नहीं हुआ है तथा विकास की ओर अग्रसर है उनको विकासशील देश कहा जाता है।
- **मात्रात्मक प्रतिबन्ध** - विदेशी व्यापार पर मात्रा के आधार पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्ध।
- **तटकर** - किसी देश की सीमा पर वस्तुओं के व्यापार पर लगने वाला कर तटकर कहलाता है।
- **प्रतिस्पर्द्धा** - वस्तुओं एवं सेवाओं के मध्य बाजार में होने वाली प्रतियोगिता।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- | | | |
|-------------------------------|------------------------------|-------------------------|
| 1. 1 जनवरी 1995; दिसम्बर 1995 | 2. 36; 24 | 3. बौद्धिक सम्पदा |
| 4. 20 | 5. स्वास्थ्य; पादप स्वास्थ्य | 6. 15 |
| 7. 17.8 | 8. 76.3; 69.6 | 9. मात्रात्मक प्रतिबन्ध |
| 10. तटकर | | |

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- बरला एण्ड अग्रवाल (2008) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा संजय प्लेस आगरा।
- Economic Survey (2009-10) Oxford University Press (Minister of Finance Government of India) Jai singh Road New Delhi.
- दत्त एवं सुन्दरम् (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एण्ड क. लि. नई दिल्ली।
- जी. सी. सिंघई (2010) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- कुरुक्षेत्र, मासिक पत्रिका अंक 3 जनवरी 2007, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

11.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- मिश्रा एण्ड पुरी (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
- भारतीय अर्थव्यवस्था (2012) वार्षिकी प्रतियोगिता दर्पण, स्वदेशी बीमा नगर आगरा।
- दिनेश दीक्षित एण्ड एस. एस. अग्रवाल (2010) कृषि अर्थशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, अस्पताल मार्ग, आगरा।
- मिश्र जगदीश नारायण (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता अनुपम प्लाजा संजय प्लेस, आगरा।
- झिंगन एम. एस. (2009) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वृंदा पब्लिकेशनस प्रा. लि. आशीष कम्पलेक्स, मयूरविहार फेस-1, दिल्ली-91

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन द्वारा कृषि समझौते की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?
2. भारतीय कृषि पर पड़ने वाले विश्व व्यापार संगठन के प्रतिकूलात्मक प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
3. विश्व व्यापार संगठन के भारतीय कृषि पर पड़ने वाले सुधारात्मक प्रभावों की विवेचना कीजिए।
4. विश्व व्यापार संगठन की नीतियों का भारतीय कृषि उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 12- उदारीकरण का घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय कृषि व्यापार पर प्रभाव (Impact of Liberalization on Domestic and International Trade)

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 उदारीकरण एवं भारतीय कृषि नीतियाँ
- 12.4 उदारीकरण का कृषि व्यापार पर प्रभाव
- 12.5 विदेशी व्यापार नीति एवं कृषि व्यापार
 - 12.5.1 उदारीकरण सम्बन्धी कृषि व्यापार की समस्याएँ
- 12.6 अभ्यास प्रश्न
- 12.7 सारांश
- 12.8 शब्दावली
- 12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपको यह समझाने का प्रयास किया गया है कि भारत की उदारीकरण की नीति कृषि वस्तुओं के न केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है बल्कि घरेलू व्यापार के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है। भारत सरकार द्वारा नब्बे के दशक में अपनाये गये आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उदारीकरण की नीति में मौद्रिक तथा गैर मौद्रिक सुधार किये जिनका भारतीय कृषि के विदेशी व्यापार पर अनेक दिशाओं में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। भारत सरकार की विदेश व्यापार नीतियों में भी कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार को स्थान में रखा गया है।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद भली भांति समझ सकेंगे कि -

- ✓ भारतीय कृषि व्यापार के सम्बन्ध में उदारीकरण की क्या प्रासंगिकता है?
- ✓ उदारीकरण स्तर के साथ-साथ कृषि का घरेलू तथा विदेशी व्यापार किस रूप में परिवर्तित हुआ है ?
- ✓ उदारीकरण की नीति का भारतीय कृषि के घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की क्या प्रकृति है तथा इससे भारतीय कृषि व्यापार किस दिशा की ओर परिवर्तित हुआ है?
- ✓ इसके साथ आप यह भी समझ सकेंगे कि विदेशी व्यापार नीति उदारीकरण से कहां तक प्रभावित है जो कृषि व्यापार से किस सीमा तक सम्बन्ध रखती है?
- ✓ प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशा एवं आकार पर क्या प्रभाव पड़ा है?

12.3 उदारीकरण एवं भारतीय कृषि नीतियाँ

पिछली इकाई के अन्तर्गत आपने विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करके आर्थिक सुधारों की पृष्ठभूमि को भलीभांति समझ लिया होगा। आर्थिक गतिविधियों के नियमन के लिए बनाए गये नियम कानून ही भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग रूपों में नकारात्मक रूप से प्रभावित करने लगे। इन नकारात्मक प्रभावों को दूर करने के लिए उदारीकरण की नीति का सहारा लिया गया। आर्थिक गतिविधियों के नियमन से प्रभावित होने वाले अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में कृषि तथा कृषि वस्तुओं का व्यापार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कृषि तथा कृषि व्यापार को प्रभावित करने वाली नीतियाँ उदारीकरण की प्रक्रिया द्वारा पूर्णरूप से प्रभावित पायी गयी जिसके द्वारा भारतीय कृषि व्यापार को अनेक रूपों में प्रभावित किया गया।

आपको यहां अवगत कराना अत्यन्त आवश्यक होगा कि उदारीकरण का वित्तीय, मौद्रिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में जो भी प्रभाव पड़ा उसका कृषि पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभाव अवश्य ही डाला गया। औद्योगिक क्षेत्र में अपनाये जाने वाले उदारीकरण की प्रक्रिया का भी कृषि व्यापार की दिशा एवं दशा दोनों पर ही गहरा प्रभाव पड़ा। कृषि नीतियों का निर्धारण भी उदारीकरण को केन्द्र बिन्दु मानकर किया गया जिसमें भारतीय किसान तथा कृषि व्यवस्था को परिवर्तित करने का प्रयास किया गया।

देश में बीजों की आसान उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा धान व गेहूँ के बीजों के आयात की सशर्त मंजूरी जुलाई 2011 में प्रदान की। धान व गेहूँ के बीजों का आयात, सरकारी प्राधिकरणों के साथ-साथ निजी क्षेत्र की कम्पनियों द्वारा भी किए जाने की अनुमति दी गयी। कृषि मन्त्रालय द्वारा फिलहाल यह अनुमति दो वर्षों के लिए दी गयी। 1988 में राष्ट्रीय बीज विकास नीति लागू किए जाने के पश्चात् मोटे अनाजों, दालों, सब्जियों तथा फूलों आदि के बीजों के आयात की अनुमति समय-समय पर दी गयी। लेकिन गेहूँ तथा धान के बीजों के आयात की अनुमति सरकार द्वारा प्रथम बार प्रदान की गयी है। उदारीकरण के एक अन्य प्रभाव को इसी क्षेत्र में इस प्रकार भी देखा जा सकता है कि सितम्बर 2011 में सरकार द्वारा गेहूँ तथा गैर बासमती चावल के निर्यात पर से प्रतिबन्ध हटाने का निर्णय लिया जो भारतीय कृषि व्यापार की दिशा में एक सार्थक कदम कहा गया है। इसके साथ ही जिंसों के निर्यात की सीमाएं (20-20 लाख टन) भी सरकार द्वारा तय की गयी हैं। दोनों ही जिंसों का यह निर्यात ओपन जनरल लाइसेंस (Open General License) के तहत किए जाने की व्यवस्था की गयी। आपको ज्ञात हो कि गेहूँ के निर्यात पर यह प्रतिबन्ध वर्ष 2008 में आरोपित किया था। बीच में कुछ विशेष अवसरों पर ही सशर्त निर्यात की अनुमति दी गयी थी।

राष्ट्रीय कृषि नीति-2007

भारत सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उदारीकरण की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए 26 नवम्बर, 2007 को राष्ट्रीय कृषि नीति-2007 को संसद में प्रस्तुत किया गया। राष्ट्रीय किसान आयोग द्वारा अपनी सिफारिशों में नई कृषि नीति को घोषित करने की अनुशंसा की गयी। नई राष्ट्रीय कृषि नीति-2007 में कृषि उत्पादकता में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि, किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार, कृषि में नवीन प्रौद्योगिकी का प्रयोग एवं सिंचाई सुविधाओं के विकास के साथ कृषि वस्तुओं के निर्यात पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया। नवीन कृषि नीति की मुख्य बातों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

राष्ट्रीय कृषि नीति-2007 में कृषि क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी बनाने के साथ लाभदायक रोजगार के साधन के रूप में विकसित करने की रणनीति तय की गयी, इसके साथ भूमि सुधारों के अधरे पड़े मुद्दों को पूरा करने के लिए तथा कृषि योग्य भूमि के गैर कृषि उपयोग में कमी लाने पर जोर दिया गया। इस नीति में किसानों के लिए एक ऐसी व्यवस्था विकसित करने पर जोर दिया गया जिसके द्वारा किसानों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान हो सके तथा किसान परिवारों को गैर कृषि कार्यों में रोजगार उपलब्ध कराने की व्यवस्था को शामिल किया गया। इसके साथ नई कृषि नीति में ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के संसाधनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए कृषि क्षेत्र में स्नातक की उपाधि धारकों को उद्यम बनाने की पहल करने अथवा रणनीति सृजित करने पर जोर दिया गया।

राष्ट्रीय कृषि नीति-2007 के अन्तर्गत वैश्विक प्रभावों से कृषि को सुरक्षित करने के लिए फसलों के उचित मूल्य नीति निर्धारित करने की बात कही गयी तथा किसानों की आय बढ़ाने के लिए व्यापारिक क्षेत्र को विस्तारित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके अन्तर्गत किसानों को नये रूप में परिभाषित किया गया जिसके अन्तर्गत कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र में काम करने वाले ग्रामीणों को भी किसान की परिभाषा में शामिल किया गया। परम्परागत खेती के स्थान पर जैवित खेती को भी महत्व दिया गया तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित (genetically modified) बीजों के बढ़ावे पर जोर दिया गया। नई राष्ट्रीय कृषि नीति में छोटी जोत वाले किसानों को ठेके पर खेती देने तथा किसान कम्पनियाँ बनाने की बात कही गयी जिससे किसानों को लाभदायक व्यवसाय

उपलब्ध हो सके। इसके साथ कृषि साख को सुलभ, सुगम तथा सस्ते दरों पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जिसके अन्तर्गत किसानों की ऋण ग्रस्तता पर कोई भी टिप्पणी नहीं की गयी है लेकिन किसानों की ऋण ग्रस्तता को लेकर भविष्य में सरकार द्वारा गतिशील कार्यक्रम प्रारम्भ करने की व्यवस्था को शामिल किया गया है। यह नीति कृषि क्षेत्र विशेषतः कृषि अनुसंधान में सार्वजनिक निवेश को बढ़ावे पर जोर देती है इसके लिए मृदा परीक्षण केन्द्र तथा नये शोध बीज केन्द्र को अधिक से अधिक खोलने पर भी ध्यान देती है। इस नीति के अन्तर्गत कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र के विकास दर का लक्ष्य 4 प्रतिशत से 4.5 प्रतिशत के बीच रखा गया है। कृषि नीति में किसानों को उचित कीमत पर उर्वरक तथा कृषि आगत उपलब्ध कराने की आवश्यकता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। वस्तु के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि या कमी को रोकने तथा उसमें जोखिमों से बचने के लिए भावी बाजारों के सीमा क्षेत्र को बढ़ाने की घोषणा सरकार द्वारा की गयी। इस नीति के अन्तर्गत यह भी ध्यान दिया गया कि खाद्य व्यवस्था की समुचित सुरक्षा की जाए जिसके अन्तर्गत अगस्त 2007 में गठित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को प्रभावी बनाने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

उक्त राष्ट्रीय कृषि नीति पर ध्यान देने के बाद आप देखेंगे कि इस नीति के कुछ विन्दुओं को सीधे तौर पर उदारीकरण के माध्यम से विदेशी व्यापार से जोड़ा गया है तथा घरेलू व्यापार को बढ़ावा देने एवं उसे संरक्षित करने के लिए भी आवश्यक व्यवस्था पर जोर दिया गया है। उदारीकरण के परीणामस्वरूप विदेशी खासकर विकसित देशों की किसान विरोधी नीतियों के पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों से किसानों के बचाव पर ही ध्यान दिया गया है। इस कृषि नीति में भविष्य में उदारीकरण के उपकरणों एवं नतीजों के प्रति सचेत रहकर उनका सामना करने के लिए कार्यनीति पर भी इशारा किया गया है।

12.4 उदारीकरण का कृषि व्यापार पर प्रभाव

विशेष आर्थिक क्षेत्रों के अन्तर्गत कृषि तथा बागवानी सम्बन्धी इकाईयाँ स्थापित करने पर जोर दिया गया है। इन इकाईयों को यह भी छूट प्रदान की गयी है कि आगते तथा अन्य सामग्री घरेलू व्यापार क्षेत्र के संविदा कृषकों को प्रदान करें। ये आगते तथा उत्पादन का स्वरूप आयातकर्ता देश की आवश्यकता पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया तथा व्यवस्था का लाभ कृषक तथा कृषि व्यापारियों को घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने में मिलेगा।

कृषि वस्तुओं के व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर मेला लगाने की व्यवस्था की जिसमें बैट का सामान, जड़ी बूटियाँ, मसाले, वागवानी, जैविक खाद्य उत्पाद, हस्तशिल्प को विशेष महत्व दिया जाता है। सरस नाम के इस मेले में घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि वस्तुओं के सौदे किये जाते हैं।

आपको यह भी बताना अत्यन्त आवश्यक समझा जाएगा कि कृषि वस्तुओं की विदेशी व्यापार तथा घरेलू व्यापार में प्रतिभंगिता बढ़ाने के लिए भारतीय किसानों को भी अच्छी किस्म तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन करने का प्रोत्साहन देने की अति आवश्यकता है। इन मेलों के माध्यम से इस कार्य को अत्यन्त सरल बनाया गया है। इन सरस मेलों का आयोजन दिल्ली, हैदराबाद, भुवनेश्वर, गुहावटी तथा जयपुर आदि में आयोजित किये गए।

उदारीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में देखना होगा कि वर्ष 2000-2001 में कृषि तथा सम्बद्ध वस्तुओं का नियति में हिस्सा 14 प्रतिशत था जो

2008-09 (अप्रैल-दिसम्बर) में घटकर 10.6 प्रतिशत ही रह गया। इसी सम्बन्ध में देखना होगा कि वर्ष 2007-08 में कृषि और सम्बद्ध उत्पादों का निर्यात 76006 करोड़ रूपए था जो वर्ष 2008-09 (अप्रैल-दिसम्बर) में 62150 करोड़ रूपए ही रहा।

आयातों के संदर्भ में खाद्य पदार्थ और सम्बन्धित उत्पाद का आयात वर्ष 2006-07 में 2.9 प्रतिशत था जो वर्ष 2008-09 (अप्रैल-दिसम्बर) में बढ़कर 11.4 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा किए गए तमाम निर्यात मूलक प्रयासों तथा अनेक प्रकार की रियायतों के बाद भी उदारीकरण का लाभ व्यापारियों ने कृषि वस्तुओं का आयात करके उठाया। उक्त आकड़ों के आधार पर उदारीकरण की नीति का लाभ भारतीय किसान तथा कृषि निर्यात न लेकर विकसित देश तथा आयातक व्यापारी ही ले सके।

भारत सरकार द्वारा उदारीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत ही कृषि के आन्तरिक / घरेलू व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों (Special Economic Zones) की स्थापना की राह को अपनाया। विशेष आर्थिक क्षेत्र (एस.ई.जेड) देश की घरेलू सीमा के अन्तर्गत एक ऐसा क्षेत्र है जो पूर्णतः शुल्क मुक्त है, जिसे व्यापार संचालन, शुल्क तथा प्रशुल्कों की दृष्टि में आने वाली किसी भी वस्तु पर किसी भी प्रकार का शुल्क देय नहीं होता है, भले ही वह घरेलू व्यापारिक क्षेत्र से ही क्यों न प्राप्त की गयी हो या अन्य किसी देश से आयात की गयी हो। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के माध्यम से कृषि वस्तुओं के घरेलू एवं विदेशी व्यापार को विशेष महत्व दिया गया है।

उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत इस योजना के व्यापार सम्बर्द्धन हेतु निम्न प्रकार की रियायतें / छूट देने की व्यवस्था की गयी है। विशेष आर्थिक क्षेत्र इकाईयों को घरेलू व्यापार क्षेत्र से कच्चे माल, उपकरणों, उपयोग वस्तुओं आदि की प्राप्ति बिना किसी लाइसेंस या विशेष अनुमति के सम्भव होती है। निर्यात आय तथा इसकी विदेशों में निवेश सम्बन्धी छूट भी दी गयी। मूल्य सहित चुंगीकर, मण्डीशुल्क तथा स्टाम्प ड्यूटी की छूट भी की गयी है।

12.5 विदेशी व्यापार नीति एवं कृषि व्यापार

वर्ष 2002-2007 की पंचवर्षीय निर्यात नीति में जिस व्यापक पैकेज की घोषणा की गयी उसी में विशेष आर्थिक क्षेत्रों और कृषि निर्यात क्षेत्रों को बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया था। निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों को नया रूप दिया गया था। इससे कृषि वस्तुओं के निर्यात में अच्छी सफलता मिली। उदारीकरण की नीति में व्यापार सम्बन्धी नियमों एवं कानूनों को अत्यन्त सरल बनाया गया जिससे व्यापारियों का ध्यान कृषि उत्पादन की ओर गया। सरकार द्वारा कृषि निर्यात क्षेत्रों की स्थापना की ओर अग्रसर है। कृषि और सम्बन्धित उत्पादों का निर्यात वर्ष 2004-05 में कुल निर्यात का 16.8 प्रतिशत था, जो 2005-06 में बढ़कर 17.4 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी। विदेशी व्यापार नीति 2004-09 के अन्तर्गत निर्यात को रोजगारपरक बनाने के लिए पाँच परम्परागत निर्यातों में कृषि के निर्यात पर विशेष ध्यान दिया गया तथा कृषिगत उपजों के निर्यात सम्बर्द्धन हेतु 'विशेष कृषि उपज योजना' प्रारम्भ की गयी।

आप ध्यान देंगे कि विदेश व्यापार नीति 2009-14 के अंतर्गत पूर्वी राज्यों के बागवानी उत्पादों को फोकस उत्पाद योजना का लाभ दिया गया तथा चाय निर्यातकों को मूल्य बर्द्धन की शर्तों को उदार बनाया गया

इसके साथ जल्दी खराब होने वाली कृषि उपजों के लिए एकल खिड़की व्यवस्था को मंजूरी दी गयी जिसका कृषि के विदेशी व्यापार पर अनुकूल प्रभाव पड़ा।

आर्थिक उदारीकरण के सम्बन्ध में वर्ष 2003 में भारत सरकार द्वारा APMC कानून 1954, में आवश्यक संशोधित किया जिसके अन्तर्गत किसानों को अपनी उपज को सीधे बाजार में बेचने की व्यवस्था की गयी तथा खाद्य पदार्थों के घरेलू व्यापार बाधाओं का दूर करने का प्रावधान किया गया। भारत में कृषि राज्य सरकारों की विषय वस्तु में आता है। जिसके कारण राज्यों को इस प्रावधान को अपनाने में कठिनाईयाँ हुई। भारत में आन्ध्रप्रदेश में इस दिशा में महत्वपूर्ण व्यवस्था की गयी जिसमें 'रैयत बाजार' की स्थापना की गयी जिसके अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के घरेलू बाजार का विस्तार हुआ तथा घरेलू बाजार में आने वाली समस्याओं को दूर किया गया। ई-चौपाल के माध्यम से भी कृषि वस्तुओं के व्यापार को विस्तृत किया गया। इस ई-चौपाल व्यवस्था के माध्यम से किसानों को अपना उत्पादन इन्टरनेट के माध्यम से विक्रय करने का अवसर प्राप्त हो सका। यह माल इन्टरनेट के द्वारा सुपार बाजार में बेचना सम्भव हुआ। भारत के नौ राज्यों में 40 लाख किसान इस व्यवस्था का लाभ लेकर कृषि बाजार में संलग्न हैं।

उदारीकरण का भारतीय कृषि व्यापार पर एक अन्य प्रभाव यह भी पाया गया कि भारतीय कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा निगमों को प्रवेश देने की व्यवस्था की गयी। वर्तमान में रिटेल क्षेत्र में विदेशी निवेश की मंजूरी की व्यवस्था के कारण भारतीय कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा बाहरी व्यापार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दबाव होगा लेकिन यह दबाव किस रूप एवं दिशा में होगा यह किसानों की सोच तथा अर्थव्यवस्था में होने वाले स्वाभाविक परिवर्तनों पर निर्भर करेगा।

भारतीय कृषि के व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव का आंकलन आप इस तथ्य के आधार पर भी लगा सकते हैं कि वर्ष 2012 में भारत विश्व का सबसे बड़ा चावल निर्यातक देश बन गया है। वर्ष 2012 में 97.5 लाख टन चावल का निर्यात हमारे देश द्वारा विदेशों को किया गया है। वर्ष 2011 में भारत चावल के निर्यात करने में तीसरे स्थान पर रहा था। थाइलैण्ड 1.06 करोड़ टन चावल का निर्यात करके पहले स्थान पर था।

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत कृषि को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्वपूर्ण स्तर पर लाने के लिए अनेक कृषि सम्बन्धी कार्यक्रमों/योजनाओं की शुरुआत की जिनका कृषि उत्पादन पर अनुकूल तथा वांछित प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा विदेशी व्यापार में वृद्धि सम्भव हो सकी। इस प्रयास के अन्तर्गत वर्ष 2011-12 में कुल खाद्यान्न उत्पादन 252.56 मिलियन टन के रिकार्ड स्तर पर अनुमानित किया गया। वर्ष 2011-12 में गेहूँ का उत्पादन 90.23 मिलियन टन के रिकार्ड स्तर पर रहा। खाद्यान्नों के उत्पादन में भले ही भारत ने आत्मनिर्भरता प्राप्त की है तथा विदेशी व्यापार में सहभागिता का स्तर निम्न हो लेकिन यह आत्मनिर्भरता खाद्यान्नों के घरेलू व्यापार के विस्तार के कारण ही सम्भव बनी रह सकी है। खाद्यान्नों का उत्पादन भारत के सभी राज्यों में उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हो सका है।

खाद्यान्नों के रिकार्ड उत्पादन भी रिकार्ड स्तर पर पाया गया। इस वर्ष देश में फलों व सब्जियों का कुल उत्पादन 240 मिलियन टन से अधिक रहा है। उत्पादन में वृद्धि के कारण ही इनके निर्यात में वृद्धि दर्ज की गयी। फलों व सब्जियों के निर्यात से 1400 करोड़ रूपए की विदेशी मुद्रा सन्दर्भित वर्ष (2011-12) में अर्जित की गई है। फलों व सब्जियों के रिकॉर्ड उत्पादन से इनकी प्रति व्यक्ति उपलब्धता में भी वृद्धि हुई है। 12वीं पंचवर्षीय योजना

में शीतगृहों की अतिरिक्त क्षमता सृजन का लक्ष्य 15 मिलियन टन का है, जो 11वीं पंचवर्षीय योजना में 8.75 मिलियन टन का था। कोल्ड चेन को बढ़ावा देने के लिए 'नेशनल सेंटर फॉर कोल्ड चेन डेवलपमेंट' (National Center for Cold Chain Development - NCCD) की स्थापना का फैसला लिया है। देश में बागवानी उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए चालू वर्ष 2012 को बागवानी वर्ष (Year of Horticulture) घोषित किया गया।

कृषि के आन्तरिक व्यापार को सुदृढ़ करने हेतु वर्ष 2011-12 की खरीफ की उपजों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimum Support Price) की घोषणा सरकार ने 9 जून, 2011 को की थी इनमें सामान्य किस्म के धान को न्यूनतम समर्थन मूल्य 80 रूपए प्रति क्विंटल बढ़ाते हुए यह 1080 रूपए प्रति क्विंटल घोषित किया गया। उसी प्रकार से 'ए' श्रेणी के धान में भी 80 रूपए प्रति क्विंटल की वृद्धि सरकार ने की तथा यह 1030 रूपए प्रति क्विंटल इस वर्ष किया गया था। खरीफ की अन्य उपजों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में भी केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की आर्थिक मामलों की समिति की 9 जून, 2011 की बैठक में लिए फैसले के तहत की गई। इनमें सर्वाधिक 400-400 रूपए प्रति क्विंटल की वृद्धि उड़द व मूँगफली के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में की गई। उड़द का मूल्य 2900 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर न्यूनतम समर्थन मूल्य 3300 रूपए प्रति क्विंटल तथा मूँगफली (छिलके सहित) के मामले में यह 2300 रूपए से बढ़ाकर 2700 रूपए प्रति क्विंटल किया गया था। अन्य उपजों में अरहर का न्यूनतम समर्थन मूल्य 3000 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 3200 रूपए प्रति क्विंटल तथा मूँग के मामले में यह 3170 रूपए से बढ़ाकर 3500 रूपए प्रति क्विंटल किया गया। इसी क्रम में सोयाबीन के न्यूनतम मूल्य में 250-250 रूपए प्रति क्विंटल की वृद्धि इस वर्ष की गई तथा पीली सोयाबीन का समर्थन मूल्य 1440 रूपए से बढ़ाकर 1690 रूपए तथा काली सोयाबीन का मूल्य 1400 रूपए से बढ़ाकर 1650 रूपए प्रति क्विंटल घोषित किया गया। कपास-मीडियम स्टेपल व लाँग स्टेपल के न्यूनतम समर्थन मूल्य 2010-11 में क्रमशः 2500 रूपए व 3000 रूपए प्रति क्विंटल थे, जो इस वर्ष 2011-12 में क्रमशः 2800 रूपए व 3300 रूपए प्रति क्विंटल घोषित किए गए।

भारत सरकार ने कृषि के महत्व का स्वीकारते हुए वित्तीय वर्ष 2011-12 की रबी उपजों के लिए नए न्यूनतम समर्थन मूल्यों (Minimum Support Price) की घोषणा 25 अक्टूबर, 2011 को की, इन फसलों का विपणन 2012-13 में किया गया है। कृषिगत लागत एवं मूल्य आयोग (CACAP) के संस्तुतियों के आधार पर घोषित नए समर्थन मूल्यों में सर्वाधिक 700-700 रूपए प्रति क्विंटल की वृद्धि चना व सैफलावर के मामले में तथा सबसे कम 165 रूपए प्रति क्विंटल की वृद्धि गेहूँ के मामले में की गई है। गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1120 रूपए प्रति क्विंटल पिछले वर्ष था (बाद में 50 रूपए प्रति क्विंटल बोनस इस पर अलग से घोषित किया गया था) विपणन वर्ष 2012-13 के लिए गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1285 रूपए प्रति क्विंटल किया गया है, जबकि चना का समर्थन मूल्य 2100 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 2800 रूपए प्रति क्विंटल तथा सैफलावर के मामले में यह 1800 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 2500 रूपए प्रति क्विंटल किया गया है। इसी प्रकार रबी की अन्य उपजों में जौ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 780 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 980 रूपए प्रति क्विंटल किया गया तथा मसूर का 2250 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 2800 रूपए प्रति क्विंटल और सफेद सरसों/सरसों का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1850 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 2500 रूपए प्रति क्विंटल किया गया है।

चीनी वर्ष 2011-12 (अक्टूबर-सितम्बर) के लिए गन्ने के उचित लाभकारी मूल्य की घोषणा केन्द्र सरकार ने 16 मार्च, 2011 में की। यह मूल्य 145 रूपए प्रति क्विंटल घोषित किया गया था। 2010-11 में यह 139.12 रूपए प्रति क्विंटल था। गन्ने के लिए सरकार द्वारा घोषित यह मूल्य न्यूनतम देय मूल्य है, चीनी मिलें इससे अधिक मूल्य का भुगतान करने को स्वतन्त्र हैं। पेरार्ई सत्र 2010-11 में ही चीनी मिलें 210 रूपए प्रति क्विंटल की दर से भुगतान कर रही हैं।

आपको ज्ञात हो कि केन्द्र सरकार द्वारा गन्ने के लिए घोषित MSP गन्ने के लिए दिया जाने वाला न्यूनतम मूल्य होता है। चीनी मिलें इससे अधिक मूल्य के भुगतान के लिए स्वतन्त्र होती हैं। केन्द्र सरकार द्वारा गन्ने के सांविधिक न्यूनतम मूल्य (statutory minimum price) की घोषणा पूर्व वर्षों में की जाती थी तथा MMP के स्थान पर FRP का प्रावधान वर्ष 2010-11 से ही किया गया है, अधिकांश राज्यों में राज्य परामर्शित मूल्य (SAP) केन्द्र सरकार द्वारा घोषित एफआरपी से पहले ही काफी अधिक है इसलिए इस मूल्य से किसानों को कोई लाभ होने वाला नहीं है। FRP की उपयोगिता केन्द्र सरकार द्वारा मिलों से खरीदे जाने वाली चीनी के मूल्य के लिए हैं। चीनी के मूल्य का निर्धारण FRP के आधार पर किया जाता है।

उदारीकरण की प्रक्रिया के तहत भारत के खाद्य प्रसंस्करण के निर्यातों में वृद्धि हुई। आपको शायद ज्ञात हो कि आर्थिक सुधारों से पूर्व भारत के निर्यातों में खाद्य प्रसंस्करण की भूमिका अत्यन्त सीमित थी जो 1990-91 के बाद लगातार बढ़ती गयी। वर्ष 1990-91 में परिस्कृत खाद्यान्नों का निर्यात 10485.92 करोड़ रूपए था जो वर्ष 2001-02 में बढ़कर 13629.57 करोड़ रूपए हो गया। खाद्य पदार्थों के परिष्करण का निर्यातों में मूल्य वर्ष 2002-03 में बढ़कर 14600 करोड़ रूपए (अनुमानित) था। खाद्य परिसंस्कृत पदार्थों के निर्यात में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के अन्य परिस्कृत खाद्य पदार्थों से कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है।

12.5.1 उदारीकरण सम्बन्धी कृषि व्यापार की चुनौतियाँ

भारत सरकार द्वारा अपनायी गयी उदारीकरण की प्रक्रिया द्वारा कृषि वस्तुओं के व्यापार से सम्बन्धित अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उत्पन्न हुई जिनकी विवेचना निम्नवत् की जा सकती है।

कृषि संकट को बढ़ाने में 1991 में प्रारम्भ की गयी उदारीकरण की नीतियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस दौरान कृषि क्षेत्र की प्रमुख चिंताओं में गिरती उत्पादकता उच्च निवेश लागत, कम होता सार्वजनिक निवेश तथा कृषि आयातों में वृद्धि आदि मुख्य रूप से शामिल हैं। इसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र की औसत वार्षिक दर निरन्तर गिरती जा रही है। जिसका कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल दिशा में प्रभाव पड़ा है। भारतीय कृषि ने उदारीकरण से पूर्व दशक में 3 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की परन्तु उदारीकरण के बाद के दशक में भारतीय कृषि के सफल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर में निरन्तर कमी दर्ज की गयी। परिणाम स्वरूप कृषि वस्तुओं के निर्यात के भाग में आनुपातिक रूप से कमी आयी।

उदारीकरण से सम्बन्धित एक अन्य समस्या को इस रूप में भी रखा जा सकता है कि विकास के वर्तमान दौर में कृषि निर्यातों में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि नहीं हो पा रही तथा कृषि आयातों में अधिक वृद्धि के कारण कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार का संतुलन बिगड़ता जा रहा है, इसके साथ उदारीकरण से सम्बन्धित भूमिहीनता की समस्या लगातार सभी क्षेत्रों में बढ़ती जा रही है। उदारीकरण के अर्थव्यवस्था पर पड़ते प्रभावों के कारण भूमाफिया

तथा खनन माफियाओं के द्वारा कृषि योग्य भूमि पर लगातार अधिग्रहण किया जा रहा है जिससे छोटे तथा सीमान्त किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती जा रही है। आवास विकास, औद्योगिक क्षेत्र तथा विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना एवं विस्तार के कारण भी कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा भाग कृषि अयोग्य होता जा रहा है जिसका सकल कृषि उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। विज्ञान और पर्यावरण केंद्र (Center for Science and Environment) के एक प्रतिवेदन के अनुसार पिछले दो दशकों में 750000 एकड़ भूमि खनन के लिए तथा 250000 एकड़ भूमि औद्योगिक क्षेत्रों के लिए हस्तान्तरित कर चुकी है। सरकार द्वारा निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए स्थापित विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के लिए भूमि अधिग्रहण एक आधुनिक नवीन हथियार बना लिया गया है। भूमि संसाधनों की इस हड़प नीति के चलते ग्रामीण क्षेत्रों में संघर्ष, धरना प्रदर्शन, आत्मदाह तथा अदालती कार्यवाही के लिए ग्रामीणों को मजबूर होना पड़ता है, जिससे कृषि व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

12.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विशेष आर्थिक क्षेत्र की तीन विशेषताएँ बताइए?
2. उदारीकरण के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं के निर्यात में क्या परिवर्तन हुआ? संक्षेप में बताओ?
3. मण्डी शुल्क तथा तथा स्टाम्प ड्यूटी को किस क्षेत्र के अन्तर्गत हटाया जाता है?
4. विदेश व्यापार नीति 2009-14 में कृषि व्यापार किस दिशा में प्रयास किये गए?

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य तथा असत्य की पहचान कीजिए?

1. उदारीकरण के अन्तर्गत निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों को नया रूप दिया गया।
2. उदारीकरण में नियमों तथा कानूनों को सरल बनाया गया।
3. उदारीकरण के दौर में कृषि निर्यात में अप्रत्याशित सफलता मिली।

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त पूर्ति करो?

1. एकल खिड़की व्यवस्था का सम्बन्धसे है।
2. वर्ष 2002-07 की निर्यात नीति में की स्थापना की गयी।
3. उदारीकरण का कृषि केतथा व्यापार पर प्रभाव पड़ा।
4. कृषि और सम्बद्ध उत्पादों का निर्यात वर्ष 2002-08 में करोड़ रूपए रहा।
5. गेहूँ के निर्यात पर प्रतिबन्ध में आरोपित किया गया था।

12.7 सारांश

उदारीकरण की प्रक्रिया द्वारा भारत सरकार ने कृषि व्यापार को परिवर्तित करने का प्रयास किया। उदारीकरण के अन्तर्गत घरेलू तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धी कानूनों तथा नियमों में जो सुधार किये उनके द्वारा कृषि वस्तुओं का घरेलू तथा विदेशी व्यापार एक बड़ी सीमा तक प्रभावित हुआ है। उदारीकरण की प्रक्रिया द्वारा कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने का प्रयास किया लेकिन विकसित देशों की नीतियाँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की विपरीत परिस्थितियों के कारण कृषि वस्तुओं के आयात में निर्यात की अपेक्षा अत्यधिक वृद्धि दर्ज की गयी। कृषि वस्तुओं के आयात-निर्यात की मर्दों का अध्ययन करने से पता चलता है कि कृषि निर्यात

में अनुपातिक रूप से काफी कमी आयी है। भारतीय बाजार को पूर्णतः खुला करने तथा नियमों तथा प्रबन्धों में ढील देने के कारण भारतीय व्यापारियों ने कृषि का निर्यात करने की अपेक्षा आयात करने पर अत्यधिक जोर दिया। आयातों में वृद्धि तथा निर्यातों में आनुपातिक रूप से कमी के कारण कृषि के घरेलू व्यापार में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

कृषि वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का बनाने के कारण विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक हुई जिसका प्रयोग घरेलू तथा विदेशी व्यापार हेतु वस्तुओं के परिष्करण एवं शुद्धता के लिए किया गया। उदारीकरण की प्रक्रिया से उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में भी रियायतें दी गयी तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण पर अत्यधिक बल दिये जाने के कारण भी भारतीय व्यापारियों का ध्यान कृषि व्यापार की अपेक्षा विनिर्माण वस्तुओं पर अधिक दिया गया। जिसके कारण भारतीय कृषि के घरेलू तथा विदेशी व्यापार से सम्बन्धित अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उभरकर सामने आयी।

12.8 शब्दावली

उदारीकरण - आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत अपनायी गयी वह प्रक्रिया जिसमें अर्थव्यवस्था सम्बन्धी नियमों तथा कानूनों को ढीला करके अत्यधिक उदार बनाया गया।

आर्थिक सुधार - अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में आर्थिक कार्यकुशलता तथा उत्पादकता सम्बन्धी सुधारों को आर्थिक सुधार किया गया है जिसमें निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण को शामिल किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार - एक देश द्वारा विदेशों से वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीददारी एवं बिक्री करना ही उस वस्तुओं एवं सेवाओं का विदेशी व्यापार कहा जाता है।

घरेलू व्यापार - वस्तुओं एवं सेवाओं का अपने ही देश की सीमा के अन्दर क्रय व विक्रय करना घरेलू व्यापार कहा जाता है।

डब्ल्यू.टी.ओ. - इसे विश्व व्यापार संगठन के नाम से जाना जाता है यह विदेशी व्यापार पर निगरानी रखने वाली अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संस्था है।

न्यूनतम सर्भथन मूल्य - सरकार द्वारा कृषि वस्तुओं का वह निर्धारित मूल्य है जिससे नीचे मूल्यों पर कृषि उत्पादों या वस्तुओं का क्रय नहीं किया जाता है।

खाद्य प्रसंस्करण - यह वह प्रक्रिया है जिसमें कृषि उत्पाद को कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त करके उसे अधिक शुद्ध एवं उपयोग बनाया जाता है।

ओपन जनरल लाइसेंस - ओपन जनरल लाइसेंस प्रणाली के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात व निर्यात स्वतन्त्र रूप से करने की अनुमति दी जाती है।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य तथा असत्य की पहचान कीजिए?

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्तपूर्ति करो?

1. कृषि उपज
2. विशेष आर्थिक क्षेत्र
3. घरेलू-विदेशी
4. 76006
5. फरवरी 2007

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मिश्रा एण्ड पुरी (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।
- रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एण्ड कं. लि., नई दिल्ली।
- डॉ. सी.एस. बरला एवं डॉ. एच.एस. अग्रवाल (2008) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
- जी.सी. सिंघई (2008) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- जैन, महेन्द्र (सम्पादक) भारतीय अर्थव्यवस्था, वार्षिकी (2012) प्रतियोगिता दर्पण, स्वदेशी बीमानगर, आगरा।

12.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

- मिश्र, जगदीश नारायण (2008) भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल पब्लिकेशन्स दरियागंज, नई दिल्ली।
- (वार्षिक पत्रिका) समसामयिकी वार्षिकी 2012 प्रतियोगिता दर्पण, स्वदेशी बीमानगर, आगरा।
- डॉ. एल.एन. कोली (2008) भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मी नारायण पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदारीकरण के दौर में भारतीय कृषि नीतियों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?
2. उदारीकरण की नीति का भारतीय कृषि के घरेलू व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. उदारीकरण नीति का भारतीय कृषि के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव की अलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?
4. विदेशी व्यापार नीति का कृषि व्यापार से अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कीजिए?

इकाई 13- बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका (Role of Multinational Corporations)

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 बहुराष्ट्रीय निगम एवं कृषि क्षेत्र
 - 13.3.1 बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीय कृषि पर प्रभाव
 - 13.3.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की कृषि व्यापार में भूमिका
- 13.4 बहुराष्ट्रीय निगम एवं कृषि सम्बन्धी समस्याएँ
 - 13.4.1 बहुराष्ट्रीय निगमों की कृषि में प्रासंगिकता
- 13.5 अभ्यास प्रश्न
- 13.6 सारांश
- 13.7 शब्दावली
- 13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.10 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
- 13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप कृषि और बाह्य क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका की विवेचना से भली भांति परिचित हो सकेंगे। वर्तमान समय में विकसित देशों के साथ विकासशील देशों में भी बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका अलग-अलग क्षेत्रों में बढ़ती जा रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र भी इन निगमों की भूमिका से अछूता नहीं रह गया है। ये निगम भारतीय कृषि को भी अनेक पक्षों से प्रभावित कर रहे हैं।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप इन बहुराष्ट्रीय निगमों की अवधारणा समझने के साथ भारतीय कृषि व्यवस्था पर पड़ने वाले अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभावों के अध्ययन के साथ कृषि के आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार की दिशा एवं प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन कर सकेंगे। भारतीय कृषि के आन्तरिक तथा बाहरी दोनों ही क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका अलग-अलग समयावधियों एवं सरकार की रणनीतियों के तहत बदलती रहती है। भारत में आजादी के बाद कृषि व्यापार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनका भारतीय अर्थव्यवस्था पर अनेक रूपों में प्रभाव पड़ा। बहुराष्ट्रीय निगमों के आगमन के पूर्व भारतीय कृषि विदेशी व्यापार भारत सरकार के पूर्ण नियन्त्रण में था तथा आन्तरिक व्यापार में सरकार तथा स्थानीय व्यापारियों की संयुक्त भूमिका थी। इन निगमों के आगमन से भारतीय कृषि का आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार एक अलग परिदृश्य में परिलक्षित हुआ तथा सरकार की जिम्मेदारी एवं नियन्त्रण काफी कम हो गया।

ये निगम न केवल कृषि व्यवस्था को प्रभावित करते हैं बल्कि कृषि को संस्थागत रूप से भी विकसित देशों के हितों की ओर मोड़ने के लिए प्रयासरत है। भारतीय कृषि संसाधनों का पूर्ण प्रयोग करने के लिए बहुराष्ट्रीय निगम किसी भी सीमा तक कार्य करने के लिए तत्पर हैं।

13.2. उद्देश्य

- ✓ प्रस्तुत इकाई अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे कि
- ✓ बहुराष्ट्रीय निगम क्या है? तथा इसके क्या कार्यक्षेत्र हैं? कृषि के आन्तरिक तथा बाह्य क्षेत्र के विकास एवं विस्तार के लिए इनकी क्या उपयोगिता है?
- ✓ बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय कृषि के लिए भूमिका अपेक्षित है या केवल अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के सन्दर्भ में इनकी प्रासंगिता स्वीकार की गयी है।
- ✓ क्या बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय कृषि के लिए भूमिका अपेक्षित है या केवल अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के सन्दर्भ में इनकी प्रासंगिता स्वीकार की गयी है।
- ✓ क्या बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय कृषि के अन्तरिक रूप से प्रभावित करते हैं या बाहरी क्षेत्र को भी प्रभावित करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं?
- ✓ क्या ये निगम भारतीय कृषि के आन्तरिक व बाहरी क्षेत्र को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित कर रहे हैं? क्या इन निगमों की भूमिका भी संदिग्ध हो सकती है?
- ✓ भविष्य में भारतीय कृषि क्षेत्र के लिए इन निगमों की क्या प्रासंगिकता बनी रहेगी?

13.3 बहुराष्ट्रीय निगम एवं कृषि क्षेत्र

बहुराष्ट्रीय निगमों तथा कृषि क्षेत्र के मध्य संबंधों को जानने से पहले आपको इन बहुराष्ट्रीय निगमों को समझना आवश्यक है। सामान्य रूप से आपको बताना होगा कि बहुराष्ट्रीय निगम एक कम्पनी या उद्योग का वह स्वरूप है जिसका कार्यक्षेत्र अनेक राष्ट्रों में फैला होता है तथा इनका विशाल आकार होता है। इन निगमों को समझने के लिए निम्न परिभाषा का सहारा लिया जा सकता है। जो निम्न प्रकार दी गयी है।

संजयलाल तथा स्ट्रीटन ने बहुराष्ट्रीय निगमों को इस प्रकार से परिभाषित किया है कि “एक विशिष्ट बहुराष्ट्रीय निगम वह है जिसमें 100 मिलियन डालर से कई हजार मिलियन डालर तक शुद्ध बिक्री होती है। इसके विनिर्माण में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश होता है जो सामान्यतः कम्पनी के निवेश का 15 से 20 प्रतिशत तक होता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से तात्पर्य है- विदेशी उद्यम की शेयर पूंजी का कम से कम 25 प्रतिशत भागीदार होना।”

इन्होंने निगमों को और स्पष्ट करने हुए बताया कि बहुराष्ट्रीय निगम बहुत विशाल आकर वाली फर्म होती हैं तथा इनका कार्यक्षेत्र काफी दूर-दूर तक फैला होता है तथा इनका स्तर अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति का होता है। पाँच से अधिक विदेशी सहायक फर्म विदेशों में उत्पन्न की गयी कुल बिक्री का 15 प्रतिशत उत्पादन करती है। ये निगम अधिकतम उत्पादन तथा अधिकतम लाभ पाने के उद्देश्य से एकात्मक प्रयासों को अन्तिम रूप प्रदान करती हैं। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अन्तर्गत इन निगमों ने उद्योग तथा सेवा क्षेत्रों में अपने प्रभाव को छोड़ने के साथ भारतीय कृषि के आन्तरिक तथा बाहरी व्यापार को प्रभावित करने पर ध्यान केन्द्रित किया। इन निगमों ने कृषि को भी वैश्वीकरण के दायरे में लाकर विकसित देशों के लिए अत्यधिक लाभ दिलाने का प्रयास किया है।

13.3.1 बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीय कृषि पर प्रभाव

शायद आपने ध्यान दिया हो कि सन् नब्बे के दशक में प्रारम्भ किए गए आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के साथ-साथ विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं के साथ सम्बन्धों में अधिक निकटता दिखाई गयी जिसके परिणामस्वरूप विकसित अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ता एवं स्थिरता बनने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का सहारा मिला।

आपको यह पता होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अलग स्थान है जिसको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसके साथ भारतीय कृषि व्यवस्था के स्थिर संसाधनों के कुशलतम व इष्टतम प्रयोग के लिए उचित तकनीकी व पर्याप्त पूंजी व प्रबन्ध तन्त्र की अत्यन्त आवश्यकता रही है। भारतीय कृषि में विकसित देशों द्वारा हस्तक्षेप करके अपनी अर्थव्यवस्थाओं को एक नई दिशा देने के लिए सदैव प्रयास किये गए। इन सभी प्रयासों के अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से भारतीय कृषि का प्रयोग विकसित अर्थव्यवस्थाओं के हित में किया जाता है। इसके दूसरे पक्ष को देखें तो भारतीय अर्थव्यवस्था को पर्याप्त पूंजी, व्यवस्था तथा आवश्यक तकनीकी सहजता के साथ उपलब्ध हो जाती है।

बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय कृषि के संबन्ध में भूमिका के पहलू पर अलग-अलग विद्वानों द्वारा अलग-अलग मत व्यक्त किए गए हैं। भूमण्डलीकरण को बढ़ावा देने के लिए तथा विदेशी निवेश के स्वतन्त्र प्रवाह को बढ़ावा देने के लिए नई औद्योगिक नीति में उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में 51 प्रतिशत की इक्विटी आने की

अनुमति प्रदान की गयी। इसके माध्यम से बहुराष्ट्रीय निगमों के भारत में आने का मार्ग प्रशस्त हुआ। विदेशी पूंजी के भारत में आगमन से नई उच्च तकनीकी, बाजार पर पकड़ बनाने की विशेषज्ञता तथा उत्पादन एवं वितरण कार्य में लगी कुछ फर्मों के साथ सम्पर्क बढ़ा जिसका प्रभाव भारतीय कृषि क्षेत्र पर सकारात्मक रूप में पड़ा।

आपको शायद ज्ञात हो कि भारतीय कृषि पिछले कई दशकों से कृषि आदानों की समय से आपूर्ति, कृषि वित्त तथा बाजार संबन्धी अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करती रही है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के लगातार सुधारात्मक प्रयासों के बावजूद भी किसान की तरक्की का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में सरकारी प्रयासों एवं तकनीकी ज्ञान को किसान तक पहुँचाने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सहायता की गयी। बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा वित्त एवं बाजार तथा तकनीकी साधनों की उपलब्धता का लाभ भारतीय कृषि को मिला जिसका कृषि कार्य की पद्धति तथा उत्पादन आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। यहां पर यह भी आपको बताना अत्यन्त आवश्यक होगा कि इन बहुराष्ट्रीय निगमों की उच्च गुणवत्ता तथा नवीन उपकरणों की खोज का भारतीय कृषि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। कृषि मशीनों, ट्रैक्टर, ट्रिलर, बुवाई एवं गुड़ाई की आधुनिक मशीनें, श्रैसर, कम्बाइन की पर्याप्त आपूर्ति किसानों के लिए समयानुसार की जा सकी जिसके द्वारा कृषि कार्य की काफी समस्याओं का समाधान संभव हो सका। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक दवाओं के उत्पादन एवं वितरण में बहुराष्ट्रीय निगमों की अत्यधिक भूमिका के कारण किसानों को पूरा लाभ प्राप्त हो सका। इन निगमों द्वारा नवीन उपज की प्रजातियों की खोज विकास किए जाने का लाभ भी भारतीय कृषि पर अनुकूल रूप में प्राप्त हो सका।

बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीय कृषि पर संस्थागत रूप से भी प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। भारत सरकार द्वारा जोतों के लगातार छोटा होने तथा जोतों संबन्धी अनेक प्रकार के विवादों के कारण कृषि विविधीकरण योजना के अन्तर्गत संविदा खेती को वैधानिक रूप प्रदान किया जिसके अन्तर्गत कुछ कृषि उत्पादों (टमाटर, चावल, सब्जियां तथा फल उत्पादन) के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश को भी इजाजत दी गयी। इसके अन्तर्गत कृषि आगत एवं प्रौद्योगिकी को इन निगमों द्वारा उपलब्ध कराया गया तथा उत्पादन को पूर्व निर्धारित मूल्य पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा क्रय किया गया। इस प्रकार की खेती के अन्तर्गत कृषि भूमि तथा आवश्यक संसाधनों का कुशलता के साथ प्रयोग सम्भव हो सका जिसका कृषि उत्पादन पर वृद्धि के रूप में प्रभाव पड़ा। भारतीय समाज व्यवस्था में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों के कारण कृषि वस्तुओं की माँग में निरन्तर तथा नवीनता के साथ वृद्धि हुई है।

शायद आपको ज्ञात होगा कि बहुत से कृषि उत्पादों का उपभोग सीधे प्रत्यक्ष रूप से न होकर उनका प्रसंस्करण तथा परिष्करण करने के साथ किया जाता है जिसके लिए कृषि आधारित उद्योगों की आवश्यकता पायी गयी। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा इस कार्य क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता हांसिल की है। कृषि पदार्थों के प्रसंस्करण के कारण जैम, जैली, अचार, मुरब्बा, चटनी तथा फास्ट फूड के उपभोग में काफी वृद्धि हुई जिसके कारण कृषि वस्तुओं की माँग में वृद्धि हुई। सब्जियों एवं फलों को संरक्षित किए जाने के लिए भी इन निगमों की सहायता ली गयी है जिससे कृषि में निवेश की संभावनाएं बढ़ी हैं।

13.3.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की कृषि व्यापार में भूमिका

बहुराष्ट्रीय निगमों का अर्थ तथा कार्य प्रणाली संबन्धी तथ्यों का अध्ययन करने के बाद आप बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय कृषि व्यवस्था तथा तकनीकी ज्ञान सम्बन्धी विवेचना से इन निगमों की कृषि क्षेत्र से सम्बद्धता को भली-भांति समझ गये होंगे। इन निगमों की भारतीय कृषि में भूमिका को केवल कृषि व्यवस्था तथा उत्पादन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। कृषि वस्तुओं के विदेशी तथा आन्तरिक व्यापार के सम्बन्ध में भी इन निगमों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। भारत में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि व्यापार को अनेक दिशाओं में प्रभावित किया गया है। बाजार में कृषि वस्तुओं की माँग बढ़ाना तथा बाजार में किसानों एवं उत्पादकों के लिए पर्याप्त वातावरण पैदा करना जैसे सुविधाएँ इन निगमों द्वारा उपलब्ध कराकर इस क्षेत्र में कार्य किया गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण इन निगमों की विदेशी व्यापार में भूमिका काफी बढ़ गयी है जिसका घरेलू कृषि बाजार पर भी विस्तारात्मक प्रभाव पड़ा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा गेहूँ, चावल, दाल, तिलहन, फल तथा पुष्प आदि के व्यापार में प्रवेश आसानी से तथा बड़े स्तर पर मिल चुका है।

आपको ज्ञात है कि इन बहुराष्ट्रीय निगमों का सम्बन्ध एक से अधिक विकसित तथा विकासशील देशों से हैं इसीलिए भारतीय कृषि वस्तुओं के लिए विदेशी बाजार में माँग सृजित की गयी है। इसके साथ कृषि वस्तुओं का आयात भी इन निगमों द्वारा सम्भव हो सका है। भारतीय किसानों का सरकारों से उठते विश्वास के कारण तथा सरकारी कृषि सम्बन्धी योजनाओं के उचित क्रियान्वयन की कमी के कारण इन निगमों को भारतीय कृषि क्षेत्र में प्रवेश के लिए अच्छा माहौल उपलब्ध हो सका। कृषि व्यापार के सम्बन्ध में सरकार तथा किसान दोनों ही पूर्ण रूप से सफल नहीं थे। एक ओर किसानों के पास पर्याप्त संसाधनों की कमी थी तो दूसरी ओर सरकारी मशीनरी कुशलता के साथ कार्य नहीं कर सकी। परिणामस्वरूप विदेशी व्यापार में कृषि की भूमिका को कम आंका गया। इन बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश से कृषि वस्तुओं के विदेशी व्यापार पर सरकार भी गम्भीरता से विचार कर रही है। आपको ध्यान होगा कि भारत कृषि क्षेत्र में वस्तुओं का वास्तविक उत्पादक है। सेवा तथा उद्योग क्षेत्र कृषि वस्तुओं का प्रयोग करके ही विस्तार करता है। इसीलिए कृषि वस्तुओं के विदेशी तथा देशी व्यापार के अभाव में अन्य क्षेत्रों का भी विकास सम्भव नहीं हो सकता। भले ही कृषि का मूल्य कम क्यों न आंका जाए।

इन बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा कृषि वस्तुओं के परम्परागत व्यापार के साथ गैर परम्परागत नवीन कृषि वस्तुओं के व्यापार के लिए भी स्थान तैयार किया है जिसका कृषि व्यवस्था, उत्पादन तथा किसान एवं मजदूरों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ा है।

13.4 बहुराष्ट्रीय निगम एवं कृषि सम्बन्धी समस्याएं

आप समझ गये होंगे कि बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय कृषि क्षेत्र में किस रूप में तथा किस सीमा तक भूमिका अदा कर रहे हैं। भारतीय कृषि पर इन निगमों के सकारात्मक तथा विकासात्मक प्रभावों के साथ-साथ कुछ चुनौतीपूर्ण प्रभाव भी दिखाई देते हैं जिनकी विवेचना निम्न रूप में की जा सकती है।

बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तैयार किए गए बीज, रसायन आदि उत्पादन में वृद्धि की दृष्टि से उपयोगी कहे जा सकते हैं लेकिन ध्यान नहीं दिया गया है। उच्च प्रौद्योगिकी से तैयार इन उत्पादों के प्रयोग करने के लिए भारतीय कृषकों का एक वर्ग पूर्ण रूप से तैयार नहीं है। प्रयोग की लापरवाही आदि के कारण रासायनिक तत्त्व जानलेवा

होने के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिए भी हानिप्रद हैं। इन बीजों एवं रसायनों की कीमत अधिक होने के कारण भारतीय कृषि की लागत अत्यधिक बढ़ गयी है। इसके साथ भारत में जोतों की छोटी आकृति के कारण भी किसान इन बीजों एवं रासायनिक तत्वों का पूर्ण लाभ लेने में असमर्थ हैं। पेटेंट कानूनों की आड़ में इन निगमों का सहारा लेकर विकसित देश, विकासशील देशों की कृषि व्यवस्थाओं का फायदा अपने निजी हितों में करना चाहते हैं जिसका भारतीय कृषि पर भविष्य में नकारात्मक व संस्थागत प्रभाव पड़ने की सम्भावनाएँ हैं।

आपका ध्यान इस ओर भी ले जाना अत्यन्त आवश्यक है कि इन निगमों द्वारा तैयार बीज का उत्पादन व वितरण भारतीय जैव सम्पदा एवं पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक है ये निगम भारतीय कृषि में प्रवेश करके अपने देश की सरकारों से अनुदान प्राप्त करके एक एजेण्ट के रूप में कार्य कर रहे हैं। भारतीय कृषि व्यवस्था में संस्थागत व्यवस्थाओं में इन निगमों का हस्तक्षेप किसानों के भविष्य को अंधकार में ले जा सकता है तथा किसानों के अधिकारों को सीमित कर सकता है।

13.4.1 बहुराष्ट्रीय निगमों की कृषि में प्रासंगिकता

अब आपको बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय कृषि में प्रासंगिकता के विषय पर ध्यान केन्द्रित करने की भी अत्यन्त आवश्यकता है। पिछले कुछ दशकों से भारतीय कृषि में सरकारी निवेश की समस्या गम्भीर होती जा रही है जो वैश्वीकरण के दौर में कृषि वस्तुओं के लिए विदेशों में अपना स्थान स्थापित करने के लिए चुनौतीपूर्ण हो गया है क्योंकि कृषि वस्तुओं को बाजार हेतु प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा गुणात्मक बनाने के लिए कृषि में बड़े स्तर पर निवेश किया जाना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। भारत में कृषि वित्त संबन्धी अनेक मात्रात्मक तथा व्यवस्था संबन्धी समस्याएँ समय-समय पर पैदा होती रही हैं जिससे भारतीय किसानों द्वारा न्यूनतम निवेश भी किया जाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। सार्वजनिक निवेश पर प्रतिफल एवं नीति क्रियान्वयन का उचित रूप नहीं दिखाई दे रहा है। ऐसी स्थिति में भारतीय कृषि में बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा बड़े स्तर पर निवेश किया जाना सम्भव हो सकता है। जिसका भारतीय कृषि पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। कृषि निवेश के क्षेत्रों में अनुसंधान, कृषि तकनीकी, बाजार सम्बन्धी खोज, भण्डारण व्यवस्था, विपणन व्यवस्था तथा आधारिक संरचना को प्राथमिकता दी जा सकती है। जिसके कारण कृषि वस्तुओं के घरेलू तथा विदेशी व्यापार को नई दिशा दी जा सकेगी।

भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौर में कृषि की अपेक्षा उद्योग तथा सेवा क्षेत्र को वरीयता दी जाती रही है। जिसका कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ा है। कृषि उत्पादन का उद्योगपतियों एवं व्यापारी वर्ग द्वारा अपनी स्वयं की तय रणनीति के अनुसार प्रयोग किया है जिसका किसानों को विशेष लाभ प्राप्त नहीं हो सका। बहुराष्ट्रीय निगमों का ध्यान भारतीय कृषि की ओर आकर्षित होने से कृषि में विकास के अनेक मार्ग दिखाई देने लगे हैं जिसका लाभ इन निगमों एवं किसानों को मिलने की सम्भावना है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि या प्राथमिक क्षेत्र नये रूप में परिवर्तित होगा जिसे भारत सरकार तथा किसानों की स्वाभाविकता के रूप में देखा जा सकता है।

विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी अत्यन्त अधिक नहीं पाई गई। कृषि से सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 25 प्रतिशत प्राप्त होता है तथापि कृषि निर्यात बहुत कम है। भारत को यह उम्मीद थी कि विकसित देशों में घरेलू समर्थन का स्तर घटाया जाएगा तथा निर्यातों पर सहायता में कटौती की जाएगी ताकि भारत इन देशों को और

कृषि वस्तुओं का निर्यात कर पाएगा। विकसित देशों ने अत्यन्त कुशलता से अपने हितों की सुरक्षा की है तथा विकासशील देशों में कृषि आयातों के विस्तार पर अंकुश लगाने में सफल रहे हैं। उदारवादी नीति के चलते भारत ने विगत कुछ वर्षों में दूसरे देशों के माल के लिए अपने दरवाजे खोले हैं तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटा लिया है। अतः भारतीय किसानों के हितों की सुरक्षा हेतु यह जरूरी है कि भारत कृषि के लिए स्पष्ट प्राथमिकताओं को निश्चित करे और उनका कठोरता से पालन हो। विशेष रूप से निम्नलिखित दिशाओं में कार्य करना आवश्यक समझा जा सकता है -

भारत जैसे विकासशील देशों के हितों की सुरक्षा के लिए निरूपण-रहित व्यापार तथा सभी देशों को समान अवसर प्रदान करने हेतु जरूरी है कि विकसित देशों में मौजूद उच्च सहायता दरों तथा समर्थन स्तरों को घटाया जाए। **रमेशचन्द्र** और **लीतू मैथ्यु फिलिप** के अनुसार यह जरूरी है कि भारत (तथा अन्य विकासशील देश) इस बात पर जोर दें कि सभी प्रकार की कृषि सहायता को एक साथ सम्मिलित किया जाए और फिर इस 'कुल घरेलू समर्थन' में कटौती की माँग की जाए (केवल समर्थन के समग्र माप पर ही नहीं)। इसके अतिरिक्त विकसित देशों को उच्च कृषि समर्थन से जो अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो रहा है उसे समाप्त करने हेतु अन्य सदस्य देशों को यह अनुमति प्राप्त होनी चाहिए कि वे घरेलू समर्थन में अन्तर्गत के बराबर संरक्षणात्मक प्रशुल्क लगा सकें।

यहां पर यह ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि जो देश अपने कृषि क्षेत्र का वैश्वीकरण कर रहा है उसके अन्तर्गत वह उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं बन सकता क्योंकि वैश्वीकरण के अधीन वह उन कृषि वस्तुओं में विशिष्टीकरण करेगा जिनमें उसे तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले तथा कम क्रय-शक्ति वाले देश में यह आवश्यक है कि खाद्यान्न व अनाज की उपलब्धि पर वैश्वीकरण के प्रभाव पर पूरा ध्यान दिया जाए। विदेशी व्यापार को बढ़ाने के साथ आन्तरिक व्यापार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आवश्यक है।

अतः राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर होना जरूरी है ताकि व्यापार पर निर्भरता को सीमाओं के अन्दर रखा जा सके। भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत घरेलू कीमतों के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में अधिक उतार-चढ़ाव होते हैं। इसलिए व्यापार प्रतिबन्धों को कम करने का नतीजा यह होगा कि घरेलू कीमतों तथा किसानों की आय में अस्थिरता व अनिश्चितता में वृद्धि होगी। इसलिए सरकार को समुचित कदम उठाने होंगे। एक अन्य खतरा यह हो सकता है कि कोई देश कृषि वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादक हो तथा वह अपने अधिशेष को भारत में काफी सस्ते मूल्यों पर खपाने का प्रयास करे। इसलिए कृषि वस्तुओं के भारी आयातों पर सतर्क रहने की आवश्यकता है। **राव** तथा **जैरोमी** ने स्पष्ट किया है कि वैश्वीकरण का कुछ विशिष्ट क्षेत्रों, विशिष्ट फसलों तथा उन विशिष्ट लोगों के विशिष्ट वर्गों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

इसका कारण यह है कि वैश्वीकरण का लाभ ज्यादातर उन क्षेत्रों को प्राप्त होगा जिनमें संसाधनों की बड़ी मात्रा है, उन फसलों को प्राप्त होगा जिन्हें तुलनात्मक लाभ प्राप्त है, तथा जनसंख्या के उन वर्गों को प्राप्त होगा जो निर्यात वस्तुओं का उत्पादन करने में संलग्न हैं। इसके साथ ही वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कुछ अनिवार्य उपभोग वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो सकती है जिससे लोगों के कल्याण स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए जिन फसलों में लोगों तथा क्षेत्रों पर वैश्वीकरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका है। उनकी जानकारी प्राप्त करनी होगी तथा कृषि नीति में उनके हितों की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करनी होगी। अर्थव्यवस्था की विकास दर में कृषि व्यापार के भाग को तय करना होगा।

आपको ज्ञात होगा कि भारत में अभी कृषि को घरेलू समर्थन कृषि उत्पाद के मूल्य 10 प्रतिशत से बहुत कम है इसलिए अभी तक इसमें कमी करने की जरूरत नहीं है। लेकिन जब एक बार विकासशील देशों को प्राप्त रियायतें खत्म कर दी जाएगी तब आर्थिक सहायता कम करने हेतु दबाव बढ़ सकता है। विशेष रूप से खाद्यान्नों की वसूली तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा उनके वितरण पर प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता को कम करने के लिए। अतः भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दबाव बनाना चाहिए ताकि ग्रीन बाक्स की भांति ही 'फूड सिक्योरिटी बॉक्स (food security box)' तथा 'डवलपमेंट बॉक्स (development box)' बनाया जाए।

आर. तमाराक्षी का यह तर्क पूर्णतः उचित है कि यह आशा एकदम बेमानी व अवास्तविक है कि व्यापार उदारीकरण के द्वारा खाद्यान्नों का ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय ढाँचा निर्मित हो सकेगा जिससे विकासशील देशों की निर्धन जनता को सस्ते देशों में यह काम करना इतना कठिन व व्यापक हो गया है कि बगैर इन देशों की सरकारों के प्रभावी हस्तक्षेप के व्यावहारिक रूप प्रदान करना असम्भव है। एक लम्बी समयावधि से भारत में पौधों व बीजों के लिए पेटेंटों तथा पौधों की किस्मों के लिए संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसका कारण यह है कि भारत कृषि संसाधनों पर सम्पूर्ण मानव जाति के अधिकारों को स्वीकार करता रहा है। लेकिन विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत अपनाए गए बौद्धिक सम्पदा पर अधिकारों से सम्बन्धित समझौते में यह व्यवस्था की गई है कि सभी सदस्य देश पौधों की किस्मों के संरक्षण हेतु तथा बीजों के लिए पेटेंट प्रदान करेंगे। इस व्यवस्था का भी लाभ विकसित देशों को ही प्राप्त होगा विशेष रूप से इन देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों को। वस्तुतः बहुराष्ट्रीय निगमों को विकासशील देशों में उन्नत किस्म के बीजों की बिक्री-सम्भावनाओं का पूर्ण ज्ञान है। इन किस्मों को पेटेंट करके वे इन बाजारों से भरपूर लाभ प्राप्त करना चाहते हैं।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार सम्बन्धी समझौते की शर्तों को पूरा करने के लिए भारतीय संसद ने अगस्त, 2001 में पौधों की किस्मों के संरक्षण तथा किसानों के अधिकार सुरक्षा हेतु कानून पारित किया (इसे Protection of Plant Varieties and Farmers Rights Legislation का नाम दिया गया है) लेकिन जैसा कि **अनीता रामन्ना** का विचार है केवल स्वामित्व अधिकारों सम्बन्धी कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, कृषि संसाधनों के संरक्षण हेतु भी कानूनी जरूरी है। भारत में बहुत बड़ी मात्रा में आनुवांशिक संसाधन हैं और यदि ये मुफ्त में उपलब्ध होंगे तो विकसित देशों के निगम इन पर अधिकार करके पेटेंट उत्पाद बनाने का प्रयत्न करेंगे।

उक्त तथ्यों के विश्लेषण के बाद आप समझ गये होंगे के बहुराष्ट्रीय निगमों की कार्य प्रणाली को भारतीय कृषि में किस दिशा तथा सीमा तक ले जाने की आवश्यकता है भारतीय अर्थव्यवस्था की आन्तरिक कमजोरियां भी इन बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रासंगिकता को और अधिक मजबूती प्रदान करती है।

13.5 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बहुराष्ट्रीय निगम के कार्य क्षेत्र को बताओ?
2. बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीय कृषि पर किस रूप में प्रभाव पड़े हैं? संक्षेप में लिखिए।
3. बहुराष्ट्रीय निगमों के सम्बन्ध में भारतीय कृषि की किन्हीं तीन कठिनाईयों को बताओ?
4. खाद्य वस्तुओं के प्रसंस्करण में बहुराष्ट्रीय निगमों का क्या स्थान है? संक्षेप में बताओ।

निम्न में से सत्य/असत्य विकल्प का चयन कीजिए?

1. बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा संविदा खेती प्रारम्भ की गयी है।
2. बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उन्नत बीजों के उत्पादन में कार्य किया गया है।
3. बहुराष्ट्रीय निगमों से भविष्य में भारतीय कृषि के लिए कोई खतरा नहीं है।
4. कृषि आगतों की पूर्ति में बहुराष्ट्रीय निगमों की भी भूमिका पायी गयी है।

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करो -

1. बहुराष्ट्रीय निगमों का कार्यकाल एक से देशों में विस्तृत पाया जाता है।
2. कृषि के विदेशी में भी इन निगमों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हो गया है।
3. बहुराष्ट्रीय निगमों ने कृषि में कानून का भी सहारा लिया है।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व की अन्य सभी अर्थव्यवस्थाओं के साथ समग्र रूप में मिलकर कार्य करना कहा जाता है।

13.6 सारांश

संक्षेप में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका के सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ये निगम अत्यधिक विस्तृत होने के कारण भारतीय कृषि को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूप में प्रभावित करते हैं। इस सम्बन्ध में कहना है कि ये निगम भारतीय कृषि को बाहरी रूप में अर्थात् कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के रूप में प्रभावित करते रहे हैं। वर्तमान समय में देखा जा रहा है कि बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय कृषि को आन्तरिक रूप से भी अनेक दिशाओं में प्रभावित करने लगे हैं। आन्तरिक रूप में कृषि वित्त, कृषि आदानों की आपूर्ति तथा अन्य तकनीकी सेवाओं की पूर्ति जैसे मदों को शामिल किया गया है। बहुराष्ट्रीय निगमों पर विकसित देशों का आधिपत्य पाया जाता है इसीलिए इन निगमों की कृषि सम्बन्धी नीतियाँ विकसित देशों के हितों को ध्यान में रखकर ही तय की जाती है।

बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में देखा जा सकता है। लेकिन इन दोनों प्रभावों को विकसित देशों के संदर्भ में अनुकूल रूप में ही लिया गया है। इसके साथ भारतीय कृषि पहले से ही अनेक प्रकार की संस्थागत तथा गैर संस्थागत चुनौतियों का सामना कर रही है इसीलिए इन निगमों की भूमिका को भी चुनौतीपूर्ण ही कहा जा सकता है। भारतीय कृषि में इन निगमों की प्रासंगिकता पर भी अलग-अलग विचार व्यक्त किए गए हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था की अपनी अलग संरचना तथा चुनौतियाँ भी इन निगमों की प्रासंगिकता को और अधिक महत्वपूर्ण बना देती है।

सरकार की नई आर्थिक सुधार की नीतियों के अन्तर्गत विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का प्रभाव भारतीय कृषि व्यापार के साथ घरेलू तथा विदेशी व्यापार पर भी अलग रूप में दिखाई दिया। एक ओर कृषि के लिए नई व्यवस्था तथा संसाधनों की उपलब्धता हो सकी वहीं भविष्य में भारतीय किसानों के अधिकारों एवं उत्पादन सुरक्षा के संबन्ध में सन्देह व्यक्त किए गए थे। वैश्विक स्तर पर विकसित देशों द्वारा बनाए जाने वाले अनेक कानून निगम तथा कार्यक्रमों के अन्तर्गत भारतीय कृषि का प्रयोग उनके निजी हितों के अनुरूप किया गया है वहीं भारतीय कृषि को व्यापार के माध्यम से विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ा गया है। यदि विदेशी व्यापार के

संबन्ध में इन निगमों की भूमिका को महत्वपूर्ण मान लिया जाए तो घरेलू व्यापार के संबन्ध में इन निगमों की प्रासंगिकता पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। अन्त में यह कहा जा सकता है कि बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका भारतीय कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ भविष्य में भारतीय कृषि के लिये विवादास्पद स्थिति पैदा कर सकती है।

13.7 शब्दावली (Glossary)

- **बहुराष्ट्रीय निगम** - वह निगम या कम्पनी जिसका कार्य क्षेत्र एक से अधिक देशों तक विकसित होता है बहुराष्ट्रीय निगम के नाम से जाना जाता है।
- **बाह्य क्षेत्र**- सामान्य रूप से बाह्य क्षेत्र से तात्पर्य कृषि वस्तुओं के देश से बाहर होने वाले आयात-निर्यात से लगाया जाता है।
- **सहायक फर्मों**- सहायक फर्मों से तात्पर्य ऐसे फर्मों से है जो बड़ी या मुख्य फर्मों के बाजार तथा उत्पादन के विस्तार में सहायता करती है।
- **पूँजी**- पूँजी से तात्पर्य धन के उस भाग से लगाया जाता है जो किसी उत्पादन कार्य में लगा होता है।
- **नई औद्योगिक नीति**- भारत सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों को सुचारू रूप से लागू करने के लिए तैयार की जाने वाली सन् नब्बे के दशक वाली औद्योगिक नीति को नई औद्योगिक नीति कहा जाता है।
- **कृषि विविधीकरण**- कृषि फसलों तथा उत्पादन को अलग-अलग रूपों में पैदा करना कृषि विविधीकरण कहलाता है।
- **खाद्य प्रसंस्करण**- खाद्य प्रसंस्करण से तात्पर्य कृषि वस्तुओं को खाने के उपयोग में लाने के लिए आवश्यक परिवर्तन तथा शुद्धिकरण की प्रक्रिया से है।
- **कृषि आगत**- कृषि उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों को कृषि आगत के रूप में जाना जाता है जैसे उपकरण, खाद, बीज आदि।
- **विदेशी तथा आन्तरिक व्यापार**- एक देश की सीमा से बाहर वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय विदेशी व्यापार कहलाता है तथा एक देश की सीमा के अन्दर ही होने वाला क्रय-विक्रय आन्तरिक व्यापार कहलाता है।
- **वैश्वीकरण**- भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व की अन्य सभी अर्थव्यवस्थाओं के साथ समग्र रूप में मिलकर कार्य करना वैश्वीकरण कहा जाता है।
- **परम्परागत तथा गैर-परम्परागत व्यापार वस्तुएं** - पिछले लम्बे समय से कृषि वस्तुओं का आयात-निर्यात होने वाली मर्दों को परम्परागत व्यापार वस्तुओं के रूप में जाना जाता है तथा जो समय के परिवर्तन के साथ वस्तुओं के आयात एवं निर्यात के स्वरूप एवं आकार (नवीन वस्तुये) में परिवर्तन के बाद वाली मर्दों को गैर परम्परागत व्यापार वस्तुयें कहा जाता है।
- **पेटेण्ट कानून**- एक ऐसा सर्वाधिकार नियम जो उस वस्तु या सेवा की खोज अथवा उत्पत्ति पर सुरक्षित रहता है तथा उस पर उस देश विशेष का पूर्ण अधिकार होता है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

निम्न में से सत्य/असत्य विकल्प का चयन कीजिए?

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करो

1. अधिक 2. व्यापार 3. पेटेन्ट 4. वैश्वीकरण

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- मिश्र एवं पुरी (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।
- रूद्र दत्त एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एण्ड कं. लि., नई दिल्ली।
- बरला एण्ड अग्रवाल (2009) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- जैन महेन्द्र-सम्पादक (2012) समसामयिक वार्षिकी 2012 प्रतियोगिता दर्पण स्वदेशी बीमानगर, आगरा।
- दीक्षित एवं अग्रवाल (2010) कृषि अर्थशास्त्र, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन, अस्पताल मार्ग आगरा।

13.10 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Texts)

- मिश्र, जगदीश नारायण (2008) भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल, दरियागंज नई दिल्ली।
- सिंघई जी.सी. (2010) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- भारतीय अर्थव्यवस्था (2011) प्रतियोगिता दर्पण, (सामान्य अध्ययन) 2/11, ए-स्वदेशी, बीमा नगर, आगरा
- झिंगन एम. एल. (2009) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशनस प्रा0लि0, आशीष काम्प्लेक्स मयूर विहार, दिल्ली।
- कुरुक्षेत्र पत्रिका (मासिक) जनवरी 2007 अंक 03 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बहुराष्ट्रीय निगमों से आप क्या समझते हैं? इनकी भारतीय कृषि के विकास में क्या भूमिका है?
2. कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर बहुराष्ट्रीय निगमों के पड़ने वाले अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
3. भारतीय कृषि व्यवस्थाओं में बहुराष्ट्रीय निगम किस सीमा तक कार्य करने के लिए तत्पर है?
4. बहुराष्ट्रीय निगमों के संबन्धित कृषि व्यापार की समस्याओं को स्पष्ट कीजिए?
5. बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारतीय कृषि के किन-किन क्षेत्रों में प्रवेश किया है? संक्षेप में लिखो?
6. भारतीय कृषि में बहुराष्ट्रीय निगमों की क्या प्रासंगिकता पायी जाती है? संक्षेप में लिखो?